A COMPARATIVE STUDY OF SOME ASPECTS OF VAISNAVISM AS DEPICTED IN THE VISNU PURANA, THE HARIVAMSA AND THE BHAGAVATA

A THESIS SUBMITTED FOR THE DEGREE OF
DOCTOR OF PHILOSOPHY

Ram Darshan Mishra

UNIVERSITY OF ALLAHABAD
ALLAHABAD

DEPARTMENT OF ANCIENT HISTORY
CULTURE AND ARCHAEOLOGY
CENTRE OF ADVANCED STUDY

1981

प्राक्कथन

वेदोत्तरकाल में जितने धार्मिक ग्रन्थों का प्रणयन हुआ है उनमें पुराणों का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इनके माध्यम से न केवल हिन्दूधर्म के उस स्वरूप का उदय होता है जिसे पौराणिक धर्म कहा जाता है अपितु इनमें धार्मिक, दार्शनिक वैज्ञानिक एवं कलात्मक शास्त्रीय ज्ञान तथा परम्पराओं का एक ऐसा संक्षिप्त सारसंग्रह मिलता है जिन के कारण इन्हें अवसर प्राचीन भारतीय संस्कृति का विश्वकोश भी कहा जाता है। पुराणों में महात्म्यों, इतिवृत्तों और कथानकों की एक ऐसी सामग्री प्राप्त होती है जो स्पष्टतः बाद में समाविष्ट की गई किन्तु जो अपने समय की स्थिति के प्रतिबिम्बन के कारण महत्वपूर्ण है। पुराण भारतीय संस्कृति की एक ऐसी देन है जो किसी भी काल-क्रम की योजना के लिये एक चुनौती सिद्ध होते हैं। इन में यदि एक ओर वेदों से भी प्राचीन सामग्री मिलती है तो दूसरी ओर अठारहवीं शताब्दी तक की अर्वाचीन सामग्री के दर्शन होते हैं। इतिहास की स्रोत सामग्री के रूप में यदि इन का उपयोग समस्यापूर्ण है तो इनकी अवहेलना करने वाला भारतीय इतिहास लेखन का कोई प्रयास पूर्ण भी नहीं कहा जा सकता। धार्मिक इतिहास के लिये और विशेषकर वैष्णव धर्म के लिये जो एक पौराणिक धर्म माना जाता है इनका उपयोग अनिवार्य है।

वैष्णव धर्म के इतिहास पर बहुत सी उत्कृष्ट कोटि की कृतियों का प्रणयन हुआ है लेकिन इनमें से अधिकांश वैष्णव धर्म के इतिहास को समग्रता में प्रस्तुत करने के प्रयास में पौराणिक सामग्री को वह विशिष्ट स्थान नहीं दे पायी हैं जो उसे मिलना चाहिये था। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध वैष्णव धर्म के इतिहास में पौराणिक शोध सामग्री के महत्व को उभारने का एकविनम्र प्रयास है। पौराणिक साहित्य की विशालता तथा शोध प्रबन्ध की सीमाओं ने पूरे पौराणिक साहित्य को इस शोध प्रबन्ध का आधार नहीं बनने दिया। यही कारण है कि केवल वैष्णव सामग्री से परिपूर्ण विष्णु, भागवत और हरिवंश नामक

केवल तीन वैष्णव पुराणों को ही प्रधान स्रोत सामग्री के रूप में चुना गया है किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि वैष्णव धर्म के इतिहास को अन्य स्रोत सामग्रियों की अवहेलना कर दी गई है। प्रश्न केवल आपेक्षिक महत्त्व का है। पौराणिक स्रोत सामग्री के महत्त्व को उभारने के लिये अन्य प्रकार की स्रोत सामग्री का यथा सम्भव प्रयोग किया गया है।

यह शोध-प्रबन्ध दस अध्यायों में विभक्त है। इस शोधप्रबन्ध के प्रथम अध्याय में पौराणिक शोधों का एक विहंगम सर्वेक्षण किया गया है। इस अध्याय में पौराणिक वाङ्मय पर किये गये महत्त्वपूर्ण कार्यों पर प्रकाश डाला गया है। द्वितीय अध्याय आलोचित विष्णु, भागवत पुराण तथा हरिवंश का तिथि-क्रम और उनके वैष्णव कथानक से सम्बन्धित है। इस अध्याय में आलोचित पुराणों में वर्णित आख्यानों के आधार पर विष्णु, भागवत पुराण तथा हरिवंश का समय निश्चित करने का प्रयास किया गया है। तृतीय अध्याय में विष्णु की वैदिक स्थिति की समीक्षा, उनकी व्यापन शीलता, सूर्य और विष्णु का तादात्म्य विष्णु पद, विष्णु पाद एवं विष्णु के परमपद की चर्चा की गई है। विष्णु का बल वैभव, तथा विष्णु एवं इन्द्र का साहचर्य, विष्णु से गायों का सम्बन्ध तथा गर्भरक्षक के रूप में विष्णु की परिकल्पना को भी विवेचन का विषय बनाया गया है। चतुर्थ अध्याय में भक्ति का तात्पर्य एवं लक्षण, पुराणों में भक्ति का स्वरूप तथा आलोचित पुराणों में वैष्णव भक्ति का स्वरूप तथा आलोचित पुराणों में वैष्णव भक्ति के प्रकार आदि पर विचार व्यक्त किया गया है। पंचम अध्याय विष्णु और वासुदेव कृष्ण का तादात्म्य तथा नारायण और विष्णु का एकीकरण से सम्बन्धित है। इसमें यह दिखाया गया है कि वासुदेव कृष्ण का एकीकरण वैष्णव धर्म के विकास में बहुत ही सहायक था। षष्ठम् अध्याय में भागवत शब्द के अर्थ को स्पष्ट करते हुये इसके विकास के क्षेत्र मथुरा की ओर संकेत किया गया है। सप्तम अध्याय विष्णु के अवतार से सम्बन्धित है। इस अध्याय में अवतार शब्द का तात्पर्य, अवतार संख्या, अवतार के प्रेरकतत्त्व आदि का वर्णन किया गया है।

अष्टम अध्याय "श्री" "लक्ष्मी" से सम्बन्धित है। इस अध्याय में "श्री" "लक्ष्मी" का तात्पर्य बतलाते हुये उनको विष्णु का अर्द्धांगिनी कहा गया है। "श्री" लक्ष्मी से सम्बन्धित पुरातात्त्विक साक्ष्यों को भी ग्रहण किया गया है। नवम अध्याय में विष्णु का मूर्तरूप एवं प्रतिमा पूजा का वर्णन किया गया है। इस अध्याय में यह दिखाने की चेष्टा की गई है कि वैदिक काल में मूर्तिपूजा होती थी या नहीं, इस पर प्रकाश डाला गया है। इस के अतिरिक्त सूत्रसाहित्य पाणिनि के काल, स्मार्त साहित्य तथा रामायण और महाभारत में मूर्ति पूजा के साक्ष्यों का अवलोकन किया गया है। आलोचित पुराणों में वर्णित मूर्तिपूजा की स्थिति का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है। दशम अध्याय में वैष्णव व्रत और तीर्थ का विवेचन किया गया है। इस अध्याय में व्रत शब्द के अर्थ, उनकी महत्ता तथा आलोचित पुराणों में विवृत व्रतों की संख्या एवं उनके विधानों तथा महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है। तीर्थ की वैदिक पृष्ठभूमि शीर्षक अवतरण में तीर्थ का तात्पर्य, इन की महत्ता तथा आलोचित पुराणों में तीर्थ सम्बन्धित स्थलों का विस्तृत वर्णन किया गया है।

प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष प्रो० जी०आर० शर्मा के प्रति मैं कृतज्ञ हूँ, जिनके अनुग्रह से इस शोध-कार्य को वर्तमान रूप मिल सका है। वर्तमान् विभागाध्यक्ष प्रोफेसर जी०सी० पाण्डे के प्रति भी मैं आभारी हूँ जिनसे भी मुझे समय-समय पर प्रोत्साहन एवं सहायता प्राप्त होती रही। डा० एस० एन० राय के प्रति उनके निर्देशन के लिये आभार प्रकट कर मैं उस प्रच्छन्न भाव को हल्का नहीं करना चाहता। पुनः श्री जे०एस० नेगी, डा० बी०एन० एस० यादव , डा० उदय नारायण राय, डा० ओम प्रकाश, श्री वी०डी० मिश्र, श्री बी०बी० मिश्र श्री जे०के० राय एवं विभाग के अन्य अध्यापकों के प्रति भी मैं आभारी हूँ जिन्होंने समय-समय पर मेरा पथ प्रदर्शन किया। अन्त में मैं विभागीय शोध पुस्तकालय के सहायक पुस्तकालयाध्यक्ष श्री अब्दुल वाहिद के प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धा अर्पित करता हूँ जिन्होंने मेरे शोधकार्य के लिये पुस्तकें तथा अन्य शोध सामग्री एकत्र करने में समय-समय पर मेरी सहायता की ।

रामदर्शन मिश्र
रामदर्शन मिश्र
प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं
पुरातत्व विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय

तिथि 20.10.81

सूची पत्र

संकेताक्षर

अग्नि पु०	अग्नि पुराण
अथर्व०	अथर्ववेद
अ०हि०वै०	अर्ली हिस्ट्री ऑफ वैष्णव सेक्ट्स
ऋ० सं०	ऋग्वेद संहिता
क०व०	कलेक्टेड वर्क्स
का०इं०इं०	कार्पस इंसक्रिप्शनम् इण्डिकेरम्
तै० आ०	तैत्तिरीय आरण्यक
तै० ब्राह्मण	तैत्तिरीय ब्राह्मण
पु०	पुराण
पद्म पु०	पद्म पुराण
ब्रह्म पु०	ब्रह्म पुराण
ब्रह्माण्ड पु०	ब्रह्माण्ड पुराण
बृ० उ०	बृहदारण्यक उपनिषद्
भागवत पु०	भागवत पुराण
मत्स्य पु०	मत्स्य पुराण
मा० गृ० सू०	मानवगृह्य सूत्र
मनु०	मनुस्मृति

याज्ञ० स्मृ०	याज्ञवल्क्य स्मृति
रामा० अयो० का०	रामायण अयोध्या काण्ड
वामन पु०	वामन पुराण
वा० सं०	वाजसनेयि संहिता
वायु० पु०	वायु पुराण
विष्णु पु०	विष्णु पुराण
विष्णु धर्मोत्तर पु०	विष्णु धर्मोत्तर पुराण
श० ब्रा०	शतपथ ब्राह्मण
शा० प०	शान्ति पर्व
शां० ब्रा०	शांखायन ब्राह्मण
शु० य०	शुक्ल यजुर्वेद
श्वेता० उ०	श्वेताश्वतरउपनिषद्
स्कन्द पु०	स्कन्द पुराण
हरि०	हरिवंश

प्रथम अध्याय

पौराणिक शोधों का एक विहंगम सर्वेक्षण

भारतीय इतिहास और संस्कृति के अनुशीलनार्थ उपयोगी साक्ष्यों के रूप में पुराणों का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। अधिकांशतः विद्वान इस बात से सहमत हैं कि पुराणों में प्राचीन भारतीय संस्कृति की अमूल्यनिधि सुरक्षित है। इसके कलेवर निर्माण एवं विकास में संस्कृत साहित्य का जो योगदान रहा है उन में पुराण ग्रन्थों का विशिष्ट स्थान है। वैदिक धर्म यज्ञ परक, क्लिष्ट एवं द्रव्य सापेक्ष था। यज्ञ करना समाज के सभी वर्गों के लिए सरल नहीं था। शनैः शनैः जब वेदविरोधी धर्मों और धार्मिक प्रक्रियाओं का आविर्भाव हुआ तो वेद एवं वैदिक धर्म उपेक्षा एवं अवहेलना के विषय बनने लगे। पुराणकारों ने जिस धर्म को वर्णन तथा विवेचन का विषय बनाया है उस में दान-व्रत तीर्थ आदि धार्मिक अवयवों के समावेश के कारण पौराणिक धर्म में सरलता और ग्रहणशीलता की प्रवृत्ति प्रबल बन सकी थी। इन में कुछ एक का सूत्रपात तो वैदिक काल में हो चुका था। उदाहरण के लिए तीर्थ का उल्लेख कर सकते हैं जिस के शैशव कलेवर की प्रतिष्ठा वैदिक ग्रन्थों में प्राप्त होती है। सामान्यतया यह कह सकते हैं कि पौराणिकों ने वैदिक धर्म को इन अवयवों के समावेश के कारण पुनर्जीवित करने का प्रयास किया है। वेदोत्तरवर्ती काल को यदि समीक्षा का विषय बनाया जाय तो प्रतीत होगा कि वैदिक धर्म अवैदिक और वेद विरोधी धार्मिक तत्वों के कारण धीरे-धीरे अपनी पूर्वकालीन महत्ता से च्युत हो रहा था। पौराणिक कलेवरकाप्राथमिक निर्माण पंच लक्षण पर आधारित अवश्य था पर, इन की अधिक उपादेयता सामाजिक और धार्मिक तत्वों के अनुशीलन के कारण मानी जा सकती है। पुराणों के पाँच लक्षणों में वंशानुचरित लक्षण के अन्तर्गत पुराणों में विवेचित राजवंशों एवं उन से सम्बन्धित ऐतिहासिक घटनाओं का समाहार प्राप्त होता है। राजनीतिक इतिहास की दृष्टि से भले ही इन की महत्ता अधिक नहीं पर सांस्कृतिक दृष्टि से तो पुराण अत्यन्त

उपयोगी सिद्ध हुये है। सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण ये पुराण सामाजिक तत्वों के अनुशीलन के लिए आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य हैं।

पुराण साहित्य पर किये गये महत्वपूर्ण कार्य:- पुराण के क्षेत्र में निम्नलिखित विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। विलसन ने 19वीं शताब्दी के चतुर्थ दशक में पुराणों के शोध का कार्य प्रारम्भ किया था। उन्होंने अपने अनुसंधानों के द्वारा पुराणों के अध्ययन की परम्परा को प्रतिष्ठापित किया। उन्होंने "एनालिसिस ऑफ दि पुराणाज," शीर्षक लेख रायल एशियाटिक[1] सोसाइटी, लंदन, पत्रिका के भाग 5 में प्रकाशित करवाया था। इस महत्वपूर्ण लेख में इन्होंने ब्रह्म, पद्म, अग्नि, ब्रह्मवैवर्त, विष्णु, वायु नामक छः पुराणों की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की है।

आफ्टे ने आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के बोडलियन पुस्तकालय में सुरक्षित संस्कृत की पाण्डुलिपियों का सूची पत्र तैयार किया जिनमें पुराण संबंधी अन्य ग्रन्थ थे। इसी प्रकार एगलिंग ने इण्डिया आफिस लाइब्रेरी, लंदन की संस्कृत पाण्डुलिपियों की एक विस्तृत सूची सन् 1899 में प्रकाशित की। पार्जिटर ने इन्साइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड एथिक्स, नामक ग्रन्थ के भाग 10 पृष्ठ 448 में पुराण सम्बन्धी शोधपूर्ण निबन्ध लिखा है जिस में पुराणों का संक्षिप्त विवरण उपलब्ध होता है। इन्होंने मार्कण्डेय पुराण[2] का अनुवाद अंग्रेजी भाषा में किया है।

विलिवाल्ड किरफेल ने 1927 में दाश पुराण पंच लक्षण नामक ग्रन्थ

1- रोस्ट द्वारा सम्पादित- कलेक्टेड वर्क्स, भाग 3, पृ० 155

2- दिल्ली, 1969

की रचना की। इस पुस्तक में इन्होंने पुराणों के पंचलक्षण से सम्बन्धित श्लोकों का संकलन किया है। इन्होंने पुराणों के पंचलक्षणों का उल्लेख करते हुये पुराणों को तीन विभिन्न भागों में विभाजित किया है और प्रत्येक भाग के पुराणों की विशेषताओं का उल्लेख किया है। जर्मन भाषा में लिखे गये इस ग्रन्थ की विस्तृत प्रस्तावना का अंग्रेजी अनुवाद जर्नल आॅफ वेंकटेश्वर इन्स्टीट्यूट, तिरूपति, के भाग 7-8 में प्रकाशित हुआ है।

रैप्सन द्वारा सम्पादित कैम्ब्रिज हिस्ट्री आॅफ इण्डिया[1] (भाग 1, पृष्ठ 296) में पुराण के सम्बन्ध में उपयोगी सामग्री दी गई है। इस ग्रन्थ में इन्होंने पुराण का अर्थ, पुराण तथा उपपुराण की तिथि, वैदिक साहित्य एवं पुराण तथा महाभारत युद्ध के विषय में अपने विचार व्यक्त किये हैं। इन्होंने पुराणों की क्षत्रिय उत्पत्ति का सिद्धान्त प्रस्तुत किया है और उनमें प्राप्त वंशावलियों में से कुछ को पुरावृत्तात्मक और कुछ को ऐतिहासिक बताया है। वी०आर० रामचन्द्र दीक्षितार ने पुराण इण्डेक्स[2] की रचना की। यह इण्डेक्स केवल वायु, ब्रह्माण्ड, विष्णु, मत्स्य तथा भागवत पुराणों का है। दीक्षितार ने तमिल ग्रन्थ को आधार मानकर पुराणों का वर्गीकरण पाँच भागों में किया है जो इस प्रकार हैं-[3]

1- ब्रह्माण्ड- ब्रह्म और पद्म

2- सूर्य- ब्रह्मवैवर्त

3- अग्नि- अग्नि

4- शिव, स्कन्द, लिंग, कूर्म, वामन, वराह, भविष्य, मार्कण्डेय और ब्रह्माण्ड और

1- कैम्ब्रिज, 1922

2- मद्रास, 1955

3- इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली, भाग, 8, पृ० 768

5- विष्णु -नारद, भागवत, गरुड तथा विष्णु ।

वेट्टम मनी के पुराणिक इन्साइक्लोपीडिया[1] का नाम भी इण्डेक्स कोटि के ग्रंथों में लिया जा सकता है।

विन्टरनित्स ने जर्मन भाषा में हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर को रचना की। इन्होने इसको तीन भागों में सन् 1907 में प्रकाशित किया। इस ग्रन्थ के प्रथम दो भाग का अंग्रेजी रूपान्तर श्रीमती केत्कर[2] द्वारा किया गया है जो कलकत्ता विश्वविद्यालय से प्रकाशित है। प्रथम भाग में लेखक ने 18 पुराण के विषय की चर्चा करते हुये इन का रचनाकाल, उत्पत्ति तथा महत्व आदि विषयों का गम्भीर विवेचन किया है।

जी0सी0बोस ने पुराण प्रवेश[3] की रचना अंग्रेजी भाषा में की है। इन्होने इस पुस्तक में एक कल्प का समय 5,000 वर्ष का माना है, जो 14 मन्वन्तरों में विभक्त है जिन में एक मन्वन्तर का समय 359 वर्ष तथा 13 मन्वन्तरों में प्रत्येक को 357 वर्षों का बतलाया है। महाभारत युद्ध का समय 1458 ई0 पू0 निश्चित किया है। इन्होने कृत युग तथा कलियुग के समय को क्रमशः 1458 ई0 पू0 तथा 5958 ई0पू0 माना है।

दुर्गा शंकर शास्त्री ने पुराण विवेचन[4] की रचना गुजराती भाषा में की है। प्रस्तुत ग्रन्थ में इन्होने पुराणों की उत्पत्ति, उन की तिथि तथा पुराणों का संस्कृत साहित्य से क्या सम्बन्ध है, आदि विषयों पर विचार व्यक्त कियाहै।

1- दिल्ली, 1975

2- कलकत्ता, 1927

3- कलकत्ता, 1934

4- अहमदाबाद, 1931

वाई0 वी0 ओल्हासकर ने श्री मद्भागवत दर्शन[1] की रचना की है। इसमें इन्होंने भागवत से सम्बन्धित अनेक समस्याओं तथा भागवत दर्शन पर अपने विचार व्यक्त किये हैं।

ज्वाला प्रसाद मिश्र ने अष्टादशपुराण दर्पण[2] का प्रणयन कर अपनी विद्वता का परिचय प्रस्तुत किया है। इस ग्रन्थ में इन्होंने अठारह पुराणों का विस्तृत विवेचन किया है। टी0जी0 काली ने मराठी भाषा में पुराणनिरीक्षण[3] नामक ग्रन्थ की रचना की। हरदत्त शर्मा ने पद्मपुराण और कालिदास[4] नामक पुस्तक की रचना की। ई0 रास[5] तथा मोन हर्ड[6] ने शैविज्म इन दि पुराणाज नामक ग्रन्थ लिखा है। इसमें रास ने शैव धर्म के विकास पर प्रकाश डाला है।

महामहोपाध्याय पी0वी0 काणे ने हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र[7] में पाँचवें भाग के तीन अध्यायों में पुराणों की उत्पत्ति एवं विकास, पौराणिक साहित्य के विस्तार तथा पुराणों एवं उपपुराणों की संख्या के विषय में अपने विचार व्यक्त किये हैं।

राजेन्द्र चन्द्र हाजरा ने अपनी कृतियों एवं लेखों द्वारा पुराण साहित्य का महत्व उद्घाटित करने में बड़े धैर्य और साहस से काम लिया है। इनकी सबसे प्रसिद्ध पुस्तक स्टडीज इन पुराणिक रेकर्ड्स आन हिन्दू राइट्स एण्ड कस्टम्स[8] है। जिस में इन्होंने 190 पृष्ठों में अठारहों पुराणों का

1- पूना, 1931
2- वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई से प्रकाशित
3- पूना, 1931
4- कलकत्ता, 1925
5- बोन, 1934
6- बर्लिन, 1928
7- पूना, 1953
8- ढाका, 1940

संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत किया है तथा विभिन्न अध्यायों का तिथि निर्णय उनके अन्त: साक्ष्य तथा वहि: प्रमाणों के आधार पर किया है। प्रत्येक पुराण में स्मृति ग्रन्थों से उद्धृत अंशों का अनुशीलन उनके कठिन परिश्रम का फल है।

पुराणों की उत्पत्ति एवं उनकी विशेषताओं के विषय में बी०सी० मजूमदार का विचार है कि पुराण लौकि साहित्य की एक शाखा है जो वैदिक काल में कायम थे और उन्हें पाँचवा वेद कहा गया है।[1] अथर्व वेद के अवतरणों में पुराण शब्द एक वचन में प्रयुक्त हुआ है। पुराण में राजवंशों की जो सूची मिलती है उससे ऐसा प्रतीत होता है कि यह सूची विभिन्न पुराणों में किसी एक ही स्रोत से आयी होगी।

जैक्सन ने पुराणों के विषय में यह लिखा है कि उत्तर वैदिक-काल से द्वितीय शताब्दी ई०पू० तक एक ही पुराण था जिस में जगत की सृष्टि का सिद्धान्त, वंशावली, मन्वन्तर आदि का वर्णन था।[2]

वासुदेव शरण अग्रवाल ने पुराण विद्या[3] शीर्षक लेख में यह मत व्यक्त किया है कि वेद में पुराण "शब्द" की ओर संकेत है। पुराणों में प्राप्त अनेक मंत्र तथा आख्यान वेदों से ही लिये गये हैं।

एस०एन० दास गुप्ता ने अपनी पुस्तक "इण्डियन फिलासफी"[4] भाग 3 में "फिलासफिकल स्पैकुलेशन्स आफ सम आफ दि सेलेक्ट पुराणाज, शीर्षक वाला

1- सर आशुतोष मुकर्जी सिलवर जुबली कमेमोरेशन वाल्यूम
ओरियण्टलिया, 3, 3, पृ० 7-30
2- जर्नल आफ दि बाम्बे ब्रांच आफ दि रॉयल एशियाटिक सोसाइटी
सैन्टेनरी नं०, पृष्ठांक 67
3- पुराण-पत्रिका, भाग 6, अंक 1 जनवरी 1964
4- दिल्ली 1975

अध्याय लिखा है जिस में इन्होंने विष्णु, वायु, मार्कण्डेय, नारदीय तथा कूर्मपुराण में विवेचित "अहंकार योग" तथा भक्ति आदि पर इन पुराणों के विचार व्यक्त किये हैं।

चिन्ताहरण चक्रवर्ती ने पुराण डाइजेस्ट[1] शीर्षक लेख लिखा है। जे०एन० सिन्हा ने हिस्ट्री आफ इण्डियन फिलासफी की रचना की है जिस में इन्होंने फिलासफी ऑफ दि विष्णु एण्ड दि अदर पुराणाज", शीर्षक वाला एक अध्याय भी लिखा है। सी०पी० रामस्वामी अय्यर ने " सम थाट आनदि पुराण" शीर्षक लेख लिखा है जो प्रबुद्ध भारत, फरवरी, 1953 में प्रकाशित हुआ था।

एस०पी० एल नरसिंह स्वामी ने "पुराण ऐज इलस्ट्रेटिव ऑफ आवर नेशनल साइकोलाजी एण्ड इवोल्यूशन," विषय पर एक वक्तव्य दिया था जो जर्नल ऑफ ओरियण्टल रिसर्च भाग 22 में प्रकाशित हुआ था। यशपाल टण्डन ने पुराण विषयानुक्रमणिका[2] की रचना की है। इस को इन्होंने 12 अध्यायों में लिपिबद्ध किया है। प्रस्तुत ग्रन्थ में पुराणों की उत्पत्ति, पुराणों का वर्गीकरण तथा उनकी संख्या, उनका विषय, पुराण महात्म्य, पुराण परम्परा तथा सुत धर्म पर पर्याप्त सामग्री प्राप्त होती है।

एस० भीमशंकर राय ने "हिस्टारिकल वैल्यू ऑफ पुराणिक वर्क्स", शीर्षक लेख लिख कर पुराण साहित्य के विकास में महान योग दान दिया है। इनका यह लेख जर्नल ऑफ दि आन्ध्र हिस्टारिकल रिसर्च सोसाइटी, भाग, 2 में

1- पुराण-पत्रिका, भाग 5, अंक 1, जनवरी, 1964

2- होशियारपुर, 1955

प्रकाशित हुआ था।

पी0सी0 दीवान ने "हिस्टारिकल वेल्यू आफ पुराणिक वर्क्स" शीर्षक लेख लिखा है जो भगवान लाल इन्द्रजी कमेमोरेशन वाल्यूम में प्रकाशित हुआ था। प्रस्तुत लेख राजनीतिक तथा सांस्कृतिक दृष्टिकोण से अत्यन्त उपयोगी है। एस0 बी0 चौधरी ने "टोपोग्राफी इन दि पुराणाज," शीर्षक लेख इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली, भाग,5 में प्रकाशित करवाया था। विनायक मिश्र ने फाकर एण्ड पुराणिक ट्रेडिशन अबाउट दि ओरिजिन आफ गाड जगन्नाथ: शीर्षक लेख लिखा है जो इण्डियन हिस्ट्रारिकल क्वार्टर्ली, भाग,24 में प्रकाशित हुआ था।

दिनेशचन्द्र सरकार ने स्टडीज इन दि ज्याग्रफी आफ दि एंशिएंट एण्ड मेडीवल इण्डिया।[1] नामक पुस्तक का प्रणयन किया है। प्रस्तुत ग्रन्थ में "पुराणिक लिस्ट आफ रिवर्स", शीर्षक वाला एक अध्याय भी लिखा गया है। इस में पुराणों में वर्णित नदियों का विस्तृत विवेचन मिलता है। यह ग्रन्थ इनके कठिन परिश्रम का परिचायक है। इन्होंने इस अध्याय को इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली, भाग,27 में लेख के रूप में प्रकाशित करवाया था। डी0सी0 गांगुली ने "पुराणाज आन दि इम्पीरियल गुप्ताज", शीर्षक लेख लिखा है जो इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली, भाग,21 में प्रकाशित हुआ था। सुनीति कुमार चटर्जी ने पुराण लीजेण्ड्स एण्ड दि प्राकृत ट्रेडिशन इन न्यू इण्डो आर्यन: शीर्षक लेख लिखा था जो बुलेटिन आफ दि स्कूल आफ ओरियण्टल स्टडीज भाग,8 में प्रकाशित हुआ था।

1-दिल्ली,1960

पुराणों पर इनके अतिरिक्त और भी कार्य हुये हैं जो हिन्दी भाषा में हैं जिन में निम्नलिखित विशेषतया उल्लेखनीय हैं। ज्वाला प्रसाद मिश्र ने अष्टादश पुराण दर्पण[1] नामक पुस्तक की रचना की है। इसमें इन्होंने पुराणों की उत्पत्ति तथा उनके काल निर्णय आदि का सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है। पं० रामबिहारी शुक्ल ने पद्म पुराण[2] का हिन्दी में अनुवाद किया है। रामदास गौड़ ने हिन्दुत्व[3] नामक ग्रन्थ की रचना की है। इसमें इन्होंने अठारहों पुराणों की सूची प्रस्तुत की है। पं० बदरीनाथ शुक्ल ने मार्कण्डेय पुराण[4] एक अध्ययन की रचना की है।

आचार्य बलदेव उपाध्याय ने आर्य संस्कृति के मूलाधार[5] नामक ग्रन्थ में 63 पृष्ठों में पुराणों का संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत किया है। इन्होंने एक दूसरे ग्रन्थ पुराण विमर्श[6] को भी लिपिबद्ध किया है। इस ग्रन्थ में इन्होंने पुराणों की उत्पत्ति उनका रचना काल, उनकी संख्या तथा इतिहास पुराण आदि विषयों पर भली भांति विचार व्यक्त किया है। वासुदेवशरण अग्रवाल ने मार्कण्डेय पुराण एक अध्ययन की रचना की है।

युग योजना और पुराण:- मनकद ने युग पुराण[7] का सम्पादन किया है। यद्यपि युग पुराण एक स्वतंत्र पुराण नहीं है और यह गार्गी संहिता का एक अंग है

1- बम्बई, सं० 1993

2- लखनऊ, 1904

3- काशी विद्यापीठ वाराणसी से प्रकाशित

4- चौखम्बा, काशी, 1960

5- नन्दकिशोर एण्ड सन्स काशी , 1961

6- चौखम्बा, विद्याभवन वाराणसी, 1965

7- चारुत्तर प्रकाशन, वल्लभ विद्यानगर, 1951

फिर भी इसकी शैली और सामग्री इसे पुराणों के बहुत निकट ला देती है। इन्होंने "युगपुराण", "मन्वन्तर", तथा मन्वन्तर चतुर्युग मेथड, शीर्षक लेख भी लिखा है जो पूना आरियण्टलिस्ट पूना, भाग 5 में प्रकाशित हुआ था। के०एच० ध्रुव ने " "हिस्टारिकल कन्टेन्ट्स आँफ दि युग पुराण शीर्षक निबन्ध लिखा था जो जर्नल आँफ दि बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी भाग 16 में प्रकाशित हुआ था। आनन्द स्वरूप गुप्त ने "पुराणिक थियरी आँफ दि युगाज एण्ड कल्पाज, शीर्षक निबन्ध लिखा है जो पुराण पत्रिका भाग 11, अंक 2 में प्रकाशित हुआ था। एस०डी० ज्ञानी ने "डेट आँफ दि पुराणाज," शीर्षक लेख लिखा है जो पुराण पत्रिका भाग 1 अंक 2 में प्रकाशित हुआ था। दुर्गाशंकर शास्त्री ने "डेट आँफ भागवत पुराण", शीर्षक लेख लिखा है जो भारतीय विद्या, भाग 2 में प्रकाशित हुआ था।

पुराण और राजनीतिक इतिहास:- पुराणों में प्राप्त राजनीतिक विचारों से सम्बन्धित विषयों पर भी अनेक विद्वान लेखकों ने पुस्तकें और लेख लिखे हैं जिनमें निम्नलिखित विशेषतया उल्लेखनीय है। एफ०ई० पार्जिटर ने [अ] दि पुराण टेक्स्ट आँव दि डाइनेस्टीज आँफ दि कलि एज[1] तथा [ब] एंशिएंट इण्डियन हिस्टारिकल ट्रेडिशन[2] की रचना की। प्रथम ग्रन्थ में विद्वान लेखक ने विभिन्न पुराणों में उपलब्ध कलियुग की राजवंशावलियों से सम्बन्धित श्लोकों का चयन किया है। इनकी दूसरी शोधपूर्ण पुस्तक में पुराणों की उत्पत्ति तथा विकास, मूल पुराण संहिता, तथा इसके रचयिता, पुराणों की संख्या, वर्गीकरण पद्धति, आदि विषयों का विवेचन बड़े

1- आक्सफोर्ड, 1913

2- आक्सफोर्ड 1922

रोचक ढंग का मिलता है।

ए०डी० पुसाल्कर का कार्य पौराणिक साहित्य में अत्यन्त सराहनीय है। इन्होने स्टडीज इन एपिक्स एण्ड दि पुराणाज[1] नामक पुस्तक की रचना की है। इसमें इन्होने पुराण का अर्थ, पुराणों का वर्गीकरण, उनकी तिथि, सृष्टि तत्व तथा कृष्ण समस्या पर भलीभांति अपने विचार व्यक्त किये हैं। विद्वान लेखक ने अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, तथा भारत की बंगाली, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं में पुराणों के विषय में जो कुछ लिखा है उसका संकलन बड़े परिश्रम एवं धैर्य के साथ किया है। इन्होने " प्री भारतवार हिस्ट्री फ्रामदि पुराणाज, शीर्षक लेख लिखा है जो क्वार्टर्ली रिव्यू आफ हिस्टारिकल स्टडीज, भाग, 7 अंक 1 में छपा था।

अल्टेकर ने पौराणिक तथा वैदिक सूची के परस्पर सम्बन्ध से महाभारत युद्ध का समय 19सवीं ई०पू०, अत्रि को 2600 ई०पू० तथा ब्राह्मण और उपनिषद् काल को क्रमशः 1600-100 ई०पू० तथा 1200-600 ई०पू० निश्चित किया है।[2]

हेमचन्द्र राय चौधरी ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास[3] में परीक्षित के समय से छठी शताब्दी ई०पू० के पौराणिक इतिहास को वैदिक सामग्री के आधार पर विश्वसनीयता प्रदान करने की चेष्टा की है। इसी प्रयास को ए०डी० पुसाल्कर ने वैदिक एज[4] में लिखे गये पौराणिक इतिहास वाले अपने अध्याय में और आगे बढ़ाया है।

1- बम्बई, 1955

2- प्रोसीडिंग आफ दि इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, भाग 2

3- इलाहाबाद, 1978

4- भारतीय विद्या भवन, बम्बई, 1971

पी०एल० भार्गव ने इण्डिया इन दि वैदिक एज[1] नामक अपने ग्रन्थ में पौराणिक वंशावलियों का सम्बन्ध वैदिक साहित्य में उपलब्ध राजनीतिक इतिहास को सामग्री से जोड़ने का प्रयास किया है। इन्होने "प्रो मौर्यन हिस्ट्री एकार्डिंग टू पुराणाज, शीर्षक लेख लिखा है जो इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली भाग 17 में प्रकाशित हुआ था। इन्होने पुराणों में विवेचित प्रद्योत, शिशुनाग, नन्द तथा मौर्यों की उत्पत्ति के विषय में अपने विचार व्यक्त किये हैं। ए०वी० एल० अवस्थी ने हिस्ट्री फ्राम दि पुराणाज[2] नामक पुस्तक का प्रणयन किया है।

सिद्धेश्वरी नारायण राय ने "हिस्टारिकल एनालिसिस आफ ए पुराणिक वर्स रिलेटिंग टू शुंग डाइनेस्टीज" शीर्षक लेख लिखा है जो पुराण-पत्रिका भाग 11 अंक 1 में प्रकाशित हुआ था। इन्होने " आन दि क्रोनोलाजिकल एण्ड हिस्टारिकल एनालिसिस आफ ए पुराणिक लीजेण्ड आन फैलिक वर्शिप, शीर्षक निबन्ध भी लिखा है जो जर्नल आफ दि ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट बड़ौदा, भाग 17, अंक 2 में प्रकाशित हुआ था। इन्होने एनालिसिस आफ ए वर्स फ्राम ब्रह्माण्ड इन हिस्टारिकल पर्सपेक्टिव, शीर्षक लेख लिखा है जो जर्नल आफ दि ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट आफ बड़ौदा, भाग 17 में प्रकाशित हुआ था। इन्होने ब्रह्माण्ड पुराण का काल दसवीं शताब्दी ई० निश्चित किया है।

प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास[3] भाग, 1 प्राक मौर्यकाल, नामक पुस्तक में ओमप्रकाश ने भी पौराणिक इतिहास के पुनर्गठन के पूर्ववर्ती प्रयासों का समालोचनात्मक विवरण प्रस्तुत किया है। वी०आर० रामचन्द्र दीक्षितार ने

1-लखनऊ, 1956

2-लखनऊ, 1975

3-इलाहाबाद, 1972

प्रॉलिटी इन दि मत्स्य पुराण[1] की रचना की है। बमबहादुर मिश्र ने प्रॉलिटी इन दि अग्नि पुराण[2] नामक पुस्तक का प्रणयन किया है। एस०एन० प्रधान ने क्रोनोलाजी ऑफ ऐंशेण्ट इण्डिया[3] नामक पुस्तक की रचना की। इस में इन्होंने राम से लेकर कृष्ण और बार्हस्पत्यों, शिशुनागों, प्रद्योतों, नन्दों तथा मौर्यों तक पौराणिक वंशावली का विवरण प्रस्तुत किया है।

ए०पी० करमारकर ने "बृहस्पति नीतिसार इन गरुड़ पुराण" शीर्षक लेख लिखा है जो सिद्ध भारती, भाग, 1 में प्रकाशित हुआ था।

पुराण और सांस्कृतिक इतिहास:- राजनीतिक इतिहास के अतिरिक्त सांस्कृतिक इतिहास से सम्बन्धित पौराणिक सामग्री के चयन के भी कुछ महत्वपूर्ण प्रयास हुये हैं जिन में निम्नलिखित विशेषतया उल्लेखनीय हैं। डी० आर० पाटिल ने कल्चरल हिस्ट्री फ्राम दि वायु पुराण[4] की रचना की है जो प्रकाशन से पूर्व पी० एच० डी० की उपाधि के लिए शोध प्रबन्ध के रूप में स्वीकृत हुआ था। किसी एक पुराण को लेकर उस का सांस्कृतिक अध्ययन प्रस्तुत करने का यह संभवत: प्रथम प्रयास है।

हरिवंश को महाभारत का "खिल" कहा गया है। वीणापाणि पाण्डेय ने हरिवंश पुराण का सांस्कृतिक विवेचन[5] नामक पुस्तक की रचना की है।

1- मद्रास, 1935

2- कलकत्ता, 1965

3- कलकत्ता, 1955

4- पूना, 1946

5- बनारस, 1960

वी0 आर0 रामचन्द्र दीक्षितार ने सम एस्पेक्ट आफ दि वायु पुराण[1] तथा मत्स्यपुराण ए स्टडी[2] की रचना की है। एस0जी0कान्तावाला ने कल्चरल हिस्ट्री फ्राम दि मत्स्य पुराण[3] की रचना की है। प्रस्तुत ग्रन्थ में इन्होंने सामाजिक संगठन, विवाह, परिवार और स्त्रियों की दशा, सामाजिक तथा आर्थिक जीवन आदि विषयों पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। वासुदेव शरण अग्रवाल ने मत्स्य पुराण ए स्टडी[4] का प्रणयन किया है।

किशोरी शरण त्रिपाठी ने कल्चरल स्टडी आफ दि श्री मद्भागवत[5] नामक ग्रन्थ की रचना की है। इस पुस्तक में इन्होंने पाप और प्रयश्चित, अपराध और दण्ड, स्त्री साहचर्य से उत्पन्न दोष, तीर्थ यात्रायें और तीर्थस्थल भोजन पान, वस्त्र तथा आभूषण पर अपना मन्तव्य प्रकट किये हैं। राजकुमार अरोरा ने हिस्टारिकल एण्ड कल्चरल डाटा फ्राम दि भविष्य पुराण[6] नामक पुस्तक की रचना की है। इसमें इन्होंने जाति की उत्पत्ति एवं चारों वर्णों के कर्तव्य, जाति प्रथा, पेशा, भोजन, स्त्रियों की दशा आदि पर अपनी अध्ययन सामग्री के आधार पर महत्वपूर्ण निर्णय निकाले हैं।

सिद्धेश्वरी नारायण राय ने हिस्टारिकल एण्ड कल्चरल स्टडीज इन दि पुराणाज[7] तथा पौराणिक धर्म एवं समाज[8] नामक ग्रन्थों की रचना की है।

1- मद्रास, 1935
2- मद्रास, 1933
3- बड़ौदा, 1964
4- वाराणसी, 1963
5- बनारस, 1969
6- नई दिल्ली, 1972
7- इलाहाबाद, 1978
8- इलाहाबाद, 1968

इन्होंने पौराणिक धर्म एवं समाज में विष्णु, मत्स्य, वायु तथा ब्रह्माण्ड पुराण का सांस्कृतिक विवेचन प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त, इस ग्रन्थ में इन्होंने पुराण का अर्थ, पुराणों की संख्या, अवतार तथा भक्ति को विवेचन का विषय बनाया है। ओमप्रकाश ने पोलिटिकल आइडियाज इन दि पुराणाज[1] नामक ग्रन्थ की रचना की है। इन्होंने "डिविनिटी ऑफ दि किंग एण्ड दि राइट ऑफ रिवोल्यूशन इन दि पुराणाज", शीर्षक लेख भी लिखा है जो पुराण-पत्रिका, भाग 13 अंक 2 में प्रकाशित हुआ था। ए० बी० एल० अवस्थी ने स्टडीज इन स्कन्द पुराण[2] नामक पुस्तक की रचना की है। इस में इन्होंने वर्ण व्यवस्था, पारिवारिक जीवन, संस्कार, विवाह, स्त्री दशा, भोजन, पान, वस्त्र आभूषण आदि को वर्णन का विषय बनाया है। सर्वानन्द पाठक ने "विष्णु पुराण का भारत"[3] नामक पुस्तक लिखा है। हरिशंकर उपाध्याय को "पद्मपुराण का सांस्कृतिक अध्ययन," नामक शोध प्रबन्ध पर प्रयाग विश्वविद्यालय से डी० फिल् की उपाधि प्राप्त हो चुकी है। यह ग्रन्थ अभी प्रकाशित नहीं हुआ है।

पुराण और धार्मिक इतिहास:- पुराण उत्पत्ति तथा विकास के अतिरिक्त पौराणिक धर्म पर भी अनेक विद्वानों ने महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं जिन में निम्नलिखित विशेषतया उल्लेखनीय हैं। बार्थ विरचित रिलिजन्स ऑफ इण्डिया[4]

1- इलाहाबाद, 1977

2- लखनऊ, 1965

3- बनारस, 1967

4- लन्दन, 1921

में पौराणिक धर्म जिसमें वैष्णव धर्म विशेषतया उल्लेखनीय है, के विषय में पर्याप्त सामग्री पाई जाती है। सर मोनियर विलियम ने रिलिजन्स थाट एण्ड लाइफ इन इण्डिया[1] नामक पुस्तक लिखा है। ई0 डब्ल्यू हापकिंस ने अपने ग्रन्थ रिलिजन्स आँफ इण्डिया[2] में "हाइपो थीसिस अबाउट ह्यूमैन कैरेक्टर आँफ कृष्ण" शीर्षक वाला एक अध्याय लिखा है। इन्होंने इस अध्याय में कृष्ण के विषय में यह विचार व्यक्त किया है कि कृष्ण पाण्डवों के संरक्षक देवता थे।

आर0 जी0 भण्डारकर ने वैष्णविज्म/शैविज्म एण्ड माइनर रिलिजस सिस्टम्स[3] की रचना की है। प्रस्तुत ग्रन्थ में इन्होंने महाभारत और भागवत के स्थलों की चर्चा करते हुये वैष्णव धर्म के विकास, वासुदेव कृष्ण का तादात्म्य, विष्णु और नारायण का एकीकरण, गीता के महत्वपूर्ण अंशों का विवेचन तथा शैव धर्म की उत्पत्ति और विकास पर महत्वपूर्ण प्रकाश डाला है। जे0एन0 फर्क्यूहर ने एन आउट लाइन आँफ दि रिलिजस लिटरेचर आँफ इण्डिया[4] की रचना की है।

मैक्निकाल ने इण्डियन थीज्म[5] में यह विचार व्यक्त किया है कि छान्दोग्य उपनिषद् में वर्णित कृष्ण तथा पौराणिक कृष्ण में कोई अन्तर नहीं है। इसमें इन्होंने कृष्ण को मर्त्य शिक्षक तथा वृष्णि वंशी पराक्रमी राजकुमार बतलाया है। हेमचन्द्र राय चौधरी ने अपनी पुस्तक मैटीरियल फार दि स्टडी आँफ दि

1- लन्दन से प्रकाशित

2- लन्दन, 1889

3- इण्डोलाजिकल बुक हाउस, वाराणसी, 1965

4- लन्दन, 1920

5- कलकत्ता से प्रकाशित

अर्ली हिस्ट्री आफ दि वैष्णव सेक्ट[1] में भागवत धर्म विषयक महत्वपूर्ण विचार व्यक्त किये हैं। उनका यह कथन है कि भागवत धर्म के प्रवर्तक वासुदेव मथुरा के प्रसिद्ध वृष्णि वंश के राजकुमार थे और वे वनस्पति को वृद्धि करने वाले थे।
चार्ल्स इलियट ने अपनो पुस्तक हिन्दूइज्म एण्ड बुद्धिज्म[2] में कृष्ण के विषय में लिखा है कि वे आर्यों के प्रधान एवं पाण्डवों के सहायक थे। इनके अनुसार नारायण से वासुदेव को एकता श्री मद्भागवत गीता के बाद सम्पन्न हुई।

खोन्दा ने अपनी पुस्तक, अर्ली हिस्ट्री आफ विष्णुइज्म[3] में कृष्ण को विष्णु का अवतार मानते हुये विष्णु और वासुदेव कृष्ण में एकता स्थापित की है तथा विष्णु को असुरों से देवताओं को रक्षा करने वाला बतलाया है। टी०ए० गोपीनाथ राव ने अर्ली हिस्ट्री आफ वैष्णविज्म इन साउथ इण्डिया[4] नामक पुस्तक को रचना की है। इस के अतिरिक्त मध्व तथा वल्लभ सम्प्रदाय पर भी अनेक विद्वानों ने पुस्तकें और लेख लिखे हैं।

सुवीरा जायसवाल ने दि ओरिजिन एण्ड डेवेलपमेन्ट आफ वैष्णविज्म की रचना को है। इस ग्रन्थ में इन्होंने वैष्णव देवता, नारायण विष्णु, संकर्षण बलदेव, वासुदेव कृष्ण, श्री लक्ष्मी, भक्ति का सिद्धान्त, अवतार का सिद्धान्त, वैष्णव धर्म का क्षेत्रीय विस्तार, शुंग एवं गुप्तकाल में वैष्णव धर्म जैसी समस्याओं का विवेचन किया है। भागवत कुमार गोस्वामी ने दि भक्ति कल्ट इन ऐंशण्ट-

---

1- कलकत्ता, 1936
2- लन्दन, 1921
3- अट्रेक्ट, 1954
4- मद्रास, 1923
5- दिल्ली, 1967

इण्डिया[1] और मुन्शीराम शर्मा ने भक्ति का विकास नामक पुस्तक का प्रणयन किया है जिसमें पौराणिक सामग्री का व्यापक उपयोग किया गया है।

एलियन डेनियल ने हिन्दू पोलीथीज्म[3] नामक पुस्तक पुस्तक की रचना की है। इस में इन्होंने विष्णु की सर्वव्यापकता तथा उपके अवतार जैसे प्रश्नों का विश्लेषण किया है। आर०पी० चन्द ने " आर्क्योलाजी एण्ड वैष्णव ट्रेडिशन", शीर्षक निबन्ध में जो मेमायर्स आफ दि आर्क्योलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया, अंक 5 में प्रकाशित हुआ था पौराणिक सामग्री का भी उपयोग किया है। मृणालदास गुप्ता के "अर्ली वैष्णविज्म एण्ड नारायण वर्शिप," शीर्षक लेख में भी जो इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली, भाग 7 में प्रकाशित हुआ था इसी प्रकार का एक अन्य प्रयास देखने को मिलता है। इन्होंने " सम फीचर्स आफ दि अर्ली वर्शिप आफ विष्णु एण्ड नारायण; नामक अपने दूसरे लेख में जो इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली, भाग, 8 में प्रकाशित हुआ था इस दिशा में अपनी शोधों को और आगे बढाया है। के०जी० गोस्वामी ने ए स्टडी आफ वैष्णविज्म[4] नामक पुस्तिका में शुगों के काल से लेकर गुप्त शासन काल के अन्त तक पुरातात्त्विक साक्ष्यों के आधार पर वैष्णव धर्म के पौराणिक स्वरूप का विवेचन किया है। कृष्णानन्द चौधरी को "ओरिजिन एण्ड डेवेलपमेन्ट आफ वैष्णविज्म इन नदनर्दन इण्डिया अप टू दि गुप्ता पीरियड," नामक अपने अप्रकाशित शोध प्रबन्ध पर डी०फिल् की उपाधि प्राप्त हो चुकी है। बंगाल वैष्णव धर्म पर होने वाले कार्यों में वैष्णव

1- वाराणसी, 1965

2- चौखम्बा, वाराणसी, 1958

3- लन्दन, 1964

4- , 1956

धर्म से सम्बन्धित पौराणिक सामग्री पर नवीन प्रकाश पड़ा है। इस कोटि के ग्रन्थों में एस० के० डे का अर्ली हिस्ट्री आफ वैष्णव फेथ एण्ड मूवमेन्ट इन बंगाल[1] नामक ग्रन्थ का विशेष रूप से उल्लेख किया जा सकता है। ओफ्लै हर्टी ने एसेटेसिज्म एण्ड इराटिसिज्म[2] नामक ग्रन्थ में शैव धर्म से सम्बन्धित पौराणिक देव कथाओं के तपस्या एवं मैथुन की परस्परविरोधी दिशाओं में विकास का समाज शास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत किया है।

वी० सी० श्रीवास्तव ने सन वर्शिप इन ऐंशण्ट इण्डिया[3] नामक पुस्तक की रचना की है। इन्होने " दि पुराणिक रेकर्ड्स आनदि सन वर्शिप, शीर्षक निबन्ध भी लिखा है जो पुराण-पत्रिका, भाग, ।। अंक 2 में प्रकाशित हुआ था। एस०एन० राय ने "अर्ली पुराणिक एकाउन्ट आफ सन एण्ड सोलर कल्ट" शीर्षक लेख लिखा है जो उत्तर भारती, भाग, 10 अंक 3 में प्रकाशित हुआ था।

शाक्त धर्म पर अनेक विद्वानों ने कार्य किया है जिन में निम्नलिखित विशेषतया उल्लेखनीय हैं। सर जॉन उडरफ ने शक्ति एण्ड शाक्त[4] नामक पुस्तक लिखी है। वेण्डैल चार्ल्स बीने ने मिथ, कल्ट एण्ड सेम्बुल्स इन शाक्त हिन्दुइज्म[5] नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया है। डी०सी० सरकार ने दि शक्ति कल्ट एण्ड तारा[6] नामक ग्रन्थ की रचना की है।

1- कलकत्ता, 1961

2- आक्सफोर्ड, 1973

3- इलाहाबाद, 1972

4- मद्रास, 1965

5- लीडेन, 1977

6- कलकत्ता, 1967

महापुराण:- पुराणों में प्राप्त राजनीतिक एवं सांस्कृतिक विचारों के अतिरिक्त महापुराणों पर भी अनेक विद्वानों ने कार्य किया है। जिन में निम्नलिखित विशेषतया उल्लेखनीय है। भागवत पुराण की तिथि, दर्शन तथा अन्य विषयों पर अनेक लेख लिखे गये हैं। वाई० वी० कोल्हटकर ने भागवत दर्शन[1] शीर्षक लेख लिखा है जो मराठी भाषा में है। सी०वी० वैद्य ने "डेट आफ दि भागवत" शीर्षक लेख लिखा है जो जर्नल आफ दि बाम्बे ब्रांच आफ दि रॉयल एशियाटिक सोसाइटी भाग, । में प्रकाशित हुआ था। इन्होंने भागवत को दशवीं शती ई० का बतलाया है। दुर्गाशंकर शास्त्री[2] ने नवीं शताब्दी के पहले तथा ए० एन० रे[3] ने 550-650 शती ई० के मध्य भागवत की तिथि निर्धारित किया है। राजेन्द्रचन्द्र हाजरा[4] ने भागवत पुराण की तिथि 600 शती ई० निश्चित किया है। एस० श्रीकण्ठ शास्त्री[5] ने भागवत पुराण का समय चतुर्थ शताब्दी ई० माना है। वी० आर० रामचन्द्र दीक्षितार[6] ने भागवत को गुप्तकाल की रचना बतलाया है। जे०एन बनर्जी[7] का यह कथन है कि भागवत पुराण की रचना दक्षिण में सम्भवत: पाण्ड्य देश में सम्पन्न हुई थी। पी०एस० सिन्हा ने स्टडी आफ दि भागवत पुराण आरइसोटेरिक हिन्दूइज्म[8] नामक पुस्तक लिखा था। सिद्धेश्वरी नारायण राय ने "आन कम्परेटिव क्रोनोलाजी आफ विष्णु एण्ड दि भागवत, शीर्षक निबन्ध लिखा है जो पुराण-पत्रिका भाग, 5 अंक । में प्रकाशित हुआ था।

1- जर्नल आफ बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, भाग 15, पृ0183
2- भारतीय विद्या बम्बई, भाग 2, पृ0 129
3- जर्नल आफ दि आसाम रिसर्च सोसाइटी गौहाटी, भाग 3
4- न्यू इण्डियन एण्टीक्वेरी बम्बई, भाग1, पृ0 522-528
5- एनाल्स आफ दि भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट भाग 14 पृ0241
6- प्रोसीडिंग आफ दि (आल इण्डिया) ओरियण्टल कान्फ्रेन्स भा 7, पृ0 138
7- इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली, भाग 17, पृ0138
8- मद्रास, 1950

जे0ई0 अब्बट्ट[1] ने "टोपोग्राफिकल लिस्ट ऑफ दि भागवत," शीर्षक लेख लिखा था। प्रस्तुत लेख में इन्होंने भागवत के लक्षणों की ओर विशेष ध्यान आकर्षित किया है। राघवन[2] ने " भागवत पुराण एण्ड दि भागवत गीता", शीर्षक लेख लिखा था। पी0 के0 गौडे[3] ने " एन इलस्ट्रेटेड मैन्युस्क्रिप्ट ऑफ भागवत", शीर्षक लेख लिखा था। एम0आर0 मजूमदार ने "एन इलेस्ट्रेटेड गुजराती वर्स वर्जन ऑफ भागवत", शीर्षक लेख लिखा है जो करमारकर कमेमोरेशन वाल्यूम पृ0106-114 में प्रकाशित हुआ था। जे0 वेम्बुरकर0 जे0 ने " हिस्टारिकल एण्ड रिलिजस बैग्राउण्ड ऑफ फोर युगाज इन दि महाभारत एण्ड दि भागवत पुराण", शीर्षक लेख लिखा है जो पुराण-पत्रिका भाग, 16, अंक 1 में प्रकाशित हुआ था।

एस0बी0 चौधरी ने " अनालिसिस ऑफ दि अग्नि पुराण" शीर्षक लेख लिखा है। इन्होंने इस लेख को जर्नल ऑफ दि आन्ध्र हिस्टारिकल रिसर्च सोसाइटी भाग 3 में प्रकाशित करवाया था। प्रस्तुत लेख में इन्होंने अग्नि पुराण की तिथि आठवीं और नवीं शदी ई0 के बीच निश्चित किया है। पी0सी0 लाहिरी तथा राघवनने "रीति एण्ड गुण इन दि अग्नि पुराण, शीर्षक लेख लिखा है जो इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली भाग, 9 और 10 में प्रकाशित हुआ था। मीयर ने " ट्रीकल्चर इन अग्नि पुराण", शीर्षक लेख लिखा था जो फेस्ट्स चेरिफ्ट विन्टरनित्स पृ0 59 में प्रकाशित हुआ था।

1- इण्डियन एण्टीक्वेरी, भाग, 27पृ0138

2- जर्नल ऑफ ओरियण्टल रिसर्च, भाग 12, पृ0 7।

3- न्यू इण्डियन एन्टीक्वेरी बाम्बे, भाग 1, पृ0 249-253

वी0आर0 रामचन्द्र दीक्षितार ने " मेजर पोर्शन आफ दि प्रजेण्ट विष्णु पुराण", शीर्षक लेख लिखा है जिस को इन्होंने हिस्टारिकल क्वार्टर्ली, भाग 15 में प्रकाशित करवाया था। इन्होंने विष्णु पुराण का समय छठवीं और सातवीं शती ई0 निश्चित किया है। राजेन्द्र चन्द्र हाजरा ने विष्णु पुराण की तिथि के बारे में एक लेख एनाल्स आफ दि भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट भाग 18 में प्रकाशित करवाया था। प्रस्तुत लेख में इन्होंने विष्णु पुराण के काल को प्रथम शताब्दी ई0 से चतुर्थ शताब्दी ई0 के मध्य तक माना है।[1] एच0 एच0 विलसन ने विष्णु पुराण का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया है। एस0एन0 राय ने "डेट आफ विष्णु पुराणस चैप्टर्स आन मायामोह लोजेण्ड," शीर्षक एक निबन्ध लिखा है जो पुराण-पत्रिका, भाग, 7 अंक 2 में प्रकाशित हुआ था। इन्होंने " दि डेट आफ विष्णु पुराणस एकाउन्ट आफ भारत एण्ड भुवन कोश", शीर्षक एक दूसरा लेख लिखा है जो पुराण-पत्रिका, भाग 8 अंक 2 में प्रकाशित हुआ था।

मत्स्य पुराण पर भी अनेक विद्वानों ने कार्य किया है जिन में निम्नलिखित विशेषतया उल्लेखनीय हैं। पी0वी0 काणे ने "कौटिल्य एण्ड दि मत्स्य पुराण" शीर्षक लेख लिखा है जो ला वाल्यूम 2 में प्रकाशित हुआ था। प्रस्तुत लेख में इन्होंने विष्णु पुराण के अवतरण और मत्स्य पुराण के अवतरण में साम्य स्थापित करने की चेष्टा की है। करभारकर ने मत्स्य पुराण के विषय में यह विचार व्यक्त किया है कि पौराणिक साहित्य में मत्स्य पुराण सब से पहले की रचना है।[2]

1- कलकत्ता, 1972

2- करमारकर कमेमोरेशन वालूम, पृ0 77-81

मत्स्य पुराण को भाँति ब्राह्माण्ड तथा वामन पुराण पर भी अनेक विद्वानों ने पुस्तकें और लेख लिखे हैं जिन में निम्नलिखित विशेषतया उल्लेखनीय हैं। एस०एन०राय ने " आन दि डेट आफ ब्रह्माण्ड पुराण" शीर्षक लेख लिखा है जो पुराण-पत्रिका, भाग 5 अंक 2 में प्रकाशित हुआ था। काणे महोदय ने ब्रह्माण्ड पुराण को[1] प्राचीन मानते हुये उसके समय को चतुर्थ तथा छठीं शती ई० माना है। राजेन्द्र चन्द्र हाजरा ने अपनी पुस्तक "स्टडीज इन दि पुराणिक रेकर्डस आन हिन्दू राइट्स एण्ड कस्टम्स",[2] में ब्रह्माण्ड पुराण को तिथि चतुर्थ शताब्दी ई० निश्चित किया है।

वासुदेव शरण अग्रवाल ने वामन पुराण ए स्टडी[3] की रचना की है। सुरेश देव ने "रिवर्स इन वामन पुराण" शीर्षक लेख लिखा है जो पुराण-पत्रिका, भाग, 12 अंक 1 में प्रकाशित हुआ था। हीरा मणि मिश्र ने " अ नोट आन वामनस वर्थ एण्ड मोड आफ वर्शिप", तथा के०एल० मनकोदी ने "वामन त्रिविक्रम इन इण्डियन आर्ट", तथा गंगा सागर राय ने " वामन लीजेण्ड इन वेदाज", एपिक्स एण्ड पुराणाज", शीर्षक लेख लिखा है जो पुराण-पत्रिका भाग 12 अंक 1 में प्रकाशित हुआ था। वामन पुराण पर हाल में होने वाला सब से महत्वपूर्ण कार्य काशिराज ट्रस्ट वाराणसी द्वारा इस पुराण का समालोचनात्मक संस्करण का प्रकाशन है। इसकी भूमिका में इस पुराण से सम्बन्धित विभिन्न ऐतिहासिक और धार्मिक समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है वह निश्चय ही मुल्यवान् है।

हरिप्रसाद शास्त्री ने अपने एक लेख में गरुड पुराण के काल के तृतीय तथा चतुर्थ शती ई० निश्चित किया है। इनका यह लेख इण्डियन हिस्टारिकल

1- हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र, भाग 5

2- ढाका, 1940

3- बनारस, 1964

क्वार्टली, भाग 6 में प्रकाशित हुआ था। पी०ई० ड्युमा ने " दि लीजेण्ड ऑफ सीता इन दि गरूड पुराण", शीर्षक लेख लिखा है जो सिद्ध भारती भाग 1 में प्रकाशित हुआ था। हाजरा ने " दि महापुराण", शीर्षक लेख लिखा है जो जर्नल ऑफ ओरियण्टल रिसर्च भाग 21 में प्रकाशित हुआ था। अहिभूषण भट्टाचार्य[1] ने कूर्म पुराण का अनुवाद अंग्रेजी भाषा में किया है। चौधरी श्री नारायण सिंह[2] ने कूर्म पुराण का अनुवाद हिन्दी भाषा में किया है।

उप-पुराण:- जिस प्रकार सामान्य तथा महापुराणों से सम्बन्धित ग्रन्थों एवं लेखों से विद्वान लेखकों ने पौराणिक साहित्य को संजोया तथा सबल बनाया है उसी प्रकार उप पुराणों पर भी अनेक विद्वानों ने कार्य किया है जिन में निम्नलिखित विशेषतया उल्लेखनीय हैं। राजेन्द्रचन्द्र हाजरा ने स्टडीज इन दि उप पुराणाज[3] नामक ग्रन्थ की रचना की है। इन्होंने इसको दो भागों में लिपिबद्ध किया है। प्रथम भाग में वैष्णव उप पुराण तथा द्वितीय भाग में शाक्त उपपुराणों का वर्णन मिलता है। हाजरा ने "देवी भागवत", शीर्षक लेख लिखा है जो न्यू इण्डियन एण्टीक्वेरी भाग 5 में प्रकाशित हुआ था। देवी भागवत के विषय में इनका यह विचार है कि देवी भागवत को वास्तविक भागवत नहीं कहा जा सकता। इन्होंने देवी भागवत की तिथि सातवीं शताब्दी ई० निश्चित किया है। हाजरा ने "देवी पुराण", शीर्षक एक दूसरा लेख भी लिखा है जो जर्नल ऑफ ओरियण्टल रिसर्च भाग, 21 में प्रकाशित हुआ था।

1- वाराणसी, 1972

2- वाराणसी, 1972

3- कलकत्ता, 1960

राजेन्द्र चन्द्र हाजरा ने विष्णुधर्मोत्तर पुराण भविष्योत्तर पुराण कालिका पुराण तथा गणेश पुराण पर भी लेख लिखे हैं। इन्होंने विष्णु धर्मोत्तर[1] पुराण की तिथि चतुर्थ शताब्दी ई० से पांचवीं शताब्दी ई०, शाम्ब पुराण[2] की तिथि पांचवीं शताब्दी ई०, से आठवीं शताब्दी ई०, भविष्योत्तर पुराण[3] की तिथि सातवीं शताब्दी ई० से आठवीं शताब्दी ई० तथा कालिका पुराण की तिथि दशवीं शताब्दी ई० निश्चित किया है। गोडे[4] ने कालिका पुराण की तिथि दशवीं शती ई० के पहले को बतलाया है। राघवन ने कालिका पुराण का समय सातवीं शताब्दी ई० निश्चित किया है। तीर्थ नाथ शर्मा ने "कालिका पुराण शीर्षक", लेख लिखा है जो इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली भाग 22 में प्रकाशित हुआ था। लक्ष्मण शास्त्री ने " पुराण एण्ड उप पुराण", शीर्षक निबंध लिखा है। यह निबन्ध वेद शास्त्र दीपिका नामक ग्रन्थ में संकलित है जो मराठी भाषा में लिखा गया है।

पौराणिक शोध की वर्तमान अवस्था:- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि पुराण अब केवल कल्पना प्रसूत कथाओं के भण्डार ही नहीं माने जाते विद्वानों ने उनमें भारतीय इतिहास और संस्कृति के विभिन्न तत्वों पर प्रकाश डालने वाली मूल्यवान और मौलिक सामग्री ढूढने में सफलता प्राप्त की है, किन्तु पुराण साहित्य के विशाल विस्तार को देखते हुये जो प्रयास अभी तक हुये हैं वे सराहनीय होते हुये भी अपर्याप्त और कुछ सीमा तक अव्यवस्थित भी कहे जा सकते हैं। पौराणिक शोध के समक्ष सब से बड़ी चुनौती है पुराण ग्रन्थों का

1- जर्नल आफ यूनिवर्सिटी आफ बाम्बे भाग, 3, पृ० 39

2- जर्नल आफ रायल एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता भाग 18 पृ० 91, 121-129

3- जर्नल आफ दि ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, भाग, 3, पृ० 8

4- एनाल्स आफ ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूना, भाग, 22, पृ० 1-23

आलोचनात्मक संस्करण और पाठ निर्धारण जो अब तक केवल वामन और कूर्म पुराणों के ही निकल पाये हैं। अन्य पुराणों के समालोचनात्मक संस्करण की अत्यन्त आवश्यकता है और हर्ष का विषय है कि काशीराज ट्रस्ट इस कार्य में गम्भीरता पूर्वक लगा हुआ है। समालोचनात्मक संस्करण से भी बड़ी समस्या विभिन्न पुराणों में निहित सामग्री का स्तरीकरण है। खेद की बात है कि इस दिशा में अब तक कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं हुआ है।

जैसा कि उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है राजनैतिक और सांस्कृतिक इतिहास के क्षेत्र में पौराणिक सामग्री का उपयोग अधिकाधिक हुआ है। अगर इस गति से प्रगति होती रही तो निकट भविष्य में काल्पनिक समझी जाने वाली बहुत सी पौराणिक घटनायें[1] ऐतिहासिक सिद्ध की जा सकती हैं

1- पुरानी अनुश्रुतियों आख्यानों और कथाओं में कभी-कभी ऐतिहासिक तथ्यों का समावेश उस हद तक नहीं हो पाता जितना आवश्यक है, अतएव यह अपेक्षित हो जाता है कि उनमें इतिहास सम्मत घटनाओं, प्रथाओं और मान्यताओं का मूल्यांकन अन्य विश्वसनीय और ठोस प्रमाणों के द्वारा किया जाय। इसी दृष्टिकोण से अधिकांशत: पाश्चात्य पुराविदों और अंशत: पौर्वात्य पुराविदों ने इन अनुश्रुतियों इत्यादि के विवरणों का समर्थन पुरातात्विक साक्ष्यों के द्वारा करने का प्रयास किया है। उदाहरण के लिए एक स्तर पर ग्रोर ने यूनान के इतिहास के सन्दर्भ में अपनी अनास्था अनुश्रुतियों एवं प्राचीन कथाओं के प्रति की थी, किन्तु श्लीमान् ने ऐसे सन्देह का निराकरण पुरातात्विक खोजों के द्वारा किया था और ऐसा निष्कर्ष निकाला था कि इन में बहुत से तथ्य कल्पनापूर्ण नहीं हैं अपितु ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित हैं। कुछ इसी प्रकार का सन्देह चीन के इतिहास में व्यक्त किया गयाथा जिस का निराकरण गोविन्दचन्द्र पाण्डे के मतानुसार वहाँ की पुरातात्विक खोजों के द्वारा कुछ हद तक हो जाता है। उदाहरणार्थ शांकालीन होमन से प्राप्त उत्कीर्ण अस्थियों से ऐसे अनेक राजाओं के नाम उपलब्ध होते हैं जिन्हें अन्यथा कपोल कल्पित ही माना जाता था। {एस0एन0राय, पौराणिक धर्म एवं समाज, प्रस्तावना गोविन्दचन्द्र पाण्डे द्वारा}

और बहुत से स्थानों[2] की पहचान पर नवीन प्रकाश पड़ सकता है। कालपी की पहचान इस प्रकार का एक उदाहरण है। पौराणिक सामग्री से सांस्कृतिक एवं धार्मिक जीवन पर भी पर्याप्त प्रकाश पड़ सकता है, किन्तु इसके लिए व्यवस्थित शोध की आवश्यकता है।

1-उदाहरणार्थ कालपी तथा महीसागर संगम तीर्थ की पहचान के प्रश्न पर होने वाले विवादों में पौराणिक सामग्री के निर्णायक महत्व पर बल देते हुये लेखों का उल्लेख किया जा सकता है। कालपी का सूर्य मन्दिर उन तीन मन्दिरों में से है जो क्रमशः मूलस्थान, कोणार्क और कालप्रिय में स्थापित किये गये हैं। कुछ साहित्यिक साक्ष्यों में कालपी के सूर्य मन्दिर को महाकाल मन्दिर कहे जाने के कारण कुछ विद्वान उस की स्थिति उज्जैन मानने लगे थे, लेकिन कैम्बे ताम्रपत्र तथा पौराणिक सामग्री के आधार पर अब उस की पहचान वर्तमान् कालपी नामक स्थान से किया जाता है। द्रष्टव्य, पी०वी० काणे, उत्तररामचरित आफ भवभूति, तृतीय संस्करण, भूमिका, पृ० 3, वी०वी० मिराशी, स्टडीज इन इण्डोलाजी, भाग, 1 पृ० 33, श्याम मोहन मिश्र का न्यु लाइट आन आइडेन्टी फिकेशन आफ कालप्रियनाथ शीर्षक निबन्ध, <u>पुराण पत्रिका</u> भाग 14, अंक 2, 1973, पृ० 171 इसी प्रकार मही सागर संगम तीर्थ के पहिचान के सम्बन्ध में होने वाले विवाद में पौराणिक सामग्री का निर्णयात्मक महत्व सिद्ध हुआ है। द्रष्टव्य वी०एम० वेडेकर का "महीसागर संगम तीर्थ", शीर्षक निबन्ध, <u>पुराण-पत्रिका</u> भाग, 4, अंक 1, पृ० 197, डी०सी० सरकार का "महीसागर संगम", शीर्षक निबन्ध, <u>पुराण-पत्रिका</u>, भाग 5 अंक 2, 1963, पृ० 352, आर०एन० मेहता का " ए कन्सोडरेशन आफ महीसागर संगम", शीर्षक निबन्ध, <u>पुराण-पत्रिका</u>, भाग 9, अंक 1, 1967, पृ० 198

द्वितीय अध्याय

आलोचित पुराणों का तिथिक्रम और उनके वैष्णव कथानक

विष्णु पुराण:-- प्रारम्भिक पुराण ग्रन्थों में विष्णु पुराण एक एक महत्वपूर्ण रचना है। इसके वर्ण्य विषयों में विष्णु के आराध्य पक्ष को प्रधानता दो गई है। इस लिए इस को वैष्णव पुराण की संज्ञा दी गई है। इस पुराण में पंचलक्षण का समाहार संतोषजनक रूप में सुरक्षित है। इस की तुलना में अन्य पुराणों में पंचलक्षण आंशिक और अपूर्ण रूप में पाया जाता है। इस पुराण को सांस्कृतिक तत्वों के अध्ययन को दृष्टि से महत्वपूर्ण माना जा सकता है। इसको रचनात्मक प्रवृत्ति धार्मिक बन बैठी है जिस में वैष्णव धर्म का प्रचुर परिपाक प्राप्त होता है। इस ग्रन्थ के रचयिता एवं अध्यायों के संकलन कर्ता ने वैष्णव देवता के उपास्य तत्व को कुछ इस ढंग से दर्शाया है कि इसके अध्यायों में साम्प्रदायिक आग्रह को प्रवृत्ति अपेक्षाकृत कम दिखाई पड़ती है। विष्णु पुराण की यह विशेषता इस की प्राचीनता सिद्ध करने में प्रबल प्रमाण मानी जा सकती है। इतना होते हुये भी कुछ आलोचकों ने इसे उत्तरकालीन रचना माना है। प्रस्तुत सन्दर्भ में पार्जिटर महोदय ने यह विचार व्यक्त किया है कि इसके वर्ण्य-विषय एवं रचना शैली में एकरूपता दृष्टिगोचर होती है, जिस का वायु, ब्रह्माण्ड और मत्स्य पुराणों में अभाव दिखाई पड़ता है। यह ग्रन्थ निश्चित योजना के साथ लिखा गया है। प्रारम्भिक पुराण रचना की तरह इस ग्रन्थ में जैन तथा बौद्ध धर्मों के प्रतिपादक स्थल प्राप्त होते हैं जिसके आधार पर इस का रचनाकाल लगभग पाँचवीं शताब्दी ई0 माना जा सकता है।[1] फर्क्यूहर के कथनानुसार विष्णु पुराण तथा हरिवंश के वर्ण्य विषयों में समता दिखाई देती है। यदि हरिवंश का रचना काल 400 ई0 मान लिया जाय तो इसी के आसपास विष्णु पुराण की तिथि निश्चित की जा सकती है।[2] सी0वी0 वैद्य महोदय के

1- पार्जीटर, एंशिएन्ट इण्डियन हिस्टारिकल ट्रेडिशन, पृ0 80

2- फर्क्यूहर, एन आउट लाइन ऑफ दि रिलीजस लिटरेचर ऑफ इण्डिया, पृ0 143

अनुसार विष्णु पुराण की रचना नवीं शताब्दी ई० में हुई। इन्होंने अपने विचार की पुष्टि के लिए विष्णु पुराण के कुछ विशिष्ट स्थलों के प्रमाण दिये हैं, 4.24.16; जहाँ कैकिल नामक यवनों की चर्चा हुयी है। कैकिल यवन 575-900 ई0 के आस पास आन्ध्र के शासक थे।[1]

विन्टरनित्स, हाजरा, तथा आचार्य उपाध्याय ने विष्णु पुराण को पौराणिक रचना की प्रारम्भिक कृतियों में रखा है। विन्टरनित्स का कथन है कि विष्णु पुराण एक वैष्णव पुराण संरचना है। इस के वर्ण्य विषयों में विष्णु की आराधना पर बल दिया गया है। इस में विष्णु को संसार का स्रष्टा, संरक्षक तथा संहार करने वाला कहा गया है। अन्य देवता उदाहरणार्थ-ब्रह्मा शिव इनके स्वरूप के साथ घुल मिले हैं। विन्टरनित्स ने पुन: कहा है कि विष्णु-पुराण के स्थलों में पंचलक्षण का पूर्ण रूपेण निर्वाह हुआ है, जो इस पुराण की प्राचीनता प्रतिपादित करने में एक महत्वपूर्ण प्रमाण माना जा सकता है। जहाँ तक विष्णु पुराण के समय का प्रश्न है विन्टरनित्स को पार्जीटर का मत मान्य नहीं है।[2]

हाजरा महोदय ने विष्णु पुराण की प्राचीनता सिद्ध करने के लिए निम्नांकित आधारभूत साक्ष्यों की ओर संकेत किया है। इनका पहला तर्क यह है कि विष्णु पुराण में वैष्णव धर्म सम्बन्धी स्थल जितने हैं, उनमें कूर्म पुराण की अपेक्षा अधिक प्राचीनता दिखाई पड़ती है। इसका विशेष कारण यह है कि कूर्म पुराण के कुछ स्थलों में शाक्त तत्वों का निर्वाह फिरनाई पड़ता है, जब कि विष्णु-पुराण में शाक्त सम्बन्धी वैष्णव स्थल नहीं पाये जाते हैं केवल कुछ श्लोक तत्वों

1- सी0वी0 वैद्य, हिस्ट्री आफ मेडीवल हिन्दू इण्डिया, भाग 1, पृ0 350

2- विन्टरनित्स, हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर, भाग 1, पृ0 143

से सम्बन्धित है।[1] इस दृष्टि से विष्णु पुराण कूर्म पुराण से पहले का ग्रन्थ प्रतीत होता है। यदि कूर्म पुराण के वैष्णव परक स्थलों की रचना का काल 550 ई० और 650 ई० के बीच में मान लिया जाय[2] तो विष्णु पुराण को सातवीं शताब्दी के पहले की रचना मानना उचित है।[3]

हाजरा महोदय का दूसरा तर्क यह है कि विष्णु पुराण में कथाओं का जो स्वरूप प्राप्त होता है और अवतारवाद का परिकल्पना जिस स्तर पर है, वह भागवत के एतद्विषयक विवरणों की अपेक्षा प्राचीन है। उदाहरणार्थ, ध्रुव, वेणु, प्रह्लाद, जडभरत तथा कृष्ण से सम्बन्धित कथायें। विष्णु पुराण में इन आख्यानों का वर्णन संक्षेप में है परन्तु भागवत में ये कथायें विस्तार में वर्णित हैं विष्णु पुराण में विष्णु के अवतार का जो स्वरूप प्राप्त होता है वह भागवत की अपेक्षा अविकसित रूप में है, क्यों कि विष्णु पुराण में श्री कृष्ण लघु अंश रूप में वर्णित हैं जब कि भागवत पुराण में वे अंशावतार या स्वयं विष्णु घोषित किये गये हैं। विष्णु पुराण तथा भागवत पुराण की तुलना के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि विष्णु पुराण भागवत के काल से (हाजरा के मतानुसार सातवीं शताब्दी ई०) पहले की रचना है।[4] हाजरा का तीसरा तर्क विष्णु पुराण में वर्णित नक्षत्रों के गणना-क्रम से सम्बन्धित है। इसमें नक्षत्रों का निर्देश करते हुये इनका आरम्भ कृत्तिका से किया गया है।[5] वराह मिहिर ने

1- विष्णु पुराण, 1/8/15-32

2- हाजरा, स्टडीज इन दि पुराणिक रेकर्ड्स आन हिन्दू राइट्स एण्ड कस्टम्स, पृ० 22

3- वही, पृ० 21-22

4- हाजरा, वही, पृ० 22

5- कृत्तिकादिषु ऋक्षेषु विषमेषु च यद्दिवः ।
दृष्टार्कपतितं ज्ञेयं तद्गाङ्गं दिग्गजोज्झितम् ।।

नक्षत्र-क्रम की जिस व्यवस्था को अपनाया है, वह अश्विनी से प्रारम्भ होती है। यह भी मालूम होता है कि उनके समय में कृत्तिका से प्रारम्भ करने की नक्षत्र-क्रम पद्धति पुरानी मानी जाती थी। इस प्रकार ऐसी स्थिति में विष्णु पुराण को वराह मिहिर के काल (पाँचवीं शताब्दी ई० से पूर्व मानने में कोई असंगति नहीं दिखाई देती है।[1] हाजरा इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इस ग्रन्थ की रचना प्रथम और चतुर्थ शताब्दी ई० के मध्य काल में हुई होगी।[2]

आचार्य बलदेव उपाध्याय का विष्णु पुराण के रचनाकाल से सम्बन्धित तर्क "तत्ववैशारदी" नामक टीका में वाचस्पति मिश्र (841 ई०) द्वारा उद्धृत विष्णु पुराण के श्लोकों को समीक्षा पर आधारित है। इस टीका में तीन स्थलों (2/32; 2/52; 2/54 ई० द्वारा) पर विष्णु पुराण के श्लोक उद्धृत किये गये हैं। इस प्रसंग में उपाध्याय ने भाष्य की टीका में " अत्रैव वैयासिकी योगमासीत"- इस उद्धरण का अर्थ यह माना है कि अत्रैव" इत्यादि व्यास परम्परा का वचन है। इस का मूल रूप विष्णु पुराण में श्लोक बद्ध मिलता है (स्वाध्यायाद्योगमासीत्" योगात्स्वाध्याय मावसेत्- 6/6/2)। अपने कथन को विस्तृत करते हुये आचार्य उपाध्याय पुनः कहते हैं कि उक्त टीका के आधारभूत ग्रन्थ योगभाष्य का एक निर्देशन न्याय भाष्य में प्राप्त होता है। इस प्रकार योग भाष्य का समय वात्स्यायन के न्याय भाष्य द्वितीय तृतीय शती से अधिक प्राचीन प्रतीत होता है। इस समीक्षा के आधार पर यह प्रमाणित किया गया है कि विष्णु पुराण प्रथम शताब्दी ई० के पूर्व की रचना है।[3]

1- हाजरा, वही, पृ० 22-23

2- वही, पृ० 24

3- बलदेव उपाध्याय, पुराण विमर्श, पृ० 543-544

अपनी समीक्षा को दृढ़ करते हुये आचार्य उपाध्याय ने प्रो० दीक्षितार द्वारा आलोचित विष्णु पुराण के तिथि सम्बन्धी उस महत्वपूर्ण विवेचन का निर्देश दिया है[1] जो तमिल साहित्य के महत्वपूर्ण काव्य मणिमेखले पर आधारित है। काव्य में जो देवी वर्णित हैं उनका नाम मणिमेखला है, जिनसे सामुद्रिकों की रक्षा की प्रार्थना की गई है। ग्रन्थ का रचनाकाल इस्वी की द्वितीय शती माना जाता है। इस में एक उल्लेख विष्णु पुराण के अस्तित्व को प्रमाणित करता है। वैंगी की सभा में विभिन्न धर्मानुयायी आचार्यों के द्वारा प्रवचन तथा शास्त्रार्थ का उल्लेख इस ग्रन्थ में मिलता है जिन में वेदान्ती, शैववादी, ब्रह्मवादी, आजीवक, निर्ग्रन्थ, सख्य, आचार्य, वैशेषिक, व्याख्याता और अंत में भूतवादी के द्वारा मणिमेखला को सम्बोधित किये जाने का उल्लेख है। इसी सन्दर्भ में तमिल में एक पंक्ति आती है-

"कललवर्ण पुराण मेदियन्" जिस का अर्थ है विष्णु पुराण में पाण्डित्य रखने वाला व्यक्ति। इस प्रसंग में ध्यान देने की बात यह है कि संगमयुग में "विष्णु" शब्द का प्रयोग नहीं मिलता है। उस देवता के निर्देश के लिए तिरुमाल अथवा कल लवर्ण शब्दों का ही प्रयोग मिलता है। फलत: आलोचित तमिल काव्य की पंक्ति का तात्पर्य वैष्णव धर्म का प्रतिपादन करने वाले पुराणों से सामान्यत: विष्णु पुराण से है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि मणिमेखले की रचना के समय प्रवचन और श्रवण होता होगा।

द्रष्टव्य वर्णनीय पक्ष यह है कि यदि विष्णु पुराण को प्रवचन के लिये चुना गया होगा तो द्वितीय शताब्दी ई० के कम से कम एक शताब्दी पूर्व विष्णु - पुराण का प्रवचनीय संस्करण अपने आकार में आ चुका होगा। इस प्रकार

1- इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली, भाग 7, 1931, पृ0 370-371

योगभाष्य और मणिमेखले के साक्ष्यों को मिलाकर अन्तिम निष्कर्ष निकाला गया है कि विष्णु पुराण की रचना ईसवी पूर्व में कभी सम्भवतः सम्पन्न हुई होगी।[1]

विष्णु पुराण, वंश विवरण में गुप्त वंश के आविर्भाव पर्यन्त घटनाओं का वर्णन प्रस्तुत करता है। इसके अनुसार गुप्तों के अधिकार में आये हुये क्षेत्र साकेत, प्रयाग और मगध थे। इन स्थानों के निर्देश से यह मालूम होता है कि विष्णु पुराण के संकलनकर्ता को चन्द्रगुप्त प्रथम (320 ई0-327 ई0) की राज्य सीमा का ज्ञान था। इस आधार पर 300 ई0 के आस पास इस पुराण के एक निश्चित संस्करण का काल माना जा सकता है।[2]

विष्णु पुराण में वर्णित भरत आख्यान के आधार पर प्रस्तुत पुराण की तिथि निश्चित करने का प्रयास किया गया है। विष्णु पुराण में भरत आख्यान का जो स्वरूप प्राप्त होता है वह मौलिक नहीं है।[3] सामान्यतया यही माना जाता है कि जड़भरत आख्यान का जो स्वरूप विष्णु पुराण में पाया जाता है वह भागवत की अपेक्षा प्राचीन है। परन्तु यह कथन कहाँ तक सार्थक है, विष्णु पुराण में वर्णित भरत आख्यान के विवरण से मेल नहीं खाता। इसकी समीक्षा अग्रिम विवेचन में प्रस्तुत पुराण के आन्तरिक परीक्षण के आधार पर की जा सकती है।[4] विष्णु पुराण में द्वितीय अंश के भुवन कोश खण्ड में भरत आख्यान का विवरण प्राप्त होता है। द्वितीय अंश के अध्याय एक में भरत तथा

---

1. उपाध्याय, वही, पृ0 545
2. द्रष्टव्य, सिद्धेश्वरी नारायण राय, पौराणिक धर्म एवं समाज, पृ0 116
3. हाजरा, वही, पृ0 22
4. द्रष्टव्य, सिद्धेश्वरी नारायण राय का निबन्ध, "आन दि डेट आफ पुराणाज चैपटर्स आफ भरत एण्ड भुवन कोश, पुराण पत्रिका, भाग 7 अंक 2, जुलाई 1966

इनके पूर्वजों के चरित के विषय में वर्णन मिलता है। विष्णु पुराण में वर्णित भुवन कोश के श्लोक संयोजन एवं स्थल गठन के अध्ययन से ज्ञात होता है कि अध्याय के आन्तरिक रूप में कुछ भिन्नता रही होगी। जहाँ तक वाह्य आकार का प्रश्न है अध्याय में कोई ऐसा संकेत नहीं मिलता है जिसके कारण इसकी मौलिकता के विषय में सन्देह किया जा सके। विष्णु पुराण का विवरण वायु, ब्रह्माण्ड और मार्कण्डेय पुराण के विवरण से समानता रखता है। वायु, ब्रह्माण्ड और मार्कण्डेय पुराण की भाँति विष्णु पुराण भी वंश विवरण से सम्बन्धित है। चारों पुराण इस बात पर बल देते हुये संकेत करते हैं कि वंश के पूर्ववर्ती भरत के पूर्वजों में प्रत्येक नरेश ने अपने उत्तराधिकारी को राजसिंहासन पर बैठा देने के बाद वानप्रस्थ जीवन व्यतीत किया। इस से प्रतीत होता है कि विष्णु पुराण तथा उक्त तीनों के स्थल उस समय का निर्देश करते हैं, जब कि आश्रम व्यवस्था का सूत्रपात हो चुका था। स्मार्त्त नियम समाज को एक नई दिशा प्रदान कर रहे थे। ऐसी स्थिति में आलोचित स्थल चतुर्थ शती के आस पास रखे जा सकते हैं, क्योंकि पुराणों में स्मार्त्त तत्वों के समाहार का यही काल माना गया है।[1] विष्णु पुराण तथा अन्य पुराणों में यहाँ तक तो समानता दिखाई देती है परन्तु, विष्णु पुराण के आलोचित अध्याय में ही कुछ ऐसे श्लोक भी हैं, जिन की समीक्षा से यह व्यक्त होता है कि इसके संकलनकर्ता ने वंश विवरण की ओर ध्यान न देकर शालग्राम तीर्थ[2] की महत्ता पर अधिक बल दिया है जिस का वर्णन अन्य तीनों ग्रन्थों में नहीं है। अतएव ऐसा मालूम होता है कि विष्णु पुराण के आलोचित अध्याय का प्रति संस्करण पौराणिक संरचना के उस महत्वपूर्ण स्थल पर प्रस्तुत किया

1- द्रष्टव्य, हाजरा, वही, पृ० 6

2- विष्णु पु०, 2/1/24,34

गया, जब कि इस में तोर्थ महत्ता से सम्बन्धित स्थलों का समावेश किया जा रहा था। इस काल केलगभग 700 ई० माना जाता है।[1]

विष्णु पुराण में भरत चरित का उल्लेख दो बार हुआ है। एक तो द्वितोय अंश के प्रारम्भ में दूसरी बार पुन: इस अंश के अंतिम अध्याय में। विष्णु पुराण के अंतिम अध्याय में भरत चरित का जो वर्णन पाया जाता है उक्त तीनों पुराणों में नहों मिलता। इस से मुख्य रूप से दो बातों को ओर संकेत प्राप्त होता है। प्रथम यह कि अंतिम अध्याय में वर्णित भरतचरित विष्णु पुराण के मूल संस्करण का अंग नहों माना जा सकता और दूसरे यह कि आलोचित श्लोक संख्या 35 भी, जब ग्रन्थ में अतिरिक्त अध्यायों का संयोजन किया गया उस समय इसे मूल अध्याय मे जोड़ा गया इस लिए यह कहा जा सकता है कि विष्णु पुराण में न केवल नये अध्याय जोड़े ही गये अपितु इसके मूल अध्याय के स्वरूप एवं गठन में परिवर्तन लाने की चेष्टा की गई।[2]

विष्णु पुराण में वर्णित भरत आख्यान को तुलना में यदि भागवत पुराण में वर्णित भरत आख्यान से को जाय तो यह विदित होता है कि दोनों विवेच्य विषय अधिकांशत: समान है। आलोचकों का कथन है कि दोनों ग्रन्थों के समान विवरणों का मूल एवं प्रारम्भिक स्वरूप विष्णु पुराण में सुरक्षित है। विष्णु पुराण के संक्षिप्त स्थलों को भागवत में विस्तार मिला है। इस दृष्टि से भागवत विष्णु पुराण की अपेक्षा उत्तर कालीन माना जाता है। अब प्रश्न यह उठायाजा सकता है, विष्णु पुराण में भरत आख्यान का जो स्वरूप प्राप्त होता है वह भागवत के विवरण की अपेक्षा उत्तरकालीन माना जा सकता है अथवा नहों। पूर्व पृष्ठों में इस बात की चर्चा को जा चुकी है कि इस ग्रन्थ के एक ही अंश में भरत आख्यान का विवरण दो बार मिलता है। ये दोनों विवरण एक ही संकलन कर्ता द्वारा अथवा एकही योजना के साथ लिखे हुये नहों लगते। इस बात

1- द्रष्टव्य, हाजरा, क्रोनोलाजिकल टेबुल आफ दि पुराणिक चेप्टर्स, वही, पृ०117

की चर्चा की जा चुकी है कि भरत चरित का मूल रूप वायु पुराण, ब्रह्म पुराण एवं मार्कण्डेय पुराण में प्राप्त होता है। इसी आधार पर इन पुराणों को तो प्रमाण माना जा सकता है परन्तु, विष्णु पुराण का विवरण श्लोक प्रक्षेप और अध्याय प्रक्षेप के कारण उत्तरकालीन ही ठहरता है मौलिक नहीं। यदि भागवत के स्थलों को देखें तो मालूम होगा कि इसमें तो भरत चरित को तो विस्तार दिया गया है पर, वर्णन की क्रमबद्धता में कोई दोष नहीं दिखाई देता। विष्णु पुराण में वर्णन सम्बन्धी क्रमबद्धता में व्यवधान का कारण इस के उन अध्यायों का संयोजन है, जो पृथक रूप में केवल भरत को विषय बनाकर लिखे गये हैं। अतएव भरत चरित के विषय में दोनों पुराणों की विहित शैली योजना विष्णु पुराण की ही उत्तरकालीनता प्रमाणित करती है।[1]

विष्णु पुराण के उपलब्ध भरत चरित में वैष्णव मत के प्रति आग्रह की ओर प्रवृत्ति अधिक दिखाई पड़ती है। शालग्राम का निर्देश विष्णु पुराण में एक विशिष्ट एवं पवित्र स्थान के लिए हुआ है। भागवत पुराण में भी शालग्राम का शब्द जिस रूप में प्रयुक्त हुआ है भिन्न है। इस का तात्पर्य स्थान-नाम से न होकर स्थान के विशेषण से है। जिस पंक्ति विशेष में इस का प्रयोग हुआ है, वहाँ इसके द्वारा पुलहाश्रम की विशिष्टता प्रकट होती है। भागवत के टीकाकार श्रीधर ने पुलस्त्य/पुलहाश्रम ~~आश्रम~~ के संयोग में शालग्राम शब्द को विशेषण के ही रूप में ग्रहण किया है। परन्तु वंशीधर शर्मा ने भाष्य में शालग्राम का अर्थ शालग्राम क्षेत्र लिया है{ शालग्रामं तदाख्यं क्षेत्रम्{ ।यह भाष्य मत भागवत की अपेक्षा विष्णु पुराण पर अधिक आधारित प्रतीत होता है।

1- द्रष्टव्य, सिद्धेश्वरी नारायण राय, पौराणिक धर्म एवं समाज, पृ0.122

श्रीधर[1] की टीका प्राचीन होने के कारण वस्तु स्थिति के निकट है। इसलिए भागवत में वर्णित शालग्राम पुलहाश्रम का विशेषण बोध ही माना जा सकता है।

1- निम्नलिखित तथ्यों के आधार पर श्रीधर स्वामी का समय निर्धारण किया जा सकता है- (क) श्रीधर ने चित्सुखाचार्य के द्वारा लिखी गई भागवतव्याख्या का अनुसरण अपनी टीका में किया है। चित्सुख का समय 1220-1284 ई0 के बीच माना जाता है। इस लिए 1200 ई0 इनके काल की पूर्व अवधि मानी जा सकती है। (ख) श्रीधर ने बोपदेव का उल्लेख अपनी भागवत की टीका में किया है। इन्होंने बोपदेव के विचारों का खण्डन भी किया है। श्रीधर 1300 ई0 से पूर्ववर्ती नहीं हो सकते। (ग) श्रीधर ने विष्णु पुराण पर जो (स्वप्रकाश) नामक व्याख्या लिखी है उसके उपलब्ध हस्तलेखों में सबसे प्राचीन हस्तलेख का समय 1511ई0 है। फलतः 1500 ई0 श्रीधर के समय की इतर अवधि है। (घ) विष्णु पुरी ने अपनी "भक्तिरत्नावली" को स्वरचित व्याख्या (कान्तिमाला) में श्रीधर स्वामी के भागवत तात्पर्य को पूर्णरूपेण समीकृत किया है। इस का उल्लेख ग्रन्थ के अंत में इन्होंने स्वयं किया है। इस ग्रन्थ का रचनाकाल 1555 शकसंवत-1633 ई0 है) उपर्युक्त बातों के आधार पर श्रीधर स्वामी का समय बोपदेव तथा विष्णु पुरी के बीच में कहीं होना चाहिए। उक्त साक्ष्यों के आधार पर इन का काल 1300-1350 ई0 अर्थात् चौदहवीं शती के मध्यभाग मानना सर्वथा उचित है। ग्रन्थ के अन्त में यह तिथि दी गई है-

महायज्ञ-शर-प्राण शशाङ्क गणिते शके ।
फाल्गुने शुक्लपक्षस्य द्वितिया यां सुमंगले ।।

द्रष्टव्य, बलदेव उपाध्याय, पुराणविमर्श, पृ0 573

इस समीक्षा से स्पष्ट प्रकट होता है कि भागवत के स्थलों की रचना उस काल में सम्पन्न हुई थी, जब कि तीर्थ विशेष के अर्थ में शालग्राम का तो प्रचलन नहीं हुआ था अथवा तीर्थ विशेष के नाम के द्योतनार्थ इस शब्द का आविष्कार नहीं हुआ था। इस के विपरीत विष्णु पुराण के स्थलों में सम्प्रदाय-विशिष्ट भावना का समावेश है, जिस का उद्देश्य एक अतिरिक्त वैष्णव तीर्थ को प्रकाश में लाकर वैष्णव मत को प्रसार देना प्रतीत होता है।

विष्णु पुराण की उत्तर कालीनता का अनुमान विष्णु पद तथा विष्णु पाद शब्दों के आधार पर भी लगाया जा सकता है। दोनों शब्द समान अर्थ रखते हैं। परन्तु इन शब्दों का प्रयोग भिन्न भिन्न अध्यायों में हुआ है। इस विषय में तीन महत्वपूर्ण बातों पर विचार किया जा सकता है। प्रथम तो यह कि दोनों शब्दों के समान अर्थ और समान प्रसंग प्रयोग द्वारा संकलनकर्ता ने वर्णन संतुलन का निर्वाह किस सीमा तक किया है, द्वितीय दोनों शब्दों तथा इन के स्थलों में प्राथमिकता किसे दी जा सकती है। तृतीय, भागवत पुराण में इन शब्दों का व्यवहार किस अर्थ और प्रसंग में किया गया है। इन तीनों बातों के मिश्रण से हम यही कह सकते हैं कि दोनों शब्दों का एक ही अंश के दोनों विवरणों में व्यवहार होना उतना नहीं खटकता है जितना कि दोनों शब्दों से एक ही निर्देश का ज्ञापन कराना। विष्णु पद तथा विष्णु पाद शब्दों में पहले शब्द की प्राचीनता ऋग्वेद से सिद्ध होती है। ऋग्वेद में उस परम विष्णु पद का वर्णन है, जिसे ऋषि ने मधु का स्रोत बतलाया है।[1] इस वैदिक वर्णन की परम्परा को विकसित करने के लिए पौराणिकों ने विष्णु पद को गंगा का स्रोत सिद्ध किया है, जिसके नीर को पार्थिव और धार्मिक दृष्टिकोण से पवित्र माना जाता था। पौराणिक संरचना में प्रथमः विष्णु पद को ही गंगा का

1- विष्णोः परमे पदे मध्व उत्सः ।

ऋग्वेद, 1/154/5

स्रोत बताया गया; इसकी पुष्टि भागवत के स्थलों द्वारा होती है। विष्णु पुराण की तरह भागवत में भी इसके एक ही स्कन्ध में भुवनकोश तथा ज्योतिश्चक्र दोनों का वर्णन है। परन्तु गंगावर्णन भुवनकोश के स्थलों में ही प्राप्त होता है। इन्हीं स्थलों में गंगा को उत्पत्ति का वर्णन विष्णु पद से किया गया है। शब्द की प्राचीनता की दृष्टि से भागवत की स्थल व्यवस्था विष्णु पुराण की तुलना में प्राचीन मानी जा सकती है। ऐसा जान पड़ता है कि विष्णु पुराण के भुवनकोश प्रसंग में मुख्य शब्द विष्णु पद ही था, परन्तु विष्णु के चरणों से गंगा के उद्भव के आख्यान के प्रकाशित होने के बाद किसी उत्तरकालीन संकलनकर्ता ने अर्थ का बोध करने के लिए मुख्य शब्द का स्वरूप बदल कर इसे विष्णु पाद बना दिया। गंगा नदी के विवरण को ज्योतिष चक्र विवरण में जोड़ दिया गया। इस संयोजन में सुविधा भी थी, क्योंकि ज्योतिश्चक्र विवरण में विष्णु पद का निर्देश पहले से ही निहित था।[1] काल क्रम की दृष्टि से विष्णु पुराण की तुलना यदि हरिवंश से की जाय तो निम्नलिखित बातें दिखाई पड़ती हैं। हरिवंश में कृष्ण की जीवनचर्या का विस्तृत विवेचन मिलता है और और उन्हें अंशावतार कहा गया है।[2] विष्णु पुराण में हल्लिसा क्रीडा को प्रेमस्पर्शी बताया गया है। परन्तु, हरिवंश में कृष्ण के यौवन की सम्पूर्ण कहानी विस्तार में वर्णित है और हल्लिसा को मैथुन से संयुक्त किया गया है।[3] हरिवंशपुराण में कथायें विकसित और विस्तृत रूप में वर्णित हैं। उदाहरणार्थ- जरासन्ध आख्यान तथा पारिजात हरण आख्यान। इनके अलावा अनेक आख्यानों का विस्तृत वर्णन हरिवंश में पाया

1- द्रष्टव्य सिद्धेश्वरी नारायण राय, वही, पृ0 130

2- अंशावतरणे कृत्स्नं जाने विष्णोर्विचेष्टितम् ।
   संग्रामतुर्यं कृत्वा विष्णुना सह भूमिपा: ।। हरि0, 249/32

3- फर्युहर, ऐन आउट लाइन आफ रिलीजस लिटरेचर आफ इण्डिया, पृ0 143

जाता है। उदाहरणार्थ आर्य सत्व, और पुण्यक व्रत। उपर्युक्त बातों के मेल से यह प्रतीत होता है कि विष्णु पुराण की उत्पत्ति हरिवंश के इस भाग से पहले की है। हरिवंश के तिथि की न्यूनतम अवधि जो गौडपाद के उत्तर गीताभाष्य[1] में उल्लिखित है और जो कि सम्भवत: छठी शताब्दी ई0 के बाद नहीं हो सकती 400 ई0 के लगभग रखी जा सकती है। इस प्रकार यह विष्णुपुराण के तिथि की न्यूनतम अवधि हुई[2]।

विष्णुपुराण के तृतीय अंश में एक महत्वपूर्ण विवरण मायामोह आख्यान है जो विष्णु पुराण के तिथि निर्धारण में बहुत ही सहायक सिद्ध हुआ है। विष्णु पुराण में वर्णित मायामोह आख्यान की तिथि विषयक समीक्षा जिन विद्वानों ने प्रस्तुत किया है इन में विलसन, पार्जीटर तथा हाजरा विशेषतया उल्लेखनीय हैं। विलसन महोदय विष्णु पुराण के विशद अनुवाद की टिप्पणी में मायामोह आख्यान में "नग्न" और "अर्हत" शब्दों का उल्लेख करते हुये अहिंसा अनुयायियों के निर्देश पर विशेष बल दिया है तथा उन्होंने पश्चिमी भारत में जैन धर्म के विकास का काल ग्यारहवीं एवं बारहवीं शती माना है। विलसन की समीक्षा के अनुसार इसी काल के अंतर्गत विष्णु पुराण में विवेचित स्थल की तिथि का भी निर्णय संगत लगता है।[3] पार्जिटर का यह विचार है कि "अर्हत" आदि शब्दों का तात्पर्य जैन और बौद्ध धर्मों से है। ऐसी स्थिति में विष्णु पुराण का काल पाँचवीं शती के उपरान्त माना गया है।[4] हाजरा ने इस प्रसंग में यह विचार व्यक्त किया है कि विष्णु पुराण के मायामोह आख्यान को इस ग्रन्थ का मूल अंग

1- उत्तरगीता, पृ0 68

2- हाजरा, पुराणिक रेकर्ड्स, पृ0 23

3- विष्णु पु0, अनुवाद, भाग 3, पृ0270

4- पार्जीटर, वही, पृ0 68,80

नहीं माना जा सकता है। अतः इसके आधार पर मायामोह आख्यान का ही समय निश्चित करना उचित है न कि सम्पूर्ण विष्णु पुराण का। प्रस्तुत आख्यान के प्रक्षिप्तांश होने का सबसे बड़ा प्रमाण यह दिया गया है कि इसमें बुद्ध विष्णु अवतार के रूप में वर्णित हैं। परन्तु इस पुराण में वैष्णव अवतारों की जो तालिका पाई जाती है, उसमें बुद्ध का निर्देश नहीं है। हाजरा महोदय का निष्कर्ष यह है कि विष्णु पुराण में उल्लिखित माया मोह आख्यान की अपेक्षा उत्तरकालीन है। मत्स्यपुराण में उल्लिखित प्रस्तुत आख्यान को चतुर्थ शती के प्रारम्भ में रखा जा सकता है। ऐसी स्थिति में विष्णु पुराण में उपलब्ध मायामोह आख्यान का रचना काल चतुर्थ शती के उपरान्त मानना उचित है।[1] हाजरा महोदय ने उपर्युक्त कथन में प्रस्तुत आख्यान से सम्बन्धित कुछ ऐसी बातों की ओर ध्यान नहीं दिया है जिनकी चर्चा करना आवश्यक प्रतीत होता है। मत्स्य पुराण में उल्लिखित माया मोह आख्यान का वर्ण्य विषय है रजिपुत्रों का क्रिया कलाप। रजि पुत्र इतने शक्ति सम्पन्न हो चुके थे कि इन्होंने इन्द्र के स्वर्गीय राज्य को छीन लिया। इस कठिन परिस्थिति में इन्द्र ने बृहस्पति से सहायता के लिए याचना की। बृहस्पति ने अनेक अनुष्ठानों एवं क्रियाओं द्वारा इन्द्र को शक्ति को बढ़ाया। बृहस्पति ने रजि पुत्रों को वेद विरोधी "जिन" धर्म की शिक्षा दी। जिस के फलस्वरूप वे पथभ्रष्ट हो गये। इन्द्र पुनः अपने राज्य को वापस लेने में समर्थ हो सके[2]। हाजरा ने अपनी समीक्षा में इस बात पर विशेष ध्यान आकृष्ट किया है कि मत्स्य पुराण में माया मोह आख्यान तो प्राप्त ही होता है हरिवंश और देवी भागवत में भी प्रस्तुत आख्यान का उल्लेख प्राप्य है।[3] यदि मत्स्य पुराण में

1- हाजरा, पुराणिक रेकर्ड्स, पृ0 24-25

2- मत्स्य पु0, 24/43-49
द्रष्टव्य, सिद्धेश्वरी नाराण राय, पौराणिक धर्म एवं समाज, पृ0, 132

3- हाजरा, वही, पृ0, 25

वर्णित मायामोह आख्यान की तुलना, विष्णु पुराण में उल्लिखित मायामोह आख्यान से की जाय तो यह निष्कर्ष निकल सकता है कि पहले ग्रन्थ में विवरण का स्वरूप दूसरे की अपेक्षा प्राचीन है। इस प्रकार हाजरा ने जिस आधार पर विष्णु पुराण के इन स्थलों की तिथि विषय समीक्षा प्रस्तुत करने का प्रयास किया है उसके प्रति सन्देह नहीं किया जा सकता है।

विष्णु पुराण में वर्णित मायामोह आख्यान की तिथि विषयक समीक्षा यदि भागवत पुराण में वर्णित प्रस्तुत आख्यान के स्थलों के आलोक में की जाय तो यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि दोनों ग्रन्थों में अनेक विवरण समान प्रकार के मिलते हैं। विष्णु पुराण के स्थल स्रोत भूत हैं, उन को भागवत में विस्तार देने का प्रयास किया गया है। विवरण का मात्र संक्षिप्त होना उसके पूर्वकालीनता का परिचायक नहीं हो सकता। जब तक कि यह सिद्ध न हो जाय कि विवरण विशेष में जोड़े गए सांस्कृतिक तत्व पूर्वकालिक नहीं हैं। विष्णु पुराण में वर्णित भरताख्यान के काल निर्णय में यह देख चुके हैं कि भागवत में निरूपित आख्यान विष्णु पुराण के तद्विषयक स्थल की अपेक्षा पूर्वकालिक प्रतीत होता है। यदि स्थल आकार की दृष्टि से इस की समीक्षा करें तो प्रतीत होगा कि विष्णु पुराण की अपेक्षा यह संक्षिप्त भी है। जब कि विष्णु पुराण में इस आख्यान का वर्णन एक पूरे अध्याय में प्राप्त होता है; भागवत में समग्र विवरण केवल पाँच श्लोकों[1] में संक्षिप्त कर दिया गया है। ऐसी स्थिति में निम्नांकित विचारणीय तत्व प्रकाश में आते हैं- (1) भागवत में वर्णित आख्यान पुराण रचना के पूर्वकालिक स्तर को ही व्यक्त करता है (2) इसका विवरण संक्षिप्त अवश्य है परन्तु केवल संक्षिप्त होने के आधार पर ही तिथि विषयक कोई निर्णय नहीं लिया जा सकता (3) भागवत का सरल विवरण विष्णु पुराण के सम्प्रदाय विशिष्ट विवरण की

1- भागवत पु0, 9/17/12-16

अपेक्षा प्राचीन है। अतएव, विष्णु पुराण की स्थूल रचना उस समय विशेष से सम्बद्ध की जा सकती है; जब कि भागवत के एक प्रामाणिक संस्करण का सम्पादन प्रस्तुत हो चुका था।[1]

समीक्षा के आधारभूत वाह्य एवं आंतरिक प्रमाणों के आधार पर निम्नांकित बातें स्पष्ट होती हैं- मायामोह आख्यान किस संकलनकर्ता द्वारा विष्णु पुराण के मौलिक अंश के मूल अध्यायों के साथ जोड़ दिया गया, जो वैष्णव धर्म का अनुयायी था। जिस स्तर पर यह वर्णन संयोजन किया गया, वैष्णव धर्म में अहिंसात्मक प्रवृत्ति का सूत्रपात हो चुका था। काल निर्धारण की दृष्टि से देखा जाय तो प्रतीत होगा कि मायामोह आख्यान का विष्णु पुराण में संयोजन वायु, ब्रह्माण्ड, मत्स्य और भागवत पुराणों के संस्करण काल के उपरान्त ही प्रस्तुत हुआ होगा। इन ग्रन्थों में भागवत का काल प्राय: नवीं शती माना जाता है।[2] अतएव ऐसी स्थिति में विष्णु पुराण का प्रतिसंस्करण काल नवीं शती के उपरान्त ही रखा जा सकता है।

विष्णु पुराण की तिथि विषयक समीक्षा की दृष्टि से पाँचवा अंश भी महत्वपूर्ण माना जा सकता है। यह अंश विष्णु के अवतारों से सम्बन्धित है। विष्णु पुराण की भाँति भागवत पुराण में भी विष्णु के अवतार के बारे में उल्लेख है। विष्णु पुराण में एक स्थल पर विष्णु और कृष्ण में एकता स्थापित की गई है।[3]

1-द्रष्टव्य सिद्धेश्वरी नारायण राय, पौराणिक धर्म एवं समाज, पृ0 136

2- सी0वी0 वैद्य, जर्नल ऑफ बाम्बे ब्रांच ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, 1925, पृ0 144, पार्जीटर, वही पृ080, हाजरा, वही, पृ0 55

3- द्रष्टव्य, सिद्धेश्वरी नारायण राय का निबन्ध, "आन कम्परेटिव क्रोनोलाजी आफ दि विष्णु एण्ड भागवत", पुराण-पत्रिका, भाग 10, अंक 1, जनवरी 1968, पृ0 56

दूसरे प्रकार के स्थलों[1] में श्री कृष्ण का उल्लेख वैष्णव अंश, अंशावतार के रूप में किया गया है। इस प्रसंग में विष्णु पुराण विष्णु के काले और सफेद केशों का उल्लेख करता है जिनमें काले केश ने श्रीकृष्ण के रूप में देवकी के गर्भ से अवतार लिया।[2] विष्णु पुराण के इन अवतरणों से यह विदित होता है कि श्रीकृष्ण के दैवीतत्व उन में विद्यमान थे। विष्णु पुराण में यह सन्दर्भ भागवत से विस्तृत और विकसित रूप में वर्णित है। भागवत भी श्रीकृष्ण को विष्णु का अभिन्न रूप बतलाया है। दूसरे शब्दों में कृष्ण विष्णु के अभिन्न रूप हैं। भागवत पुराण में कृष्ण के अंशावतार का तो समान वर्णन मिलता है परन्तु इसका कोई अवतरण कृष्ण को विष्णु का अंश, अंशावतार नहीं बताता है। इस संदर्भ में विष्णु पुराण यह उल्लेख करता है कि किस प्रकार विष्णु अपने दो अंशों का विभाजन करने के लिए तैयार हुये। इन अंशों में एक का सम्बन्ध श्री कृष्ण से है और दूसरे का बलराम से। विष्णु पुराण का यह कथन कि कृष्ण के साथ उनका दूसरा अंशावतार उनके केश के माध्यम से हुआ था, बलराम की ओर ही संकेत करता है।[3] एक दूसरे प्रसंग में विष्णु पुराण यह वर्णन करता है कि अवतार का उद्देश्य पूरा होने के बाद श्री कृष्ण (विष्णु) के दूसरे अंश के साथ विष्णु लोक प्रस्थान किये थे।[4]

उपर्युक्त विवरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कृष्ण और बलराम विष्णु के अंशावतार थे। भागवत पुराण प्रस्तुत आख्यान का वर्णन समान विस्तार के साथ करता है परन्तु बलराम से सम्बन्धित जो अवतरण इस में उल्लिखित हैं

1- न तद्बलं यादवानां विजितं यदनेकशः ।
तन्तु सन्निधिमाहात्म्यं विष्णोरंशस्य चक्रिणः ।। विष्णु पु०, 5/22/13
संस्मृत्य प्रणिपत्यैनं सर्वं सर्वेश्वरम् हरिम् ।
प्राह ज्ञातो भवान्विष्णोरंशत्वं परमेश्वरः ।। विष्णु पु०, 5/23/26

2- वही, 5/37/4

3- एवं संस्तूयमानस्तु भगवान्परमेश्वरः ।
उज्जहारात्मनः केशौ सितकृष्णौ महामुने ।। वि०पु०, 5/1/59
उवाच च सुरानेतौ मत्केशौ वसुधातले ।

उनमें समानता नहीं है। इसी ग्रन्थ में शेष को मानवी स्वरूप वाला कहा गया है जबकि कृष्ण को विष्णु का अंश कहा गया है। दूसरे शब्दों में बलराम और कृष्ण क्रमशः शेष और विष्णु के अवतार हैं।[1] विष्णु पुराण तथा भागवत पुराण के अतिरिक्त हरिवंश[2] पद्म[3] पुराण तथा उप पुराणों में भी बलराम के वैष्णव अवतारत्व विषयक स्थल प्राप्त होते हैं। विष्णु धर्म पुराण में बलराम को विष्णु के दूसरे अंश के अन्तर्गत बतलाया गया[4] है। नरसिंह पुराण में विष्णु के अवतारों की जो सूची मिलती है उसमें बलराम का नाम भी सम्मिलित है।[5] उप पुराण पुराणों की रचना के उत्तरवर्ती स्तरों में लिखे गये थे। ऐसा प्रतीत होता है, और यह भी दृष्टगत होता ह कि भागवत के समय के उपरान्त ही उपपुराणों की रचना हो चुकी थी, ऐसा माना जा सकता है। ये दोनों उपपुराण वैष्णव ग्रन्थ हैं जिनमें बलराम को वैष्णव अवतार मानने का उद्देश्य अपना ही मतप्रतीत होता है। इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि जिन वैष्णव उपासकों ने वैष्णव उपपुराणों को प्रकाश में लाया, उन्होने ही पहले विरचित विष्णु पुराण के मूल स्थलों में ऐसे स्थलों का सन्निवेश भी किया जिनसे उनके विचारों को पुष्टि हो सकती थी। ऐसी स्थिति में विष्णु पुराण में उल्लिखित अवतारवाद का विवरण भागवत के विवरण का उत्तरवर्ती ही माना जा सकता है।[6]

विष्णु पुराण के पाँचवें अंश के बत्तीसवें और तैतीसवें अध्याय में श्री कृष्ण और बाणासुर के संग्राम का वर्णन मिलता है। इस कथानक के अनुसार

1- भागवत पु0, 5/2/8-9

2- हरि0, 2/32

3- पद्म पु0, उत्तरखण्ड, 282/27

4- विष्णु धर्म पु0, 76/127

5- नरसिंह पु0, 36/7-8

6- द्रष्टव्य, सिद्धेश्वरी नारायण राय, वही, पृ0 145

श्री कृष्ण के विपक्षी वाणासुर की सहायता शिव और स्कन्द ने पहुँचाई थी। श्री कृष्ण और बाणासुर के युद्ध का वर्णन भागवत पुराण में भी मिलता है। दोनों पुराणों में कथानक की समानता इस दृष्टि से है कि इस में बाणासुर के चरित्र और शिवभक्ति निरूपण में समान अर्थ वाले स्थल प्राप्त होते हैं। एक ही विवरण में मूल कथानक का उल्लेख करते हैं जिसका वर्ण्यविषय वाणपुत्री उषा तथा प्रद्युम्न पुत्र अनिरुद्ध का प्रेम निर्देशन है। दोनों पुराणों में उपर्युक्त तात्पर्य के श्लोक प्रारम्भ में ही दिये हैं जो इनके विवरण का स्वरूप परिचय स्पष्ट कर देते है।[1] ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों पुराणों के विवरण समान रूप से चलते हैं परन्तु, भागवत की वर्णशैली विष्णु पुराण की वर्णन शैली की अपेक्षा अधिक व्यवस्थित और सुगठित है। ऐसी स्थिति में यह कह सकते हैं कि श्री कृष्ण वाणासुर संघर्ष के कथानक का मुख्य शैली गठन भागवत में तो सुरक्षित है पर, विष्णु पुराण में वर्णन क्रम विपरीत होने के कारण इसे उत्तरकालीन ही माना जायगा।

विष्णु पुराण में वर्णित श्री कृष्ण बाणासुर संघर्ष वैष्णव और शैव मतों से संघर्षयुक्त प्रवृत्ति का परिचायक है। इसके विषय में भागवत के विवरण में वैष्णव अवतार श्री कृष्ण द्वारा दुष्कर्म करने वाले बाणासुर के विनाश का प्रदर्शन किया गया है। इस प्रकार भागवत का विवरण पौराणिक संरचना के निकट रखा जा सकता है परन्तु साम्प्रदायिक दृष्टिकोण के कारण विष्णु पुराण का विवरण भागवत की अपेक्षा उत्तरवर्ती ही माना जायगा।

पूर्व पृष्ठों में विवृत आलोचित पुराणों की यदि तिथि विषयक समीक्षा की जाय तो यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि इन ग्रन्थों में वर्णित आख्यानों का

1- विष्णु पु0, 5/32/9-10; भागवत पु0, 10/62/1

उनके काल निर्धारण में महत्वपूर्ण योगदान है। विष्णु पुराण के स्थलों को तिथि विषयक तुलनात्मक समीक्षा भागवत के स्थलों से करने पर यह प्रतीत होता है कि दोनों ग्रन्थों के समान विवरणों का मूल और प्रारम्भिक स्वरूप विष्णु पुराण में सुरक्षित है। भागवत के विवरणों में विष्णु पुराण के संक्षिप्त स्थल विस्तार में वर्णित हैं। जिन आख्यानों का मूल और प्रारम्भिक स्वरूप विष्णु पुराण में सुरक्षित है, उनमें भरत तथा मायामोह आख्यान विशेषतया उल्लेखनीय है। विष्णु पुराण में भरत आख्यान का जो स्वरूप मिलता है, वह भागवत की अपेक्षा प्राचीन माना जा सकता है अथवा नहीं, ऐसा प्रश्न उठाया जा सकता है। विष्णु पुराण में भरत आख्यान का वर्णन दो बार प्राप्य है। ऐसा नहीं लगता है कि ये विवरण एक ही संकलन कर्ता के द्वारा अथवा एक ही योजना के साथ अथवा एक ही काल में लिखे गये। विष्णु पुराण के अतिरिक्त वायु पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण और मार्कण्डेय पुराण में भी भरत चरित का मूल रूप प्राप्त होता है, जिस के आधार पर विष्णु पुराण में विवेचित भरत आख्यान को श्लोक प्रक्षेप एवं अध्याय प्रक्षेप के कारण मौलिक न मानकर उत्तरकालीन ही माना जा सकता है।[1]

भरत आख्यान की भाँतिमायामोह आख्यान के आधार पर विष्णु पुराण की तिथि निर्धारित करने का प्रयास किया गया है। इस विवरण की तिथि सम्बन्धी समीक्षा में अनेक विद्वानों के मन्तव्यों के फलस्वरूप यह निष्कर्ष निकालने की चेष्टा की गई है कि विष्णु पुराण में विवृत मायामोह आख्यान को इस ग्रन्थ का मूल अंग नहीं माना जा सकता है और साथ ही साथ यह भी कहा गया है कि विष्णु पुराण में मायामोह का जो वर्णन पाया जाता है वह मत्स्य पुराण की अपेक्षा उत्तरकालीन है। पूर्व पृष्ठों में वर्णित विष्णु पुराण के मायामोह आख्यान की समीक्षा के स्थलों से की गई है। दोनों पुराणों में अनेक

1- द्रष्टव्य, पृष्ठांक , 36

विवरणों में समानता दृष्टिगोचर होती है। इससे यह प्रतीत होता है कि एक ग्रन्थ दूसरे पर आधारित हैं। पूर्व पृष्ठों में बतलाया गया है कि विष्णु पुराण के संक्षिप्त स्थलों को भागवत में विस्तार प्रदान किया गया है। भागवत पुराण का समय नवीं शती के बाद ही रखा जा सकता है। इस प्रकार आलोचित विष्णु पुराण तथा भागवत में विवेचित मायामोह आख्यान की समीक्षा के आधार पर विष्णु पुराण के सम्बन्धित स्थल को भागवत की अपेक्षा उत्तरकालीन माना जा सकता है।[1]

पूर्व पृष्ठों में भरत आख्यान तथा मायामोह आख्यान के अतिरिक्त विष्णु पुराण में विवेचित अन्य आख्यानों का भी उल्लेख किया गया है जो विष्णु पुराण की तिथि निर्धारण में अत्यन्त सहायक सिद्ध हुये हैं। उन में विष्णु के अवतार से सम्बन्धित आख्यान, पारिजात हरण आख्यान तथा कृष्ण और बाणासुर संग्राम विशेषतया उल्लेखनीय हैं। ये आख्यान भागवत पुराण में वर्णित आख्यानों से समता रखते हैं। विष्णु पुराण में उल्लिखित अवतार विषयक स्थलों की समीक्षा के पश्चात् यह प्रतीत होता है कि विष्णु और कृष्ण में एकता स्थापित की गई है। विष्णु पुराण की भांति भागवत पुराण में भी विष्णु के अवतार के बारे में वर्णन प्राप्त होते हैं। भागवत में कृष्ण को विष्णु का अंशावतार बताया गया है। विष्णु पुराण में पारिजातहरण आख्यान का वर्णन पर्याप्त एवं विस्तृत रूप में पाया जाता है। दोनों विवरणों में समानता दृष्टिगोचर होती है। कृष्ण वाणासुर आख्यान का वर्णन विष्णु पुराण के अतिरिक्त भागवत पुराण में भी मिलता है। पूर्व पृष्ठों में इस आख्यान की तुलनात्मक समीक्षा प्रस्तुत की जा चुकी है।[2]

पूर्व पृष्ठों में विवेचित विष्णु पुराण के आख्यानों के आधार पर इस ग्रन्थ की तिथि विषयक समीक्षा की तुलना हरिवंश से करने पर यह देखा गया है कि

1- द्रष्टव्य, पृष्ठांक, 43

2- द्रष्टव्य, पृष्ठांक, 46

जिन आख्यानों का वर्णन विष्णु पुराण में संक्षेप में प्राप्त होता है उन्हें भागवत में तो विस्तार मिला ही है, हरिवंश में अधिक विस्तार में वर्णित है। उदाहरणार्थ-हरिवंश में कृष्ण के जीवन-चरित का वर्णन विस्तार में मिलता है तथा उन्हें अंशावतार कहा गया है। विष्णु पुराण तथा हरिवंश में विवृत पारिजात हरण आख्यान तथा कृष्ण बाणासुर संग्राम में समानता दृष्टिगोचर होती है। अन्तर केवल यह है कि विष्णु पुराण में इनका वर्णन संक्षेप में मिलता है और हरिवंश में विस्तार में वर्णित है। इन आख्यानों के अतिरिक्त अन्य आख्यानों को भी प्रस्तुत किया जा सकता है जिन को विष्णु पुराण की अपेक्षा हरिवंश में अधिक विस्तार मिला है। उपर्युक्त बातों में समता होने से यह प्रतीत होता है कि विष्णु पुराण हरिवंश के इस भाग से पहले की रचना है।

विष्णु पुराण की तिथि के विषय में दो बातें कही जा सकती हैं-

(1) जहाँ तक विवेचित आख्यानों के मूल रूप का प्रश्न है इस ग्रन्थ को प्रारम्भिक रचना मानना न्यायसंगत है।

(2) जहाँ तक उन्हीं आख्यानों की इसी ग्रन्थ में पुनरावृत्ति का प्रश्न है और जहाँ तक उनके विस्तारयुक्त वर्णन का प्रश्न है, इस ग्रन्थ के प्रारम्भिक रचना होने में सन्देह किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में चतुर्थ शती ई0 इस के मूल संस्करण का काल मान सकते हैं तथा इसके प्रतिसंस्करण का काल बाद में रखा जा सकता है। चूँकि विष्णुपुराण का रचनाकाल नवीं शती ई0 मानते हैं और चूँकि विष्णु पुराण का विस्तार युक्त वर्णन भागवत की अपेक्षा साम्प्रदायिक आग्रह के द्वारा ओत प्रोत है तो ऐसी स्थिति में विष्णु पुराण के प्रतिसंस्करण के काल को नवीं शती के बाद में रखा जा सकता है।

विष्णु पुराण में वैष्णव आख्यानों एवं उपाख्यानों का बाहुल्य है, किन्तु इसमें निम्नलिखित वैष्णव आख्यान विशेषतया उल्लेखनीय हैं:- समुद्र मन्थन आख्यान, 1/9, ध्रुव आख्यान, 1/11, भरत चरित, 2/13, प्रह्लाद आख्यान, 1/17, राजा सतधनु की कथा, 3/18 कृष्ण रासलीला, 5/13, कंस वध आख्यान, 5/20, मायामोह आख्यान, 3/18-19, जरासन्ध और श्रीकृष्ण का संघर्ष, 5/22, प्रद्युम्न-हरण, तथा शम्बर वध, 5/29-31 नरक बध आख्यान, 5/29, बाणासुर आख्यान, 5/33 द्वारका नगरी जल मग्न एवं श्री कृष्ण का "मानव" देह त्याग आख्यान, 5/37, पारिजात हरण आख्यान, 5/30। इन आख्यानों के अतिरिक्त इस ग्रन्थ में वैष्णव कथाओं एवं अन्तर्कथाओं का भी समावेश पाया जाता है, जिन के द्वारा प्रस्तुत पुराण का वैष्णव गठन तो सिद्ध हो जाता है पर, इनकी समीक्षा-विषयक उपयोगिता इतनी महत्त्वपूर्ण नहीं प्रतीत होती है।[1]

समुद्र मन्थन आख्यान:- पुराण ग्रन्थों के संदर्भ में इनके वर्ण्य-विषयों में तथा इन में, उपलब्ध आख्यानों में समुद्र मन्थन एक ऐसा प्रसंग है जिस का उल्लेख अधिकांश पुराणों में प्राप्त होता है। इसका विशेष वर्णन विष्णु पुराण में उपलब्ध होता है जो इस प्रकार है- दैत्यों और देवताओं में घोर संग्राम के पश्चात् दैत्यों द्वारा परास्त एवं पीड़ित देवगण युद्ध में विजय श्री प्राप्त करने के लिए क्या उपाय किये जायँ, इस विषय पर विचार विमर्श के लिए ब्रह्मा जी के पास गये। देवताओं से सम्पूर्ण वृतान्त सुनकर ब्रह्मा जी उन्हें साथ लेकर विष्णु भगवान् के पास क्षीर सागर के उत्तरी तट पर गये। वहाँ पहुँचकर पितामह ब्रह्माजी ने समस्त देवताओं के साथ अत्यन्त मंगलमय वाक्यों से इस प्रकार स्तुति की- जो समस्त अणुओं से भी अणु और पृथ्वी आदि सभी गुरुओं से भी गुरु है, उन

1- उदाहरणार्थ, पृथ्वी का गौ रूप धारण करना, विष्णु पु0, 1/13, कंस वध, विष्णु पु0, 5/20, बाणासुर आख्यान, विष्णु पु0, 5/33 तथा पौन्ड्रक वृतान्त, विष्णु पु0, 5/34

पृथ्वी के आधार स्वरूप, अप्रकाश, अभेद्य, सर्वरूप सर्वेश्वर, अनन्त, अज और अव्यय नारायण मेरे द्वारा स्तुत्य है। जो भोक्ता और भोग्य, स्रष्टा और सृज्य तथा कर्ता और कार्य रूप स्वयं ही है, उस परम पद को हम प्रणाम करते हैं। विनीत देवताओं द्वारा स्तुति किये जाने पर विष्णु भगवान प्रसन्न होकर देवताओं और दैत्यों को अमृत प्राप्त करने की प्रेरणा देकर विभिन्न प्रकार की औषधियां लाकर समुद्र में डालने, वासुकि नाग को नेति बनकर समुद्र मथने का आदेश देते हैं। इस प्रकार विष्णु के आदेशानुसार देवताओं ने दैत्यों के साथ समुद्र मथना आरम्भ कर दिया। भगवान विष्णु स्वयं कूर्म रूप धारण कर क्षीरसागर में घूमते हुये मन्दराचल के आधार हुये। इस प्रकार देवताओं और दानवों द्वारा क्षीर समुद्र के मथे जाने पर निम्नलिखित रत्न उत्पन्न हुये- ॥1॥ कामधेनु, ॥2॥ वारुणी, ॥3॥ कल्पवृक्ष, ॥4॥ अप्सरायें, ॥5॥ चन्द्रमा, ॥6॥ विष, ॥7॥ धन्वन्तरि, ॥8॥ अमृत, ॥9॥ "श्री" लक्ष्मी। समुद्र से निकलकर दिव्य माला तथा आभूषणों से विभूषित लक्ष्मी जी भगवान विष्णु के वक्षस्थल में विराजमान हुयीं। श्री हरि के वक्षःस्थल में विराजमान श्री लक्ष्मी जी को देखकर देवगण अत्यन्त प्रसन्न हुये। इधर शक्तिशाली दैत्यों ने धन्वन्तरि के हाथ से भरा कमण्डलु छीन लिया। भगवान् विष्णु दैत्यों की इस चतुराई को देख कर मोहनी रूप धारण कर अपनी माया से दैत्यों को मोहित कर उन से अमृत का कमण्डलु लेकर देवताओं को दे दिया। इस पर दैत्यगण अत्यन्त क्रुद्ध हुये और शस्त्रों से सुसज्जित होकर देवताओं पर टूट पड़े। किन्तु अमृत पान के कारण बलवान् देवताओं से दैत्यों की सम्पूर्ण सेना पराजित होकर भाग गई। देवगण अपने पद पर आसीन हुये एवं पहले की ही तरह कार्य में दत्त चित्त हो गये।[1]

1- विष्णु पु०, 1/9

विष्णु पुराण में विवेचित समुद्र मन्थन आख्यान की यदि समीक्षा की जाय तो यह प्रतीत होगा कि इसमें विष्णु को देवताओं के मूर्धन्य स्थान पर आसीन किया गया है तथा संसार को इनके द्वारा व्याप्त माना गया है। जैसा कि प्रसंगान्तर में विवेचित करने की चेष्टा की जायेगी पौराणिक वाङ्मय में विशेषतया वैष्णव परक पुराण ग्रन्थों में विष्णु के परमपद को कहीं तो आख्यानों के माध्यम से और कहीं कहीं दार्शनिक दृष्टि से समझाया है। उल्लेखनीय है कि विष्णु के साथ उनके परम पद का प्रसंग वैदिक ग्रन्थों के रचना काल से ही मिलने लगता है। ऋग्वेद के ऋषि ने विष्णु के परम पद को माध्वी स्रोत की संज्ञा दी है तथा शतपथ ब्राह्मण के रचयिता ने विष्णु पद को एक ऐसे दिव्य-चक्षु का द्योतक माना है जो धीमान् व्यक्ति के लिए दृष्टि का विषय हो सकता है। इसी परम पद का बार बार उल्लेख विष्णु के विवृत आख्यान में आया है। ऐसी स्थिति में प्रस्तुत आख्यान के महत्वपूर्ण स्थलों को वैदिक परम्परा से प्रभावित मान सकते हैं। पर, वास्तविकता यह है कि वेदकि और पौराणिक धार्मिक गठन में मौलिक एकता होते हुये भी परिस्थिति जन्य विशेष प्रवृत्तियों के कारण विषमता दिखाई देती है। इस आख्यान में एक स्थल पर विष्णु द्वारा कूर्म तथा दूसरे स्थल पर मोहनी रूप धारण करने का संकेत प्राप्त होता है। कूर्म के दैवी स्वरूप का वैदिक ग्रन्थों में भी उल्लेख हुआ है। प्रतीत होता है कि सोमयाग सम्पन्न करने के लिए जिस समय वेदी का निर्माण करते थे कूर्म का रहना उस में अपेक्षित था। ऐसा वर्णन मिलता है कि कूर्म के द्वारा वेदी में पवित्रता आती है और कूर्म प्रजापति तथा सूर्य का द्योतक भी माना गया है।[1] विष्णु के कूर्म अवतार तथा मोहनी रूप का ही नहीं उनके मत्स्य, वराह, वामन आदि अवतारों तथा अनेक स्वरूपों का उल्लेख प्रस्तुत

1- श0 ब्रा0, 7,5,1,2,5,6, द्रष्टव्य, गोवर्द्धन राय शर्मा, एक्सकवेशन ऐट कौशाम्बी, पृ0 169-70

पुराण के अतिरिक्त अन्य पुराण ग्रन्थों में भी प्राप्त होता है। पुराणों में ही नहीं अन्य धार्मिक साहित्यिक ग्रन्थों में विष्णु द्वारा प्रत्येक युग में अवतार ग्रहण करने की ओर निर्देश प्राप्त होता है। गीता के अनुसार साधुओं की रक्षा के लिए, दुष्टों का विनाश करने के लिए और धर्म की स्थापना के लिए विष्णु एक युग के बाद दूसरे युग में अवतरित होते हैं।[1] स्पष्टतया तो नहीं पर प्रकारान्तर से वैदिक वाङ्मय में "श्री" अथवा लक्ष्मी का सम्बन्ध इन्द्र से बताया गया है। ऋग्वेद के स्थलों में इन्द्र को वसु अर्थात् ऐश्वर्य का पति अथवा पालयिता उद्घोषित किया गया है। ऐसी स्थिति में श्री का मौलिक वैदिक सम्बन्ध इन्द्र से मानना संगत लगता है यद्यपि प्रस्तुत पौराणिक आख्यान में इस बात की चर्चा मिलती है कि दुर्वासा के शाप के कारण इन्द्र श्री विहीन हो गये थे { तस्मात्प्रनष्ट लक्ष्मीकं त्रैलोक्यं ते भविष्यति} इस प्रकार पौराणिक परम्परा में भी इन्द्र और 'श्री' का सम्बन्ध विस्मृति का विषय नहीं बना है तथापि इस में सन्देह नहीं है कि पौराणिक धार्मिक गठन में "श्री" अथवा लक्ष्मी का सम्बन्ध विष्णु से ही है। इस से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि पौराणिक धार्मिक विधि-विधान में ऋग्वैदिक इन्द्र के व्यक्तित्व की अनेक विशेषताओं को विष्णु में स्थानान्तरित किया गया था जिस के परिणाम में वैदिक देववाणी की स्निग्ध पीयूष धारा काल की कठोरता में नहीं दब सकी, अपितु पौराणिक पयस्विनी में उसे एक नई दिशा मिली जिसके उपास्य देवता थे विष्णु जिन की महत्ता को पौराणिकों ने समुद्र-मन्थन तथा इस प्रकार के अनेक आख्यानों के द्वारा प्रबद्ध करने का सफल प्रयास किया। समुद्र मन्थन आख्यान मूलतः और वस्तुतः वैष्णव परक है। अतएव वैष्णव मत के दो प्रधान पुराणों में इस का समावेश सहज और स्वाभाविक था। दोनों ग्रन्थों में समुद्र मन्थन आख्यान समान रूप में प्रस्तुत मिलता है और यदि इन में कहीं भी विभेद है तो उसे अधिक गम्भीरता के

1- गीता, 4/8

साथ नहीं ग्रहण किया जा सकता है। उदाहरणार्थ- समुद्र मन्थन से उपलब्ध रत्नों की संख्या विष्णु पुराण में नौ है तो भागवत के सम्बन्धित स्थल में ग्यारह है। इस के अतिरिक्त यह भी उल्लेखनीय है कि भागवत का आख्यान विष्णु पुराण की अपेक्षा अधिक विस्तृत है जिसे संकलनकर्ता की व्यक्तिगत रुचि का परिणाम मान सकते हैं। दोनों पुराणों की कालविषयक और क्षेत्रविषयक विभिन्नता भी इस का कारण हो सकता है।

ध्रुव आख्यान:— प्रस्तुत आख्यान पूर्णतया वैष्णव गठन को परिलक्षित करता है। इस आख्यान में ध्रुव की तपस्या, उनकी भक्ति, उनकी वैष्णव प्रवृत्ति और विष्णु से उन्हें वरदान मिलने आदि का निरूपण मिलता है। विष्णु पुराण में वर्णित ध्रुव आख्यान का वर्णन निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है- स्वयम्भुव मनु के पुत्र उत्तानपाद की पत्नी सुरुचि से उत्तम तथा सुनीति नाम की पत्नी से ध्रुव नामक पुत्र का जन्म हुआ । सहसा एक दिन राजसिंहासन पर आसीन पिता की गोद में अपने भाई उत्तम को बैठा हुआ देखकर ध्रुव की भी इच्छा गोद में बैठने की हुई। परन्तु पिता उत्तानपाद ने निरादर का भाव प्रकट करते हुये ध्रुव को गोद में बैठने से रोक दिया। साथ ही साथ उत्तम की माता सुरुचि ने राजसिंहासन को अपने पुत्र के योग्य बतलाते हुये अन्य असन्तोष युक्त शब्दों का प्रयोग किया। विमाता के ऐसे वचन सुनकर ध्रुव क्रोधित होकर अपनी माता के महल में चले गये। माता सुनीति ध्रुव को क्रोधित देख कर उन्हें गोद में बिठाकर यह पूछती हैं पुत्र तुम्हारे क्रोध का क्या कारण है? तुम्हारा किसी ने निरादर तो नहीं किया? इस पर ध्रुव ने सुरुचि द्वारा पिता के समक्ष कही गई अतीव गर्वीली बातों को ज्यों का त्यों कह दिया। पुत्र ध्रुव को दुःखी देखकर सुनीति खिन्न चित्त एवं दीर्घ श्वास लेती हुई कहती है कि पुत्र जिस का पुण्य होता है उसी को राजासन, राजछत्र तथा उत्तम घोड़े और हाथी आदि प्राप्त होते हैं। "तुम" सुशील, पुण्यात्मा प्रेमी और समस्त प्राणियों के हितैषी बनो

तथा साथ ही साथ सन्तोष ग्रहण करो। माता सुनीति की ऐसी उपदेशात्मक वाणी सुनकर ध्रुव कहते हैं कि माता जी मेरे चित्त को शान्त करने के लिए "तुम" ने जो बातें कही हैं वे मुझ को प्रभावित नहीं कर रही हैं। इस लिए मैं तो बड़ी प्रयत्न करूँगा जिस से सम्पूर्ण लोकों से आदरणीय सर्वश्रेष्ठ पद को प्राप्त कर सकूँ। यह कहकर बालक ध्रुव महल से निकल कर नगर से बाहर उपवन में पहुँचे। वहाँ उन्होंने सात मुनीश्वरों को कृष्ण मृग चर्म से युक्त आसनों पर बैठे हुये देखकर उन्हें प्रणाम कर अपने को सुनीति से उत्पन्न राजा उत्तानपाद का पुत्र बतलाया साथ ही साथ पिता, माता तथा घर छोड़ने के कारण की ओर निर्देश किया। सातों सप्तर्षियों ने क्रमशः ध्रुव को हरि की आराधना करने पर बार-बार बल दिया। सप्तर्षियों की वाणी को सुनकर उन्हें प्रणाम कर ध्रुव यमुना तटवर्ती नितान्त पवित्र मधु नामक बन में आये और वहीं एकाग्रचित्त होकर भगवान् विष्णु का ध्यान करने लगे। वहाँ पर अनेक पिशाच पिशाचियों ने उनका ध्यान भगवान् की आराधना से विचलित करने के लिए अनेकानेक उपाय किये। परन्तु वे भगवान् विष्णु के ध्यान में रत ही रहे। ध्रुव की इस कठिन तपस्या को देखकर उससे हार जाने की आशंका से देवता अत्यन्त भयभीत एवं उसके तप से संतप्त होकर आपस में मिल कर जगत के आधार विष्णु भगवान् की शरण में गए। देवताओं ने विष्णु की स्तुति करते हुये तपस्या में लगे हुये ध्रुव को निवृत्त करने की इच्छा प्रकट की। देवताओं द्वारा स्तुत्य भगवान विष्णु देवताओं से कहते हैं कि उसे इन्द्र, सूर्य, वरुण तथा कुबेर आदि किसी के पद की अभिलाषा नहीं है उसकी जो कुछ इच्छा है मै सब पूर्ण करूँगा। तुम लोग निश्चित हो कर अपने अपने स्थान को प्रस्थान करो। भगवान् के ऐसा कहने पर देवगण उन्हें प्रणाम कर अपने-अपने स्थान को ओर गये। इधर भगवान् ध्रुव की तपस्या से अत्यन्त प्रसन्न होकर उसको अपनी इच्छानुसार वर मागने के लिए प्रेरित करते हैं। भगवान विष्णु के ऐसे कोमल वचन सुनकर ध्रुव ने आँखे खोलीं और

अपनी ध्यानावस्था में देखतेहुये भगवान् हरि को साक्षात अपने सम्मुख किरीट,शंख, चक्र,गदा, शार्ङ्ग, धनुष और खड्ग धारण किये हुये देख कर उसने पृथ्वी पर सिर रख कर प्रणाम किया तथा उनको इस प्रकार स्तुति की- जो हजारों मस्तक वाले हजारों नेत्रों वाले, और हजारों चरणों वाले परम पुरूष हैं, सर्वत्र व्याप्त हैं और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को व्याप्त कर दश गुण महाप्राण से स्थित हैं। भूत और भविष्य त जो कुछ पदार्थ उन सब में भगवान् विद्यमान् हैं तथा विराट्, स्वराट्,सम्राट और अधिपुरूष आदि भी सब भगवान् विष्णु से उत्पन्न हुये हैं। भगवान् मेरा जो कुछ मनोरथ था वह भी आप ने पूर्ण कर दिया। मेरी तपस्या भी सफल हो गई, क्यों कि मुझे आप का साक्षात दर्शन प्राप्त हुआ। बालक ध्रुव के मन्तव्य को समझ कर भगवान् ने उसे पुन: वर मागने के लिए प्रेरित किया। भगवान की उदारता पूर्ण वाणी सुन कर ध्रुव कहते हैं कि मै उस सर्वोत्तम एवं अव्यय स्थान को प्राप्त करना चाहता हूं जो सम्पूर्ण विश्व का आधार भूत हो। भगवान पुन: कहते हैं कि बालक ध्रुव तूं मेरी कृपा से नि:सन्देह उस स्थान में जो त्रिलोकी में सब से उत्कृष्ट है, सम्पूर्ण ग्रह और तारा मण्डल का आश्रय बनेगा। "मै" तुझे वह ध्रुव निश्चल स्थान देता हूं जो सूर्य, चन्द्र, मंगल,बुध,बृहस्पति शुक्र और शनि आदि ग्रहों, सभी नक्षत्रों, समस्त सप्तर्षियों और समस्त विमानधारी देवताओं के ऊपर है।[1]

<u>विष्णु पुराण</u> में विवेचित ध्रुव आख्यान का जो स्वरूप प्राप्त होता है उसमें ध्रुव की तपस्या, विष्णु में उनकी भक्ति एवं विष्णु द्वारा दिये गये वरदान उपलब्धियों का सांगोपांग निरूपण प्राप्त होता है। इस आख्यान में दो परस्पर विरोधी भावनाओं, प्रथम उत्तानपाद द्वारा उत्तम के प्रति वात्सल्य तथा दूसरे विमाता सुरूचि द्वारा ध्रुव के प्रति कहे गये रोषपूर्ण वचनों का ज्ञापन भी कराया गया है। उपर्युक्त कथानक में गार्हस्थ्य आश्रम में पिता-पुत्र विमाता-पुत्र,

---

1- <u>विष्णु पु०,</u> 1/11

एवं भाई-भाई के सम्बन्धों में परस्पर सामन्जस्य होने के स्थान पर विरोधी भावनाओं का आविर्भाव विकसित अवस्था में दिखाई पड़ता है। इस आख्यान में माता सुनीति द्वारा ध्रुव के चरित्र को ऊंचा उठाने का प्रयास किया गया है। भागवत पुराण में ध्रुव आख्यान के कथानक में कतिपय तत्वों में समानता होते हुये भी विषमता दृष्टिगोचर होती है। उदाहरणार्थ- विष्णु पुराण में ध्रुव को सप्तर्षियों द्वारा जो उपदेश दिये गये हैं उनमें क्रमशः प्रत्येक ऋषि के नाम का उल्लेख भी किया गया है। पर भागवत में केवल नारद जी के द्वारा उपदेश देने की चर्चा मिलती है। विष्णु पुराण में प्रस्तुत कथानक के प्रसंग में भक्ति का जो स्वरूप पाया जाता है वह भागवत की अपेक्षा सूक्ष्म एवं अविकसित है। वैष्णव भक्ति के जिस स्वरूप को भागवत पुराण के प्रस्तुत आख्यान में दर्शाने की चेष्टा की गई है वह विष्णु पुराण में अप्राप्य है। भागवत पुराण में वर्णित ध्रुव आख्यान में उत्तानपाद द्वारा ध्रुव के राज्याभिषेक का उल्लेख है और साथ ही साथ वृद्धावस्था आई, जानकर आत्मास्वरूप का चिन्तन करते हुये संसार से विरक्त होकर उत्तानपाद के वन जाने का निर्देश है। यह आख्यान वैष्णव परक है। इसमें विष्णु संसार की उत्पत्ति के कारण, उसके पालक एवं अपने भक्तों को अभय प्रदान करने वाले कहे गये हैं। साथ ही साथ यह भी कहा गया है कि वे समस्त पदार्थों में विद्यमान है। हरिवंश में प्रस्तुत आख्यान अप्राप्य है।

प्रहलाद आख्यान-- दिति के पुत्र हिरण्यकशिपु ब्रह्मा जी से वर प्राप्त कर गर्व से उन्मत्त सम्पूर्ण त्रैलोक्य पर अपना अधिकार कर लेता है। उसने घोषणा की कि मैं ही इन्द्र, सूर्य, वायु, अग्नि और चन्द्रमा हूं। वह स्वयं अपने को वरुण और यमराज भी कहा करता था। उसका प्रहलाद नामक पुत्र अपने गुरु जी के यहाँ जाकर शिक्षा ग्रहण करने लगा। वह अत्यन्त भाग्यशाली था। सहसा एक दिन बालक प्रहलाद अपने गुरु जी के साथ पिता हिरण्यकशिपु के पास गया। हिरण्यकशिपु

पुत्र प्रहलाद को अपने समक्ष नतमस्तक देख कर उससे पूछते हैं कि अब तक अध्ययन में निरन्तर तत्पर रहकर तुमने जो कुछ पढ़ा है मेरे समक्ष उसका सारभूत भाषण स्पष्ट शब्दों में करो। प्रहलाद अपने पिता की आज्ञानुसार अपने विचारों को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि जो आदि, मध्य और अन्त से रहित अजन्मा-वृद्धि क्षय-शून्य और अच्युत है, समस्त कारणों के कारण एवं जगत की उत्पत्ति और उसके विनाश करने वाले हैं, उन हरि को मैं वन्दना करता हूं। प्रहलादकृत भगवान् विष्णु की स्तुति को सुनकर हिरण्यकशिपु अत्यन्त क्रोधित होकर प्रहलाद के गुरु को ओर देखकर उन्हें दो चार अपशब्द कह कर अपने विपक्षी को स्तुति से युक्त असार शिक्षा देने का आरोप लगाया। पुन: हिरण्यकशिपु प्रहलाद जी से यह प्रश्न पूछता है कि तुम को यह शिक्षा किस ने दी है? प्रहलाद कहते हैं कि भगवान् विष्णु ही सम्पूर्ण जगत के उपदेशक हैं। उनके अतिरिक्त कौन किस को कुछ सिखा सकता है। हिरण्यकशिपु भगवान् विष्णु के विषय में पूछता है कि वे कौन हैं? प्रहलाद के उत्तर के अनुसार विष्णु को योगियों के ध्यान करने योग्य जिस का परम पद वाणी का विषय नहीं हो सकता तथा जिस से विश्व प्रकट हुआ है और जो स्वयं विश्वरूप है वह परमेश्वर ही विष्णु है। प्रहलाद द्वारा कहे गये उक्त शब्दों को अमंगल वचन की संज्ञा देते हुये हिरण्यकशिपु उन्हे दैत्यों के संरक्षण में कर देता है। दैत्यगण पुन: प्रहलाद को उनके गुरुजी के पास ले गये। वहां वे गुरु जी की रात दिन सेवा सुश्रुषा करते हुये विद्याध्यन करने लगे। कुछ काल के पश्चात् दैत्यराज हिरण्यकशिपु ने प्रहलाद को पुन: बुलाकर विद्याध्ययन के विषय में विचार विमर्श किया। प्रहलाद जी फिर विष्णु की स्तुति करते हुये विष्णु को प्रधान पुरूष, जगत की उत्पत्ति तथा सकल प्रपंच के कारण बतलाते हैं। प्रहलाद की ऐसी वाणी सुन कर हिरण्यकशिपु मन में विचार करता है कि अब इस के जीने से कुछ लाभ नहीं है और दैत्यों को आदेश देता है कि तुम सब इस दुर्बुद्धि को मार डालो, क्योंकि स्वपक्ष की हानि करने वाला होने से यह अपने कुल के लिए अंगार रूप हो गया है। उसकी ऐसी आज्ञा होने पर सैकड़ों हजारों दैत्यों अपने अपने अस्त्र शस्त्र लेकर उन्हें

मारने के लिए उद्यत हो गये। प्रहलाद दैत्यों को देखकर कहते हैं कि दैत्यों, भगवान विष्णु शस्त्रों में, तुमलोगों में और मुझ में सर्वत्र ही स्थित हैं। उनकी कृपा से उन शस्त्रों का मेरे ऊपर कोई प्रभाव नहीं होगा। परन्तु उन दैत्यों ने प्रहलाद पर प्रहार कर ही दिया। भगवान् विष्णु की अनुकम्पा से शस्त्र समूहों के आघात होने पर भी उन को किसी प्रकार की वेदना नहीं हुई। वे बाल-बाल बच गये। हिरण्य कशिपु पुन: प्रहलाद से कहता है कि अब तुम विपक्षी की आराधना करना छोड़ दो । तुम को अभयदान देता हूँ। प्रहलाद कहते हैं कि जिनके स्मरण मात्र से समस्त भय दूर हो जाते हैं उन समस्त भय हारी अनन्त के हृदय में स्थित रहते मुझे भय कहाँ रह सकता है। फिर हिरण्य कशिपु ने सर्पों को विषाग्नि सन्तप्त मुखों से उन्हें काटकर शीघ्र नष्ट करने का आदेश दिया। परन्तु सर्पों के काटने पर भी वे जीवित ही रहे। उसके पश्चात् हिरण्य कशिपु ने प्रहलाद को अग्नि में जलाने का आदेश दिया, हाथियों के बीच में डलवाया, हाथियों के दाँत उनके वक्षस्थल से टकराकर टूट गये। हिरण्यकशिपु ने दैत्येन्द्र शम्बासुर को प्रहलाद का बध करने के लिए कहा, नागपाश में बाँध कर समुद्र में डलवाया, किन्तु प्रहलाद, हिरण्य कशिपु द्वारा किये गये उक्त उपायों से बार-बार बचते ही गये। उन्होंने मन वाणी और शरीर के संयमपूर्वक धैर्य धारण कर एकाग्र चित्त से भगवान की इस प्रकार स्तुति की-जो स्थूल सूक्ष्म स्वरूप और स्फुट प्रकाशमय है जो सम्पूर्ण भूतादि से परे है, जिन से यह समस्त विश्व उत्पन्न हुआ है उन पुरूषोत्तम भगवान् को नमस्कार है। उन की इस प्रकार तन्मयता पूर्वक स्तुति करने पर पीताम्बरधारी हरि प्रकट हुये । प्रहलाद उन्हें अपने समक्ष खड़े हुए देख कर कहते हैं कि भगवान् आप अपने पुण्य दर्शन से मुझे पवित्र कीजिये। प्रहलाद की कोमल वाणी को सुनकर भगवान विष्णु उन्हें वरदान मागने के लिए प्रेरित करते हैं। प्रहलाद अपनी इच्छा व्यक्त करते हुये कहते हैं कि सहस्त्रों योनियों में जिन-जिन

में मै जाऊं उसी-उसी में अच्युत आप में मेरा सर्वदा अक्षुण्ण भक्ति रहे। आप ने मेरी अविचल भक्ति बनी रहे और आप मेरे हृदय से कभी दूर न हों। विष्णु भगवान् प्रहलाद की मन: स्थिति समझ कर कहते हैं कि मुझ में तो तेरी भक्ति है ही-आगे भी ऐसी ही रहेगी। भगवान् विष्णु पुन: प्रहलाद को वर मागने के लिए प्रेरित करते हैं। प्रहलाद कहते हैं कि आप की स्तुति में प्रवृत्त होने से मेरे पिता जी के अन्त:करण में मेरे प्रति जो द्वेश उत्पन्न हुआ है, उन्हें उस से जो पाप लगा है वह नष्ट हो जाय। विष्णु भगवान् कहते हैं कि मेरी कृपा से तुम्हारी सभी इच्छाएं पूरी होंगी। कुछ ही क्षणों के पश्चात् विष्णु वहीं पर अदृश्य हो गये। प्रहलाद जी ने अपने सदन पहुंचकर पिता जी की वन्दना की। वह असुर अपने किये हुये पर पश्चाताप करने लगा। प्रहलाद अपने गुरु-तथा माता पिता की सेवा सुश्रुषा करने लगे । वे नृसिंह रूप धारण करने वाले भगवान् विष्णु द्वारा पिता के मारे जाने पर दैत्यों के राजा हुये।[1]

विष्णु पुराण में वर्णित प्रहलाद आख्यान की यदि अन्तरंग समीक्षा की जाय तो यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि इस आख्यान में प्रहलाद की तपस्या, उनकी भक्ति, उनकी वैष्णव प्रवृत्ति और विष्णु से उनकी वरदान उपलब्धियों का सुस्पष्ट निरूपण प्राप्त होता है। इस आख्यान में पिता-पुत्र के विचारों में मतैक्य न होने के स्थान पर विभिन्नता दृष्टिगोचर होती है। एक ओर हिरण्य कशिपु भगवान का कट्टर विरोधी है, यहां तक कि उनके नाम से भी द्वेश रखता है तथा अपने को विष्णु तथा संसार की उत्पत्ति का कारण पालक एवं संहारक बतलाने के साथ-साथ लोगों द्वारा अपनी ही स्तुति किये जाने पर बल देता है। दूसरी ओर प्रहलाद भगवान् विष्णु को संसार के प्रत्येक प्राणी की उत्पत्ति का कारण, पालक एवं विनाश का कारण बतलाने के साथ-साथ भगवान् विष्णु की

1- विष्णु पु०, 1/17

स्तुति में ही रत रहते हैं। हिरण्यकशिपु द्वारा प्रह्लाद के प्राणान्त के लिए अनेक साधन अपनाये गये, अनेक यातनायें दी गयीं। परन्तु भगवान की भक्ति के कारण सभी साधन प्रभावहीन सिद्ध हुये। यह सब भक्त प्रह्लाद पर भगवान की अनुपम कृपा थी। प्रस्तुत आख्यान पूर्णतया वैष्णव गठन को परिलक्षित करता है। यह आख्यान वैष्णव भक्ति से ओत-प्रोत है। आलोचित विष्णु पुराण में तो नहीं भागवत पुराण में वैष्णव भक्ति की जो रूपरेखा प्रस्तुत की गई है वह अपने आप में विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण लगती है। वरदान प्राप्ति के प्रसंग में प्रह्लाद विष्णु में अपनी सर्वदा अक्षुण्ण भक्ति को बतलाने के साथ-साथ अपने पिता को अपने प्रति उत्पन्न हुये द्वेष से जो पाप लगा है उसको भी नष्ट करने के लिए भगवान से प्रार्थना करते हैं। इस प्रकार यहाँ यह दृष्टिगोचर होता है कि प्रह्लाद अपने ही हित एवं स्वार्थ की सिद्धि नहीं चाहते हैं वरन अपने पिता को भी पापों से छुटकारा दिलाने का प्रयास करते हैं। प्रह्लाद आख्यान विष्णु पुराण में केवल चार अध्यायों में वर्णित है जबकि भागवत पुराण एवं हरिवंश में प्रस्तुत आख्यान छः अध्यायों में वर्णित है। इस प्रकार उपर्युक्त ग्रन्थों की तुलनात्मक समीक्षा के आधार पर यह कहा जा सकता है कि विष्णु पुराण में वर्णित प्रह्लाद आख्यान भागवत तथा हरिवंश की अपेक्षा पूर्वकालीन है। पूर्वपृष्ठों में इस बात की चर्चा की जा चुकी है कि विष्णु पुराण में आख्यानों का स्वरूप संक्षिप्त है, भागवत में उन्हें विस्तार मिला है।

भरत चरित- विष्णु पुराण में भरत आख्यान विस्तृत तथा व्यापक रूप में वर्णित मिलता है। इससे सम्बन्धित विशेष वृत्तों का विवरण निम्नांकित प्रकार से किया जा सकता है- प्रस्तुत पुराण में भरत का चरित निरूपण एक योगनिष्ठ व्यक्ति के रूपों में किया गया है। उन की आराधना के विषय भगवान् विष्णु थे। पुराण पंक्तियों में भरत का उल्लेख विष्णु के प्रति एक तल्लीन भक्त के रूप में किया गया है जो दिन-रात विष्णु का चिन्तन करते थे। एक सच्चे भक्त की भाँति

वे विष्णु की आराधना के लिए समिधा, पुष्प और कुश का संचय करते थे। इसके अतिरिक्त इनके कार्य का कोई अन्य विषय नहीं था। कथा प्रवाह में ऐसा कहा गया है कि एक दिन नदी के किनारे प्राप्त एक हरिण शावक के प्रति भरत का वात्सल्य उमड़ पड़ा । उसे वे अपने आश्रम में लाये और उस की देख भाल करने लगे। हरिण शावक के प्रति भरत के स्नेह का चित्रण पुराणकार ने पुत्र के प्रति पिता की भाँति किया है और वर्णित पंक्तियों में बताया गया है कि मरने के बाद भरत मृग-योनि में पैदा हुये तथा शालग्राम क्षेत्र में ही उनके क्रिया कलाप के क्षेत्र बने रहे।

कुछ काल के पश्चात् उन्होंने मृग शरीर को छोड़कर योगियों के प्रवर कुल में ब्राह्मण जन्म ग्रहण किया। पर, ब्राह्मण जन्म में भी उन्हें अपने पूर्व जन्म का स्मरण बना रहा। वे बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति थे। वे विभिन्न विद्याओं एवं शास्त्रों के मर्मज्ञ थे। उन्हें आत्म ज्ञान प्राप्त था जिस के कारण वे देवता तथा सम्पूर्ण विश्व के प्राणियों को अपने से अभिन्न रूप में नहीं देखते थे। समानता की ओर उनका अधिक झुकाव था। उपनयन संस्कार सम्पन्न होने पर भी उनका ध्यान अध्ययन की ओर आकृष्ट नहीं होता था। वे जड़ के समान कुछ असंस्कृत एवं ग्रामीण वाक्यों से मिले जुले वचन बोलते थे और वे निरन्तर मैले कुचैले एवं जीर्ण वस्त्रों को धारण किये रहते थे। जौ, धान्य, शाक एवं जंगली फल ही उन की एक मात्र भोज्य सामग्री थीं जिस का भक्षण कर वे अपनी भूख शान्त करते थे। इस प्रकार उनके भाई बन्धु उन्हें उन्मत्त, लंपट एवं अव्यवस्थित देख कर उन से कृषि कार्य कराने लगे।

कृषि कार्य में रत इस प्रकार न जाने कितने दिन, माह एवं वर्ष बीत गये। एक दिन महात्मा सौवीरराज महामुनि कपिल से यह प्रश्न पूछने के लिए कि इस संसार में मनुष्यों का श्रेय किस में है, शिविका पर चढ़कर इन्दुमती के किनारे स्थित उनके आश्रम पर जा रहे थे। भरत मुनि के विशेष वेश एवं उन की चाल को देख कर राजा के सेवकों ने उन्हें विष्टि ×बेगार× के योग्य समझ कर उनसे शिविका

को वहन करने के लिए कहा। भरत मुनि राजसेवकों के कथनानुसार शिविका को अन्य बेगारियों के बीच में लग कर वहन करने लगे। उन्होंने कभी शिविका तो कंधे पर रखी नहीं थी, इसलिए सहसा यह कर्म उनके लिए कठिन प्रतीत हो रहा था। वे अन्य शिविका वाहकों की भांति तेज न चलकर मंद गति से चल रहे थे। सौवीरराज ने शिविका की विषम गति को देखकर शिविका वाहकों से समान गति से चलने के लिए कहा। परन्तु शिविका वाहकों की चलने की गति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। सौवीरराज के बार-बार ऐसा कहने पर शिविका वाहकों ने धीरे धीरे चलने वाले नवीन शिविका वाहक भरत की ओर संकेत किया।सौरवीरराज भरत की ओर देख कर कहने लगे, तुम इतने मोटे और स्वस्थ्य होते हुये भी इस शिविका का भार वहन करने में असमर्थ हो रहे हो। सौवीरराज की ऐसी वाणी सुनकर द्विजराज कहते हैं कि आप की शिविका मेरे कन्धे पर नहीं रखी है। शक्तिशाली और निर्बल की बात पीछे कीजिएगा। पहले यह बताइये कि प्रत्यक्ष रूप में आपको क्या दिखाई दे रहा है। भरत जी शरीर के प्रत्येक अंगों की स्थिति एवं वे एक दूसरे से किस प्रकार सम्बन्धित हैं, की ओर संकेत करते हुये कहते हैं कि पृथ्वी पर तो पैर हैं, पैरों के ऊपर जंघायें हैं और जंघाओं के ऊपर दोनों उरु, उरुओं के ऊपर उदर है। उदर के ऊपर वक्षःस्थल- बाहु और कन्धे की स्थिति है तथा कन्धों के ऊपर वह शिविका रखी है। इस में मेरे ऊपर बोझ होने का कोई प्रश्न ही नहीं है। इस शिविका में आप बैठे हुये हैं जिस पर आप का अधिकार है, आप शिविका में हैं मैं पृथ्वी पर हूं ऐसा कहना सर्वथा अविश्वसनीय एवं मिथ्या है। सम्पूर्ण विश्व के समस्त प्राणी पंचभूतों द्वारा ही निर्मित हैं। समस्त जीवों में कर्म की ही प्रधानता है कोई भी प्राणी कर्म से वंचित नहीं है। आत्मा के महत्त्व को बतलाते हुये भरत ने कहा कि जहाँ तक आत्मा का प्रश्न है वह शुद्ध, अक्षर,शान्त, निर्गुण एवं प्रकृति से परे है और समस्त जीवों में वह एक ही विद्यमान है। अतएव उसका विनाश कभी नहीं होता। भरत का उपर्युक्त कथन दार्शनिक विचारों से ओत-प्रोत है। उन्होंने असमान तत्वों का विरोध करते हुये समानता लाने की चेष्टा की है। आत्मा की महत्ता पर बल देते हुये उसे प्रकृति से परे एवं अविनाशी बताया है।

भरत और सौरवोरराज सेन के इतने लम्बे वार्तालाप के पश्चात द्विजवर शिविका को धारण किये हुये मौन खड़े थे। सौवोर राजसेन भरत के दार्शनिक विचारों एवं उनकी विद्वत्तापूर्ण वाणी को सुनकर शिविका से नीचे उतर कर उनके चरण पकड़ प्रेम में विह्वल होकर कहते हैं कि, आप कौन हैं? किस कार्य से यहाँ पधारे हैं? मुझे आप के विषय में सुनने की उत्कण्ठा हो रही है। भरत जी अपने को अमुक बताते हुये कहते हैं कि आना जाना आदि सभी क्रियायें कर्म फल के उपभोग के लिए हुआ करती हैं।

कुछ ही क्षणों के पश्चात् सौवीरराज ने सम्पूर्ण विज्ञान तरंगों के समुद्र भरत जी से यह प्रश्न किया कि श्रेय और परमार्थ का क्या अर्थ है? श्रेय का अर्थ बतलाते हुये भरत जी कहते हैं कि जो पुरुष देवताओं की आराधना पूजा एवं कीर्तन करके धन, सम्पत्ति, पुत्र एवं राज्यादि की इच्छा करता है उसके लिए वही परम श्रेय है। परन्तु योग युक्त पुरुषों को प्रकृति आदि से अतीत उस आत्मा का ही ध्यान करना चाहिये क्योंकि उस परमात्मा का संयोग रूप श्रेय ही वास्तविक श्रेय है। भरत ने परमार्थ के विषय में निम्नप्रकार से अपने विचार व्यक्त किये हैं- आत्मा को उन्होंने व्यापक, सम, शुद्ध, निर्गुण प्रकृति से परे जन्म-वृद्धि आदि से रहित, सर्वव्यापी एवं अव्यय बताया है। वह संसार के प्रत्येक प्राणी में विद्यमान रहते हुये भी एक ही हैं। इस प्रकार जो विशेष ज्ञान है वही परमार्थ है।[1]

उपर्युक्त आख्यान में वर्णित भरत के विचारों में दार्शनिक एवं धार्मिक भावना का समावेश दिखलाई पड़ता है। प्रस्तुत आख्यान में जीव और आत्मा का सम्बन्ध स्पष्ट रूप में वर्णित है। इस प्रकार भरत का चरित्र प्रस्तुत पुराण में उदात्त रूप में वर्णित है। इस में सन्देह नहीं है कि ऐसे दार्शनिक विचारों का समावेश होने के कारण वैष्णव धर्म की लोकप्रियता और गतिशीलता में सहायता मिली होगी।

1- विष्णु पु०, 2/13

विष्णु पुराण की भाँति भरत आख्यान का वर्णन भागवत पुराण प्रस्तुत आख्यान का वर्णन संक्षिप्त रूप में प्राप्त होता है। परन्तु, भागवत में विस्तृत रूप में वर्णित हैं। भरत का मृग योनि एवं ब्राह्मण कुल में जन्म लेना, तथा उनकी जीवनचर्या से सम्बन्धित अनेक घटनाओं का वर्णन विष्णु पुराण में प्राप्त होता है। भागवत पुराण में भी इसी से मिलता जुलता विवरण प्राप्त होता है। विष्णु एवं भागवत पुराण में वर्णित भरत आख्यान विवरण में समानता होते हुये भी भागवत में वर्णित भरत विवरण में कुछ ऐसे तत्वों का समावेश किया गया है जो विष्णु पुराण में वर्णित भरत आख्यान में नहीं प्राप्त होते हैं। उदाहरणार्थ, विष्णु पुराण में वर्णित भरत-आख्यान विवरण में जीव और आत्मा के सम्बन्ध का स्पष्ट वर्णन प्राप्त होता है, परन्तु माया की चर्चा नहीं की गई है। भागवत पुराण में माया को विशेष महत्व दिया गया है। प्रस्तुत पुराणों में भरत आख्यान के सन्दर्भ में मायामय मन के विषय में कहा गया है कि मायामय मन बहुत बड़ा छली है यही अभिमानी शरीर में प्रविष्ट होकर सम्पर्क स्थापित कर (मिलकर) उसे कर्मानुसार प्राप्त हुए सुख-दुख और इन से अतिरिक्त मोक्ष स्वरूप अपेक्षित फलों को प्राप्त करता है।

जहाँ तक प्रस्तुत आख्यान में वर्णित वैष्णव भक्ति का प्रश्न है विष्णु पुराण अछूता नहीं है। परन्तु भागवत तो वैष्णव भक्ति का अथाह समुद्र है। भागवत पुराण के प्रत्येक अंश का प्रत्येक अध्याय वैष्णव भक्ति से ओत-प्रोत है। प्रस्तुत आख्यान में वर्णित वैष्णव भक्ति का निरूपण भरत के ही शब्दों में किया जा सकता है। भरत सौवीर राज रहूगण को उपदेश देते हुये कहते हैं कि भगवान् की लीलाओं के कथन और श्रवण से मनुष्य सुगमता से संसार सागर को पारकर भगवान को प्राप्त कर सकता है।

माया मोह आख्यान- विष्णु पुराण में आख्यान, उपाख्यान, कथायें एवं अन्तर्कथायें बहु संख्या में तो प्राप्त होती हैं, किन्तु प्रस्तुत पुराण में कुछ विशिष्ट कथाओं का समावेश कियागया है जिन में मायामोह आख्यान विशेषतया उल्लेखनीय है। प्रस्तुत आख्यान में देवता और असुरों में परस्पर युद्ध का उल्लेख प्राप्त होता है। सौदिव्य वर्ष तक देवता और असुरों में परस्पर युद्ध के पश्चात

देवगण युद्ध की विभीषिका में संतप्त हो उठे। देवताओं की सम्पूर्ण शक्ति विनष्ट हो गई और दैत्यों को नष्ट करने के लिए देवताओं द्वारा किये गये समस्त उपाय विफल हो गये। अन्ततो गत्वा सम्पूर्ण देववृन्द ने असहाय होकर क्षीर सागर के उत्तरी तट पर जाकर घोर तपस्या की और विष्णु भगवान की निम्न प्रकार से आराधना की- पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, अन्तःकरण और प्रकृति से परे पुरुष सब में ही आप का सहवास है। इन्द्र सूर्य, रुद्र, वसु, अश्विनीकुमार, मरुद्गण सोम आदि देवताओं में आप का ही स्वरूप विद्यमान है। इस प्रकार देवताओं द्वारा प्रार्थित श्री हरि कर में शंख, चक्र और गदा धारण किये हुये गरुड़ पर आरूढ़ उनके समक्ष उपस्थित हुये। उन्हें देख कर समस्त देवताओं ने प्रणाम करके अनन्तर उनसे प्रार्थना की- भगवान आप प्रसन्न हों और हम शरणागतों की दैत्यों से रक्षा करें जिससे हम उन असुरों का वध करने में समर्थ हों। देवताओं की ऐसी करुण कलित वाणी सुन कर भगवान विष्णु ने अपने शरीर से मायामोह को उत्पन्न किया और उसे देवताओं को धैर्य बंधाते हुये कहते हैं कि यह मायामोह अपनी माया से सम्पूर्ण दैत्यों को मोहित कर देगा। उस अवस्था में दैत्यों द्वारा वेद मार्ग का उल्लंघन होने से तुम लोग उन्हें मार सकोगे। भगवान् विष्णु की ऐसी वाणी को सुनकर देवताओं ने उनके आदेशानुसार अपने अपने स्थान को प्रस्थान किया। मायामोह भी नर्वदा नदी के तट की ओर चल पड़ा। जहाँ पर असुरगण तपस्या में रत थे। उस समय मायामोह का स्वरूप कुछ विशेष प्रकार का था। मयूर पिच्छधारी दिगम्बर एवं मुण्डित केशवाला मायामोह असुरों से अत्यन्त मधुर वाणी में कहने लगा- दैत्यगण आप लोगों के तपस्या करने का क्या उद्देश्य है? असुरगण नवीन पुरुष को देख कर अत्यन्त आश्चर्य चकित हो गये और कहने लगे- महामते! हम लोगों ने पारलौकिक फल की कामना से तपस्या आरम्भ की है। इस विषय में क्या आप की भी कुछ इच्छा अपने विचार प्रकट करने की है? मायामोह दैत्यगण के प्रश्नों का उत्तर देते हुये कहता है कि यदि आप लोगों को मुक्ति प्राप्ति की आशा है तो जैसा मैं कहता हूं वैसा ही आचरण कीजिए । आप लोग

मुक्ति के खुले स्वरूप इस धर्म का आचरण कीजिए। प्रस्तुत धर्म मुक्ति में परमोपयोगी है और इससे श्रेयकर अन्य कोई धर्म नहीं है। इस का अनुष्ठान करने से आप लोग स्वर्ग अथवा मुक्ति जिस को अभिलाषा करेंगे सरलता से प्राप्त कर लेंगे।

इस प्रकार को अनेक युक्तियों से परिपूर्ण वाक्यों द्वारा मायामोह ने दैत्यगण को वैदिक मार्ग से भ्रष्ट कर दिया। वह पुन: कहने लगा- यह धर्मानुकूल है, और यह धर्म विरुद्ध है, यह सत्य है, और यह असत्य है आदि। ऐसे अनेक प्रकार के वाक्यों को कहकर मायामोह ने उन दैत्यों को स्वधर्म से च्युत कर दिया। इस प्रकार थोड़े ही समय में माया मोह से मोहित होकर असुरों ने वैदिक धर्म की चर्चा करना ही छोड़ दिया।[1]

विष्णु पुराण का यह मायामोह आख्यान कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है प्रथमत: यह आख्यान वैष्णव धर्म को वैदिक परम्परा के बाहर नहीं मानता। मायामोह के द्वारा असुरों का छला जाना उन्हें वैदिक मार्ग से विमुख करके ही सम्भव हो पाया था। वैदिक मार्ग के विरुद्ध होने के कारण मायामोह द्वारा सिखाया गया नया सिद्धान्त बौद्ध तथा जैन जैसे वेद वाह्य धर्मों की ओर संकेत करता है। अत: द्वितीयत: इस आख्यान पर बौद्ध तथा जैन धर्म जैसे वेदेतर धर्मों का प्रभाव दिखाई पड़ता है। त्रितीय इसमें विष्णु के साथ माया का सम्बन्ध उनके शरीर से उत्पन्न शक्ति के रूप में सामने आता है। यद्यपि इस शक्ति की परिकल्पना स्त्री रूप में नहीं की गई जो कि और आगे चलकर बाद में पुराणों में मिलती है। मायामोह आख्यान इस प्रकार विष्णु पुराण में प्रतिबिम्बित वैष्णव धर्म के उस परवर्ती स्वरूप को प्रदर्शित करता है जो विष्णु पुराण में पाये जाने वाले अन्य कथानकों में वर्तमान उसके स्वरूप की अपेक्षा बाद का है।

कृष्ण रास लीला आख्यान-- इसमें सन्देह के लिए लवलेश भी अवकाश नहीं है कि वैष्णव आख्यानों, उपाख्यानों कथाओं एवं अन्तर्कथाओं में श्रीकृष्ण

1- विष्णु पु०, 3/18

को रासलीला का महत्वपूर्ण स्थान रहा है, जिस के विदर्शनार्थ स्थल अन्य अनेक पुरातनसाहित्य ग्रन्थों में हो मिलते हो हैं इसके अतिरिक्त इसके सन्दर्भ में प्रचुर सामग्री आलोचित पौराणिक ग्रन्थों में प्राप्त होती है। आलोचित विष्णु पुराण में कृष्ण रासलीला की झांकी- झांकी प्रस्तुत की गई है जिस का विवेचन निम्नांकित शब्दों में किया जा सकता है- शरच्चन्द्र की चन्द्रिका से निर्मल आकाश दीप्त हो रहा है। कुमुदनी दिशाओं को सुगन्धित कर रही है। इन प्राकृतिक दृश्यों की छटा को देखकर श्री कृष्ण की प्रबल इच्छा गोपिकाओं के साथ विचरण करने की होती है। वे व्रजांगनाओं को प्रिय लगने वाला अत्यन्त मधुर, स्फुट एवं मृदुल पद का गान करने लगते हैं। उनके ऊंचे और मधुर स्वर को सुनकर गोपियां जहां मधुसूदन उपस्थित थे वहां आ जाती हैं और वे भी उनके स्वर में स्वर मिला कर धीरे-धीरे गाने लगती है। श्री कृष्ण के अन्यत्र चले जाने पर व्रजांगनायें विभिन्न यूथों में वृन्दावन में विचरण करती हैं। कुछ ही क्षणों के पश्चात् गोपियां यमुना तट पर आकर उनके चरित्र का ध्यान करती हैं। कृष्ण और गोपियां मिलकर रास मण्डल की रचना करते हैं। तदन्तर रास क्रीडा प्रारम्भ होती है। आभूषणों से सुसज्जित गोपियों के चंचल कंकणों की झनकार से सम्पूर्ण रास मण्डल झंकृत हो उठता है। गोपियां शरद वर्णन सम्बन्धी गीत गाती हैं। श्री कृष्ण भी गीत गाते तथा नृत्य करते हुये रासलीला सम्पन्न करते हैं।[1]

विष्णु पुराण में वर्णित कृष्ण रासलीला आख्यान की तुलना यदि भागवत में वर्णित प्रस्तुत आख्यान से की जाय तो ऐसा प्रतीत होता है कि विष्णु पुराण में वर्णित रासलीला आख्यान भागवत की अपेक्षा संक्षिप्त है। जिन विशेष भावों की अवतारणा राधा के व्यक्तित्व में आगे चलकर की गई थी और जिस का केवल पूर्वाभास विष्णु पुराण में प्राप्त होता है, भागवत की सरस और ललित पदावली

1- विष्णु पु०, 5/13

में उसके अधिक स्पष्ट तत्व मिलने लगते हैं। भागवत पुराण में रासलीला का वर्णन अत्यन्त विस्तृत हो गया है। वेणुगीत विष्णु पुराण के रास की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। भागवत पुराण में इसी की परिणति महारास में हुई है। महारास में रास के सभी तत्व विस्तार के साथ प्राप्त होते हैं। चन्द्रमा, यमुना तट तथा नृत्य के समय गोपिकाओं के अंगों का सौन्दर्य विष्णु पुराण की अपेक्षा भागवत की पंक्तियों में विशद रूप में वर्णित है। भागवत पुराण में रास का प्रारम्भ उदीयमान चन्द्रमा की क्रमशः विस्तीर्ण होती हुई प्रकाशमान् रश्मियों के साथ हुआ है। प्रस्तुत पुराण में हिमशीत बालुका पर कुमुद के परिमल से आनन्द पूर्ण कृष्ण और गोपिकाओं को आनन्द विभोर मुद्रा में चित्रित कियागया है।

भागवत पुराण में वर्णित रास लीला के स्वरूप की तुलना में हरिवंश में वर्णित प्रस्तुत आख्यान संक्षिप्त है। प्रस्तुत ग्रन्थ के तत्सम्बन्धित वर्णन में राधा के उल्लेख का अभाव तथा विष्णु पुराण और भागवत के उन विशद और व्यापक प्रसंगों का न मिलना जिन की पृष्ठ भूमि में राधा के व्यक्तित्व का उभार उत्तरवर्ती स्तरों पर हुआ था, इस के अतिरिक्त हरिवंश में हल्लीसक नृत्य का निरूपण भी इस ग्रन्थ के तद् विषयक स्थल को एक विशिष्टरूप प्रदान करता है। भागवत के रास में प्रकृति चित्रण तथा रूप वर्णन का समन्वय इस प्रसंग के काव्य सौन्दर्य को बढ़ा देता है। हरिवंश में रासक्रीडा को हल्लीस क्रीडा कहा गया है। हरिवंश के टीकाकार नीलकण्ठ ने एक श्लोक की टीका में "चक्रवाल" का अर्थ "रासक" बतलाया है। रास गोष्ठी की परिभाषा उन्होंने अमरकोष से दी है। अमरकोष की इस परिभाषा के अनुसार हाथ पैरों के परिचलन की क्रिया विशेष ही रास गोष्ठी है।[1] हरिवंश में शरद ऋतु की चाँदनी का सौन्दर्य तथा श्रीकृष्ण

1- हरि0, 2·20·35 टीका–चक्रवाले: मण्डले: हल्लीस क्रीडनम्।
एकस्य पुंसो बहुभिः स्त्रीभिः क्रीडनं सैव रास क्रीडा । गोपीनां
मण्डलीनृत्य बन्धने हल्लीसकं विदुः इति कोषात् । तल्लक्षणम्–
पृथुं स्थूलं मसृणं वितस्तिमात्रोन्नतं कौ विनिखन्य शङ्कुम । आक्रम्य
पदभ्यामितरेतरं तु, हस्तैर्भ्रमोऽयंखलु रास गोष्ठी।
द्रष्टव्य, वीणापाणि पाण्डे, हरिवंश पुराण का सांस्कृतिक विवेचन, पृ0 30

की मानसिक अवस्था का वर्णन थोड़े शब्दों में करने वाले श्लोक से हरिवंश के हल्लीसक की संक्षिप्तता का परिचय प्राप्त होता है। कृष्ण तथा गोपियों की अवस्था एवं प्रकृति के सौन्दर्य का वर्णन हरिवंश की अपेक्षा भागवत पुराण में विस्तार में प्राप्त होता है। भागवत पुराण में रास केवल एक अंग चन्द्रिका का वर्णन अपनी विशदता के कारण भिन्न स्थान रखता है। हरिवंश में निरूपित हल्लीसक रासलीला के एक ऐसे पक्ष का परिचय उपस्थित करती है जिसका आगे चलकर समुचित विकास हुआ।

पारिजात हरण आख्यान-- विष्णु पुराण में वर्णित पारिजात हरण आख्यान प्रस्तुत पुराण में उल्लिखित आख्यानों, उपाख्यानों,कथाओं एवं अन्तर्कथाओं की तुलना में कम ख्याति नही प्राप्त किये हुये हैं। यह आख्यान विष्णु पुराण में उल्लिखित उस आख्यान का स्मरण दिलाता है जिसको समुद्र मंथन आख्यान कहते हैं। देवताओं और दैत्यों द्वारा समुद्र मंथन किये जाने पर समुद्र से रत्न प्रकट हुये। उनमें पारिजात वृक्ष भी एक रत्न था जिसको कल्पवृक्ष कहा गया है। प्रस्तुत आख्यान का विस्तृत विवेचन इस प्रकार है- गरूड पर आरूढ़ सत्य भामा सहित श्री कृष्ण स्वर्ग की ओर प्रस्थान करते है। स्वर्ग में पदार्पण करते हुये संख ध्वनि करते हैं। शंखनाद सुनते ही देवता अर्घ्य लेकर भगवान् के सामने उपस्थित होते हैं। देवता मण्डली द्वारा पूजित होकर श्रीकृष्ण देवमाता के श्वेत मेघ शिखर के समान गृह में प्रवेश कर उनका दर्शन किया। इधर कल्पवृक्ष के पुष्पों से सुसज्जित इन्द्राणी ने सत्यभामा को मानुषी समझ कर वे पुष्प न दिये। सत्यभामा के साथ श्री कृष्ण ने देवताओं के नन्दन आदि उद्यानों का दिग्दर्शन किया। उन्हीं मनोहर उद्यानों में समुद्र मंथन के समय प्रकट हुये सुनहरी छाल वाले पारिजात वृक्ष को देखा । उस सुन्दर वृक्षराज को देखकर सत्यभामा सुमधुर वाणी में श्रीकृष्ण से उस वृक्ष को द्वारकापुरी ले चलने के लिए अपना मन्तव्य व्यक्त किया, तथा कृष्ण के प्रति अपना प्रेम प्रदर्शित करती हुई उस वृक्ष को अपने गृहोद्यान में आरोपण करने के लिए विशेष बल दिया।

सत्यभामा के इस प्रकार बार बार कहने पर श्रीकृष्ण ने पारिजात वृक्ष को गरुण पर रख लिया। पारिजात को गरुड पर रखे हुये देख कर वन रक्षक भगवान श्रीकृष्ण से कहते हैं कि गोविन्द! यह पारिजात वृक्ष देवराज इन्द्र की पत्नी शची की अपनी निजी सम्पत्ति है। आप इसका हरण न कीजिए। आप इस को लेकर सकुशल द्वारका पुरी नहीं जा सकते हैं। देवराज इन्द्र अपने वृक्ष का बदला चुकाने के लिए उद्यत होंगे। उद्यान रक्षकों के इस प्रकारकहने पर सत्यभामा क्रोधावेश में कहती है कि शचीपति या देवराज इन्द्र की यह कोई निजी सम्पत्ति नहीं है। यह तो समुद्र मंथन के समय उत्पन्न हुआ था। यह सब को समान सम्पत्ति है। सत्यभामा की इन बातों को सुनकर उद्यान रक्षकों ने शची के पास जाकर सम्पूर्ण वृतान्त ज्यों का त्यों कह दिया। शची अपने पति देवराज को उत्साहित करती हैं। देवराज इन्द्र पारिजात वृक्ष को छुड़ाने के लिए सम्पूर्ण देव सेना के सहित श्री हरि से युद्ध करने के लिए चल पड़ते हैं। अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित देव सेना से घिरे हुये ऐरावतारूढ इन्द्र को युद्ध के लिए उद्यत देख कर श्री हरि शंखध्वनि करते हैं और हजारों लाखों बाण छोड़ते हैं। देवताओं ने भी अपने-अपने शस्त्रों का प्रयोग करना प्रारम्भ किया। घमासान युद्ध के पश्चात् देव सेना के पैर उखड़ गये। इन्द्र का वज्र छिन गया तथा उनका वाहन ऐरावत गरुड द्वारा क्षत-विक्षत हो जाने के कारण भागते हुये पराक्रमी इन्द्र से सत्यभामा कहती है कि-तुम शचीपति हो तुम्हे युद्ध में इस प्रकार पीठ दिखलाना उचित नहीं है। सत्यभामा के इन वाक्यों को सुनकर देवराज इन्द्र भगवान् श्री कृष्ण की ओर संकेत करते हुये कहते हैं कि जो सम्पूर्ण जगत की उत्पत्ति स्थिति और संहार करने वाले हैं उन प्रभु से पराजित होने में मुझे कोई संकोच नहीं है।

<u>विष्णु पुराण</u> में विवृत पारिजात हरण-आख्यान <u>भागवत पुराण</u> के विवरण की अपेक्षा पर्याप्त रूप में विस्तृत है। विष्णु पुराण का आख्यान अस्सी श्लोकों में सन्निहित है पर, <u>भागवत</u> में केवल दो श्लोकों द्वारा आख्यान वर्णित मिलता है। पारिजात हरण आख्यान <u>विष्णु पुराण</u> में <u>भागवत</u> की अपेक्षा विस्तृत

विष्णु पु०, 5/30

तथा हरिवंश की अपेक्षा संक्षिप्त है। किन्तु विन्टरनित्स आदि विद्वानों ने विष्णु पुराण में निहित इसके स्वरूप को भागवत में पाये जाने वाले इसके रूप से भी पहले का माना है। उपर्युक्त विवेचन के आलोक में यह मत तर्क संगत नहीं कहा जा सकता क्योंकि भागवत का वर्णन विष्णु पुराण की अपेक्षा सूक्ष्म है। इसके अतिरिक्त पारिजात कथानक के सन्दर्भ में दो महत्वपूर्ण बातों पर ध्यान देना परमावश्यक है। प्रथम तो यह कि इस कथानक का जो स्वरूप भागवत पुराण में प्राप्त होता है वह विष्णु पुराण की अपेक्षा भिन्न है तथा हरिवंश के विवरण से समता रखता है। दूसरे विष्णु पुराण के विवरण में वैष्णव धर्म के साम्प्रदायिक आग्रह का निर्वाह प्रकट है, जब कि भागवत में यह बात नहीं दिखाई देती है। भागवत पुराण में यह वर्णन मिलता है कि पारिजात हरण श्रीकृष्ण ने इस लिए किया था कि शची ने सत्यभामा को मानवी समझकर दैवी पुष्प से उस का स्वागत नहीं किया था। सत्यभामा उनका मान मर्दन करना चाहती थीं। श्री कृष्ण ने सत्यभामा की प्रेरणा से पारिजात हरण कर उसे अपने उद्यान में आरोपित किया था।[1] कथानक का यही स्वरूप हरिवंश में भी प्राप्त होता है। इन दोनों पुराणों के सम्पूर्ण वर्णन को पढ़ने से यह प्रतीत होता है कि इन ग्रन्थों में सत्य भामा के चरित्र की निर्बलता को व्यक्त करने का प्रयास किया गया है। विष्णु पुराण में पारिजात हरण सम्बन्धी जो कथानक प्राप्त होता है वह भागवत और हरिवंश के समान ही चलता है। विष्णु पुराण, भागवत तथा हरिवंश के विवरणों में समानता होते हुये भी विष्णु पुराण की महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इस के विवरण में सत्यभामा के चरित्र को मानवी स्तर से ऊपर उठाने की चेष्टा की गई है क्योंकि विष्णु पुराण की सत्यभामा कृष्ण की विजय तथा पारिजात पर उनके अधिकार के बाद भी पारिजात को देव सान्निध्य में छोड़ देने का आग्रह करती है।

आलोचित दोनों पुराणों में उपलब्ध पारिजात हरण-आख्यान की समीक्षा यदि काल निर्णय की दृष्टि से की जाय तो ऐसा प्रतीत होगा कि भागवत तथा

1- भागवत पु०, 10/59/ 38-39

हरिवंश में विस्तार के बावजूद अपेक्षाकृत सरल और मौलिक रूप सुरक्षित है तथा विष्णु पुराण में इस पर वैष्णव आदर्शों के अधिक विकसित स्वरूप का रंग चढ़ाने की चेष्टा की गई है। विष्णु पुराण के वर्णन की मौलिकता पर इस दृष्टि से भी व्याघात पहुँचता है क्योंकि इस में सत्यभामा के व्यक्तित्व को मानव सुलभ दुर्बलता से ऊपर उठाने का प्रयास किया गया है तथा इन के स्वरूप में देवोचित तत्त्व लाने की भी चेष्टा की गई है। सम्पूर्ण वर्णन के पढ़ने से ऐसा लगता है कि सत्यभामा के व्यक्तित्व के माध्यम से एक ऐसी पृष्ठभूमि प्रस्तुत हो जाती है जिस के आधार पर आगे चलकर वैष्णव भक्तों और वैष्णव सन्तों ने उस वैष्णव देवी का परिकल्पन किया जिसे वैष्णव आख्यानों, कथाओं एवं स्फुट वन्दनाओं में राधा की संज्ञा दी गई है। इस प्रकार यद्यपि सामान्यतया विष्णु पुराण भागवत की अपेक्षा पूर्वकालीन है तथापि उपर्युक्त कारणों से भागवत का पारिजात हरण आख्यान विष्णु पुराण के इस स्थल से पहले का माना जा सकता है।

भागवत पुराण

भागवत पुराण - पौराणिक वाङ्मय में श्रीमद्भागवत एक विशिष्ट पुराण संरचना है। इस पुराण की व्यापकता पर यदि दृष्टिपात किया जाय तो यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि इसमें सकाम कर्म, निष्काम कर्म, साधन भक्ति, साध्य भक्ति, द्वैत, अद्वैत और द्वैताद्वैत आदि का सांगोपांग निरूपण प्राप्त होता है। स्वयं भागवतकार ने इस की महत्ता का प्रतिपादन करते हुये कहा है कि जो प्रतिदिन पवित्र चित्त होकर भागवत के एक श्लोक का पाठ करता है वह मनुष्य अठारह पुराणों के पाठ का फल प्राप्त कर लेता है।[1] इसके अतिरिक्त इस पुराण ग्रन्थ में ऐसे अनेक तत्त्व प्राप्त होते हैं जिनकी महत्ता तत्कालीन सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों की दृष्टि से अस्वीकार नहीं की जा सकती। पर, वास्तविकता यह है कि ये तत्त्व पुराण की उस विशेष परिभाषा के अन्तर्गत नहीं आ पाते जिसे पंच लक्षण की संज्ञा दी जाती है। वस्तुत: पंच लक्षण का पूर्णत:, अंशत:, अथवा एकांशत: समावेश पुराण ग्रन्थ की प्राचीनता अपेक्षाकृत उत्तर कालीनता अथवा उत्तरोत्तर अर्वाचीनता का परिचय देते हैं। उल्लेखनीय है कि जिस मौलिक प्रवृत्ति से प्रेरित होकर पुराण ग्रन्थ के विशाल कलेवर का निर्माण किया गया उसकी बद्धमूल प्रखरता और प्रबलता के कारण पुराणों को किसी विशेष लक्षण के साथ बाँधना अथवा सीमित करना सम्भव ही, नहीं था। भागवत की काया विस्तृत है और ऐसी स्थिति में पंचलक्षण के साथ इसका सीमित रहना सहज नहीं हो सकता था। भागवत का संकलनकर्ता पंचलक्षण के प्रति श्रद्धालु है पर, उस से बँधा हुआ नहीं है। पंचलक्षण

1- य: पठेत् प्रयतो नित्यं श्लोकं भागवतं सुत ।
अष्टादश पुराणानां फलमाप्नोति मानव: ।।

श्रीमद्भागवत-महात्म्य,श्लोक,4

इसमें यौगिक नहीं रूढ़ हो चुकी है। भागवत का लेखक अपनी संरचना को पुराणत्व से पृथक नहीं रखना चाहता था और यही कारण है कि भागवत की विशालता की संगति पूर्ण सिद्ध करने के लिए वह पंचलक्षण को वृहद् रूप दे कर दश लक्षण का समर्थक है। ऐसी स्थिति मे यदि तिथि विषयक किसी विशेष मापदण्ड को विशेषतया भागवत के प्रसंग में अपनाया ही जाय तो वह मापदण्ड है दशलक्षण के काल का निर्धारण। जिस के आधार पर भागवत का पूर्णतया तो नहीं किन्तु कुछ सीमा तक काल विषयक प्रश्न निश्चित करने का प्रयास किया जा सकता है।

वस्तुत: भागवत एक धार्मिक पुराण संरचना बन चुका है। जिस के वर्णन के विषय हैं श्री कृष्ण, उनकी लीला, उनके क्रिया कलाप तथा उनकी भक्ति। दश लक्षणों का वास्तविक स्वरूप क्या है, इस ग्रन्थ में निबद्ध विवरणों के साथ उनकी संगति कहाँ तक बैठती है और उसका निर्वाह किस सीमा तक हुआ है इन का विवेचन अपेक्षित है। तथापि यह निर्विवाद है कि भागवत के विवरणों में जितना अवकाश "रक्षा" लक्षण को दिया गया है उतना अन्य लक्षण या तो अपने समावेश के लिए समुचित अवकाश नहीं पा सके है अथवा भागवतकार ने उनका स्पर्श मात्र किया है। भागवत के उपास्य देव विष्णु के अवतार कृष्ण एक ऐसी दैवी विभूति के रूप में चित्रित हुये हैं कि जिनके स्वरूप में लोक रक्षक, लोकपालक और लोक रंजक के तत्व अपनी प्रधानता का प्रचुर प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। यहाँ उल्लेखनीय है कि श्रीमद्भागवद् गीता में दुर्जनों के विनाश के लिए और धर्म की संस्थापना के बार बार होने वाले विष्णु के स्वरूप के दैवी कार्यों का विशद विवरण भागवत के स्थलों में दिखाई देता है। इस प्रकार "रक्षा" का तात्पर्य भगवान श्री कृष्ण के लोक रक्षक कार्यों से है। भागवत के स्थलों से

विदित होता है कि "रक्षा" लक्षण का सम्बन्ध प्रधानत: श्री कृष्ण की लीलाओं से है। भगवान् श्री कृष्ण की लीला के अन्तर्गत उनके अवतार भी आते हैं और रक्षा का सम्बन्ध विशेषतया उनके अवतार से है। भगवान् एक युग के पश्चात् दूसरे युग में मनुष्य, ऋषि तथा देवता आदि के रूप में अवतार धारण कर अनेक लीलायें किया करते हैं। वे विश्व के रचयिता, विश्व के रक्षक और विश्व के अन्तिम लक्ष्य हैं। सम्पूर्ण प्राणियों में उन्हीं की विद्यमानता एवं प्रतिष्ठा है। उनके अवतार का लक्ष्य वेदविरोधियों का संहार करना तथा वेद धर्म की रक्षा करना है। दार्शनिक दृष्टि से इसी मन्तव्य को समझाते हुये भागवत में एक स्थल पर कहा गया है कि भगवान् प्रकृति सम्बन्धी उत्थान, पतन, प्रमाण-प्रमेय और गुण गुणी भाव से रहित हैं। वे अचिन्त्य, अनन्त, अप्राकृत, परम कल्याण स्वरूपी गुणों के एक मात्र आश्रय हैं। उन्होंने जो अवतार ग्रहण किया है तथा अपनी लीलाओं को प्रकट किया है उसका मात्र प्रयोजन यही है कि प्रत्येक प्राणी उसका सहारा लेकर परम कल्याण का सम्पादन करने में समर्थ बन सके। एक दूसरे स्थल पर भगवान् के शरीर धारण करने के विषय में कहा गया है कि उनके पार्थिव शरीर का आविर्भाव उनकी अनिवार्यता पूर्वक स्वतंत्र से होता है तथा उन का यह शरीर विशुद्ध ज्ञान स्वरूप है। वे सब कुछ हैं, सब के कारण हैं तथा सब के आत्मा हैं।[2]

1- नृणां नि: श्रेय सार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप।
अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मन: ।।

भागवत पु0, 10/29/14

2- स्वच्छन्दोपात्तदेहाय विशुद्धज्ञान मूर्तये ।
सर्वस्मै सर्वबीजाय सर्वभूतात्मने नम:

भागवत पु0, 10/27/11

सर्व शक्तिसम्पन्न सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त परमात्मा जीव को मुक्ति पाने के लिए जिन विशेष साधनों को अपनाना पड़ता है उन का निर्देश भागवत की प्रख्यात वेद स्तुति में निम्नलिखित शब्दों में किया गया है-
भगवान् के मंगलमय नामों एवं रूपों का जो मनुष्य श्रवण, कीर्तन, स्मरण और ध्यान करता है तथा उनके चरण कमलों की सेवा में होनिरन्तर अपने चित्त लगाये रहता है, वह इस जन्म मृत्यु एवं संसार के चक्र में नहीं फसता है। इसमें सन्देह नहीं है कि इन सभी तथ्यों का समुचित समाहार उसी लक्षण विशेष में हुआ है जिसे भागवतकार ने "रक्षा" की संज्ञा प्रदान की है।

अष्टादश पुराणों में इस पुराण को "भागवत" नाम से इस लिए अभिहित किया गया है क्योंकि इस में भगवान् श्री कृष्ण के क्रिया कलापों, उनके ऐश्वर्य, उनके गुण तथा उनकी भक्ति का विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है। "भागवत" का शाब्दिक तात्पर्य भगवान् से है इसी भगवत शब्द से भागवत बना है। जिस में भगवान् के क्रिया कलापों का विस्तृत वर्णन प्राप्य है। भगवान् भगवत विष्णु, श्री कृष्ण इनकी लीला इनकी भक्ति तथा इनके क्रियाकलापों का वर्णन जिसमें है वह "भागवत" है। अथवा "भगवती" अर्थात् देवी की महिमा का निरूपण जिसमें है वह भागवत है, इस सम्भ्रम के कारण प्राचीन और अर्वाचीन पुराण प्रेमियों और पुराण आलोचकों में मतैक्य नहीं रहा है। जिन साक्ष्यों के आधार पर इस प्रश्न को सुलझाया जा सकता है उनमें निबन्ध ग्रन्थों के साक्ष्य तथा आधुनिक विद्वानों के विचार विशेषतया उल्लेखनीय हैं।

1- शृण्वन् गृणन् संस्मरयंश्च चिन्तयन्
नामानि रूपाणि च मंगलानि ते ।
क्रियासु यस्त्वच्चरणारविन्दयो-
राविष्टचेता न भवाय कल्पते

भागवत पु0, 10/2/37

निबन्ध ग्रन्थों के साक्ष्य- (क) प्राचीन बल्लाल सेन, हेमाद्रि, मध्वाचार्य, रघुनन्दन भट्ट जैसे निबन्धकारों ने भागवत के नाम से जितने उद्धरणों का समावेश अपने ग्रन्थों में किया है उनमें से एक भी श्लोक भागवत के अतिरिक्त भागवत नामधारी किसी अन्य पुराण ग्रन्थ में नहीं पाया जाता[1]

(ख) बल्लाल सेन अपनी रचना "दानसागर" में भागवत से कोई श्लोक उद्धृत नहीं करते। क्योंकि इस पुराण के किसी भी अध्याय में दान का वर्णन नहीं है। वास्तव में वर्तमान में कोई भी अध्याय 9/29 में दान का वर्णन है। देवी भागवत "भागवत" नहीं है जिसको बल्लाल सेन पुराणों की तालिका में रखते हैं। बल्लाल सेन कई श्लोकों को कालिका पुराण से उद्धृत किया है और उसमें उन्होंने स्पष्टतः उसके नाम का भी उल्लेख किया है। परन्तु इन सब बातों के होते हुये भी इस पुराण को भागवत पुराण नहीं कहा जा सकता है। बल्लाल सेन पुनः कुछ ऐसे पुराणों की चर्चा करते हैं जो तांत्रिक मत से प्रभावित है। बल्लालसेन की दृष्टि में श्रीमद्भागवत ही वास्तव में भागवत पुराण है, क्योंकि स्पष्टतः इसमें दान विधि का प्रतिपादन नहीं मिलता। देवी भागवत का भागवत शब्द से संकेत इन्हें अमान्य है क्योंकि देवी भागवत में दान सम्बन्धित एक सम्पूर्ण अध्याय ही लिखा गया है।[2]

विद्वानों के विचार:— प्रस्तुत प्रसंग में जिन विद्वानों ने अपने विचार व्यक्त किये हैं उनमें राजेन्द्र चन्द्र हाजरा, आचार्य बलदेव उपाध्याय तथा

1- हाजरा, स्टडीज इन दि पुराणिक रेकर्ड्स आन हिन्दू राइट्स एण्ड कस्टम्स, पृ० 44

2- हाजरा, वही, पृ० 44

निर्मलचन्द्र सान्याल के नाम विशेषतया उल्लेखनीय हैं। हाजरा महोदय का पहला तर्क अल्बरूनी द्वारा दिये गये विवरण पर आधारित है। अल्बरूनी ने अपने विवरण में पुराणों की दो तालिकाओं को प्रस्तुत किया है। उन्होंने एक तालिका के विषय में कहा है कि विष्णु पुराण में पुराणों की एक भिन्न तालिका मिलती है जिसमें ब्रह्म, पद्म, विष्णु शिव, भागवत तथा वासुदेव का उल्लेख है। देवी भागवत का उल्लेख नहीं मिलता है। वासुदेव शब्द का तात्पर्य अल्बरूनी ने "वैष्णव" भागवत से लगाया है।[1] इससे प्रतीत होता है कि भागवत की तिथि अल्बरूनी के भारत आने के पहले की है। इस लिए भागवत की तिथि आठ सौ शती ई० के बाद की नहीं हो सकती।[2] इनका दूसरा तर्क यह है कि भागवत पुराण में देवी भागवत का उल्लेख नहीं है, परन्तु देवी भागवत में श्रीमद्भागवतका प्रसंग मिलता है। इससे श्रीमद्भागवत की प्राचीनता सिद्ध होती है। इनका तीसरा तर्क यह है कि अठारह पुराणों में "भागवत" का जो निर्देश मिलता है उसके विषय में स्वयं शाक्त मतैक्य नहीं हैं। कुछ लोग कालिका पुराण को ही इस नाम से उल्लिखित करते हैं तो दूसरे लोग "देवी भागवत" को। इस प्रकार शाक्तों में अनेक मतों के कारण यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि वैष्णव भागवत की प्रतिष्ठा से व्यग्र होकर शाक्त लोग अपने लिए अनेक शाक्त ग्रन्थों को "भागवत" का गौरव प्रदान करने के लिए लालायित थे।[3]

आचार्य बलदेव उपाध्याय ने श्री मद्भागवत को भागवतसिद्ध करने के लिए निम्नांकित तर्क प्रस्तुत किये हैं। उनका पहला तर्क सात्विक पुराणों पर आधारित है।

1- साचो, अल्बरूनीज इण्डिया, भाग । पृ० 13।

2- हाजरा, वही, पृ० 54

3- हाजरा, वही, पृ० 52, द्रष्टव्य, बलदेव उपाध्याय, पुराण-विमर्श, पृ० 116

उनका कथन है कि पद्मपुराण में सात्विक पुराणों के अन्तर्गत विष्णु, नारद, गरूड, पद्म तथा वराह के साथ भागवत का भी निर्देश है।[1] गरूड पुराण में सात्विक पुराणों को श्रेणियों उत्तम, मध्यम तथा अधम की ओर संकेत किया गया है। मत्स्य तथा कूर्म के "सत्वाधम" वायु को सर्वोत्तम पुराण माना गया है।[2] पुराणों की सात्विकता की कसौटी क्या है? इसके विषय में गरूड और कूर्म पुराणों की राय है कि जिन पुराणों में विष्णु का महात्म्य विस्तार में वर्णित है उन्हें सात्विक कहा जाता है।[3] इस कसौटी पर कसने से देवी भागवत सात्विक पुराण की कोटि में नहीं आता। इसमें विष्णु के चरित का वर्णन न होकर देवी की महिमा का वर्णन मिलता है। इसके विपरीत श्रीमदभागवत के प्रत्येक स्कन्ध में विष्णु के ही यश एवं उनके क्रिया कलापों का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। इस आधार पर श्री मद्भागवत को ही पुराण की कोटि में रखा जा सकता है। इनका दूसरा तर्क यह है कि अन्य पुराणों में जगह-जगह भागवत का वैशिष्ट्य तथा लक्षण का निर्देश मिलता है। मत्स्य[4] तथा वामन[5] पुराण में निर्दिष्ट लक्षणों के समन्वय पर भागवत के तीन वैशिष्ट्यों की ओर आलोचकों का ध्यान आकृष्ट

1- वैष्णवं नारदीयं च तथा भागवतं शुभम् ।
गरूणं च तथा पाद्मं वाराहं शुभदर्शने ।।
सात्विकानि पुराणानि विज्ञेयानि शुभानिवै ।
पद्म पुराण,उपाध्याय द्वारा उद्धृत, वही,पृ० 110

2- सात्वाधमें मात्स्य-कौर्में समाहुर्वायं चाहु: सात्विकं मध्यमं च ।
विष्णो: पुराणं भागवतं पुराणं सत्वोत्तमे गरूणं चाहुरार्या: ।।
उपाध्याय द्वारा उद्धृत,वही,पृ० 110

3- अनन्यानि विष्णो:प्रतिपादकानि।
सर्वाणि तानि सात्विकानीति चाहु: ।
सात्विकेषु पुराणेषु महात्म्य मधिकं हरे: वामन पु०,उपाध्याय द्वारा उद्धृत,वही

4- मत्स्य पु०, 53·20

5- हयग्रीव- ब्रह्म विद्या यत्र वृत्र वधस्तथा ।
गायत्र्या च स समारभ्यतद वै भागवतं विदु:।।
वामन पु०, उपाध्याय द्वारा उद्धृत, वही

होता है- (क) वृत्र के बध का प्रसंग (ख) हयग्रीव ब्रह्मविद्या का विवरण (ग) गायत्री से समारम्भ।

(क) वृत्र बध का प्रसंग देवी भागवत तथा श्री मद्भागवत दोनों में मिलता है। श्रीमद्भागवत में यह प्रसंग विस्तार में वर्णित है।[1]

(ख) वामन पुराण में विवेचित भागवत लक्षण में हयग्रीव ब्रह्मविद्या का वर्णन मिलता है। भागवत के अनुसार छठें स्कन्ध के अध्याय आठवें में वर्णित "नारायण कवच" ही पूर्वोक्त "हयग्रिव ब्रह्म विद्या" है। इस नारायण कवच के स्वरूप तथा मन्त्रों का विस्तृत विवरण भागवत के छठे स्कन्ध के आठवें अध्याय में है। भागवत में इस कवच का उपदेश वृत्रासुर के बध के अवसर पर दिया गया है। वृत्रासुर आख्यान का वर्णन देवी भागवत में भी कई अध्यायों में मिलता है।[2] परन्तु दोनों में अन्तर यह है कि देवी भागवत के अनुसार वृत्र फेन के द्वारा मारा गया जिस में पराशक्ति ने प्रवेश कर उसे शक्तिसम्पन्न बनाया था। अतः वृत्र वध में पराशक्ति का विशेष हाथ है।[3] श्रीमद्भागवत के इसी प्रसंग में नारायण कवच का उपदेश तथा शक्ति सम्पन्न इन्द्र के द्वारा वृत्र वध का स्पष्ट वर्णन है। देवी भागवत में इसका विस्तृत विवेचन पाया जाता है।

(ग) गायत्री से समारम्भ :- मत्स्य तथा वामन पुराणों में उल्लिखित गायत्री समारम्भ नामक भागवत वैशिष्ट्य मोटे तौर से देखने से देवी भागवत तथा

1- द्रष्टव्य, देवी भागवत, 6/2-6 तथा श्रीमद्भागवत, 6/9-14

2- द्रष्टव्य, स्कन्ध 6, अध्याय 2/6

3- देवी भागवत, 6/6/67

श्रीमद्भागवत दोनों में ही दिखाई देता है। क्योंकि दोनों ही पुराणों के प्रथम मांगलिक श्लोक गायत्री मंत्र में आने वाले कुछ शब्दों अथवा उनके पर्यायों का प्रयोग करते हैं। किन्तु जैसा कि उपाध्याय जी ने दिखाया है देवी भागवत धीमहि और प्रचोदयात पदों का प्रयोग गायत्री मंत्र का अनुसरण करते हुये अवश्य करता है परन्तु, इन शब्दों के प्रयोग के वावजूद देवी भागवत के प्रथम मांगलिक श्लोक की समानार्थकता गायत्री मंत्र के साथ नहीं पाई जाती इसके विपरीत देवी भागवत का जो प्रथम श्लोक है वह अर्थत: गायत्री मंत्र का समानार्थक है और विस्तार से उस अर्थ का प्रतिपादन करता है अत: उनके मत में "गायत्र्या समारम्भ:" वैशिष्ट्य जितना श्रीमद्भागवत पर घटित होता है उतना देवीभागवत पर नहीं। अत: देवी भागवत की अपेक्षा श्रीमद्भागवत को ही मूल भागवत पुराण होने का श्रेय मिलना चाहिये।[1]

इनका तीसरा तर्क निबन्ध ग्रन्थों के साक्ष्य पर आधारित है। जिसका वर्णन पूर्व पृष्ठों में किया जा चुका है।[2] आचार्य उपाध्याय का चौथा तर्क यह है कि श्री मद्भागवत में देवी भागवत का कहीं भी उल्लेख नहीं है। परन्तु देवी - भागवत के विषय में ऐसा नहीं कहा जा सकता। यह श्री मद्भागवत से भलीभांति परिचय रखता है। देवी भागवत का आठवां स्कन्ध जिस में भूगोल का विस्तृत विवेचन है, श्रीमदभागवत के पांचवें स्कन्ध का अक्षरश: अनुकरण है। अन्तर केवल इतना है कि श्रीमद्भागवत वैज्ञानिक विषयों के वर्णन के लिए गद्य माध्यम का

1- द्रष्टव्य, बलदेव उपाध्याय, पुराण विमर्श, पृ० 110

2- द्रष्टव्य, पृष्ठांक, 78

आश्रय लेता है और देवी भागवत पद्य का माध्यम अपनाता है। उदाहरणार्थ देवी भागवतके आठवें स्कन्ध के ग्यारहवें अध्याय में भारतवर्ष का वर्णन है। यह अक्षरशः श्री मद्भागवत के पाँचवें स्कन्ध के उन्नीसवें अध्याय में विवेचित है। भुवन कोष के वर्णन के लिए भी यही रीति अपनाई गई है। इससे यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि[1] देवी भागवत श्रीमदभागवत से परिचित ही नहीं अपितु उसका ऋणी भी है। इनका पाँचवा तर्क श्रीमदभागवत तथा देवी भागवत में वर्णित शुकदेव का चरित से सम्बन्धित है। शुकदेव का चरित दोनों में पृथक रूप में वर्णित है। श्रीमद्भागवत में शुकदेव ब्रह्मचारी के रूप में चित्रित किये गये है जब कि देवीभागवत में उनके गार्हस्थ्यधर्म के ग्रहण करेन का विस्तृत वर्णन मिलता है। यह वर्णन अन्तरकालीन प्रतीत होता है क्योंकि गार्हस्थ्य धर्म की महिमा का प्रदर्शन भारतीय समाज की प्रतिष्ठा के लिए नितान्त आवश्यक समझने पर किया गया।[2]

श्रीमद्भागवत महा पुराण है या देवीभागवत, इस प्रश्न को लेकर विद्वानों के बीच विवाद है। हाजरा ने श्रीमद्भागवत को महापुराण सिद्ध करने की चेष्टा की है। जबकि निर्मलचन्द्र सान्याल ने हाजरा के मतों का खण्डन कर के देवी भागवत बताने का प्रयास किया है। किन्तु दोनों विद्वानों द्वारा उपस्थित किये गये तर्कों की समीक्षा करने के उपरान्त हाजरा का कथन ही अधिक उपयुक्त और तर्कसंगत प्रतीत होता है। सान्याल द्वारा उपस्थित किया गया उनका खण्डन

1- उपाध्याय, वही, पृ0 115

2- उपाध्याय, वही, पृ0 116

उचित नहीं कहा जा सकता। उदाहरण के लिए सान्याल के द्वारा उपस्थित किये गए कुछ तर्कों की समीक्षा निम्न लिखित है- (1) अल्बरूनी द्वारा दी गई महापुराणों की सूची में भागवत का नाम आने से हाजरा ने यह निष्कर्ष निकाला था कि यह भागवत वैष्णव भागवत ही रहा होगा, देवी भागवत नहीं। हाजरा के निष्कर्ष का आधार सम्भवतः अल्बरूनी के समय के भारत में वैष्णव धर्म के प्रचलन की प्रधानता का तथ्य रहा होगा। जिस की ओर अल्बरूनी के ग्रन्थ का अनुवाद करने वाले एडवर्ड सखाऊ ने भी संकेत किया था। किन्तु आश्चर्य की बात है कि सखाऊ के कथन को जो अल्बरूनी के समय में शैवधर्म की अपेक्षा वैष्णव धर्म के प्रचलन की प्रधानता घोषित करता है। सान्याल[1] ने हाजरा के मत का खण्डन माना है। सम्भवतः उनकी इस मान्यता के पीछे यह धारणा थी। वैष्णव भागवत के प्रणयन के बाद अल्बरूनी को सूचना देने वाले लोगों ने उसे यह समझाया होगा कि महापुराणों की सूची में आने वाला भागवत वैष्णव भागवत ही है, देवी भागवत नहीं। जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इसके पहले महापुराणों की सूची के भागवत से तात्पर्य देवी भागवत से ही समझा जाता रहा होगा, वैष्णव भागवत से नहीं किन्तु अल्बरूनी के साक्ष्य का यह विवेचन पूर्वाग्रहग्रस्त है क्यों कि अल्बरूनी के समय में वैष्णव धर्म के प्रचलन की प्रधानता से उद्भूत वैष्णव भागवत की प्रधानता अल्बरूनी की सूची में उल्लिखित भागवत को वैष्णव भागवत तो सिद्ध कर देता है लेकिन अल्बरूनी से पूर्व महापुराणों की सूची में आने वाला भागवत देवी भागवत ही रहा होगा, इस अनुमान को सिद्ध नहीं करता। अतः जब तक इस अनुमान को सिद्ध करने वाले स्वतंत्र प्रमाण न उपस्थित

1- निर्मल चन्द्र सान्याल का निबन्ध," दि देवी भागवत ऐन्ड दि रीयल भागवत," पुराण-पत्रिका, भाग 11, अंक 1, जनवरी 1969, पृ0 156

किये जाय केवल अनुमान के आधार पर देवी भागवत को अल्बरूनी के सूचो का भागवत, महापुराण नहीं माना जा सकता।

{2} हाजरा[1] ने इस तथ्य पर कि भागवत में देवो भागवत का कोई उल्लेख नहीं मिलता जब कि देवो भागवत में भागवत का उल्लेख उपपुराणों को सूची में हुआ है, यह स्वाभाविक निष्कर्ष निकाला था कि देवो भागवत को रचना भागवत के बाद हुई, और भागवत को अपेक्षा अपनी उच्चता सिद्ध करने के लिए देवो भागवत ने भागवत को उपपुराणों को सूची में डाल दिया है। सान्याल[2] द्वारा उपस्थित इस निष्कर्ष का खण्डन यह प्रदर्शित करने का प्रयास करता है कि पुराणों में पाई जाने वाली महापुराणों और उपपुराणों को सूचियाँ बाद में जोड़ी गयीं और उनके मूल कलेवर का अंग नहीं थीं। लेकिन यदि उनको इस बात को मान भी लिया जाय तो भी हाजरा के निष्कर्ष में कोई अन्तर नहीं पड़ता। क्योंकि देवी भागवत में पाई जाने वाली उप पुराणों को सूची यदि बाद में भी जोड़ी गई होती तो देवी को सर्वोच्चता में विश्वास करने वाले वैष्णव सम्प्रदाय में विश्वास करने वाले किसी व्यक्ति द्वारा ही जोड़ी गई होगी और उसमें भागवत को उपपुराणों की कोटि में रखकर निश्चित रूप से देवी भागवत को प्रधानता स्थापित की गई होती। ऐसी परिस्थिति में देवी भागवत को अपेक्षा भागवत को प्राचीनता का निष्कर्ष तो सन्देहास्पद हो सकता है किन्तु भागवत के ऊपर देवी भागवत की उत्कृष्टता स्थापित करने का प्रयास सन्देहास्पद नहीं कहा जा सकता। किन्तु देवी भागवत की अपेक्षा भागवत की प्राचीनता पर प्रश्न चिन्ह लगाने के लिए यह सिद्ध करना होगा कि देवो भागवत में उपपुराणों की सूची बाद में जोड़ी गई और मूलग्रन्थ

1-हाजरा, वही, पृ0 53

2- सान्याल, वही पृ0, 156

का अंग नहीं थी, केवल अनुमान से ही काम नहीं चलेगा।

§3§ देवी भागवत की अपेक्षा भागवत की प्राचीनता सिद्ध करने के लिए हाजरा ने भागवत को पुराणों के पंचलक्षण के साथ निकटता पर बल दिया है जो कि देवी भागवत में नहीं पाई जाती।[1] सान्याल[2] ने इस तर्क के खण्डन में केवल इतना कहा है कि वामन और वराह जैसे पुराणों में भी पंच लक्षण का निर्वाह नहीं पाया जाता और फिर भी ये ग्रन्थ महापुराण की कोटि में रखे जाते हैं। किन्तु इन दो पुराणों के सम्बन्ध में पाया जाने वाला यह अपवाद इस सामान्यीकरण का आधार नहीं बनाया जा सकता कि जिस भी पुराणमें पंचलक्षण का निर्वाह नहीं है वह अनिवार्यतः महापुराण ही होगा।

पूर्व पृष्ठों में विवेचित श्रीमदभागवत को "भागवत" कहा जाय अथवा देवी भागवत को, इस सन्दर्भ में आचार्य बलदेव उपाध्याय, हाजरा, तथा रमेशचन्द्र सान्याल के विचारों का यदि अवलोकन किया जाय तो यह सुस्पष्ट परिलक्षित होता है कि सान्याल महोदय के तर्कों की अपेक्षा आचार्य उपाध्याय तथा हाजरा के तर्क अत्यधिक ठोस एवं माननीय हैं। सामान्य निष्कर्ष यही निकलता है कि उपलब्ध साक्ष्य,उन का निस्पक्ष मूल्यांकन तथा एक व्यवस्थित रूपरेखा के अनुसार उनकी पर्यालोचना श्री के महापुराणत्व को सिद्ध कर सकते हैं। पूर्व पृष्ठों के विवेचन के आधार पर विष्णु पुराणकी तिथि विषयक समीक्षा का यदि अवलोकन किया जाय तो यह स्पष्ट होता है कि भागवत पुराण विष्णु पुराण की अपेक्षा अपर-कालीन पुराण संरचना है। जिन आख्यानों के आधार पर विष्णु पुराण

1- हाजरा, वही, पृ० 53

2- सान्याल, वही पृ० 155

की तिथि निर्धारित करने की चेष्ठा की गई है उन में कृष्ण आख्यान, भरत आख्यान, तथा मायामोह आख्यान विशिष्ट है। उक्त आख्यानों का वर्णन भागवत पुराण में भी प्राप्य है और इन्हीं आख्यानों की तुलनात्मक समीक्षा के आधार पर विष्णु तथा भागवत पुराण की तिथि निर्धारित करने का प्रयास किया गया है। पूर्व पृष्ठों में कृष्ण आख्यान में उनके अवतार के बारे में इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि विष्णु पुराण में कृष्ण, विष्णु के अल्पांश कहे गये हैं और भागवत में कृष्ण को विष्णु का अंशावतार कहा गया है। इस आधार पर विद्वानों ने विष्णु पुराण को भागवत की अपेक्षा पूर्वकालीन रचना बतलाया है। साथ ही साथ पूर्व वर्णन में विष्णु तथा भागवत में विवृत वैष्णव अवतार विषयक तुलनात्मक समीक्षा के आधार पर विष्णु पुराण को भागवत की अपेक्षा उत्तरकालीन पुराण कृति माना गया है। पूर्व पृष्ठों में विष्णु के अवतार संख्या का उल्लेख नहीं किया गया है। अग्रिम पृष्ठों में इसका विस्तृत विवेचन किया जायगा। यहाँ इस बात का उल्लेख करना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है कि विष्णु पुराण में विष्णु के नौ अवतारों का उल्लेख है और भागवत में उनके चौबीस अवतार बतलाये गये हैं। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि विष्णु पुराण भागवत की अपेक्षा पूर्वकालीन रचना है। वास्तविकता यह है जैसा कि निर्दिष्ट किया जा चुका है, आख्यानों का मूलरूप विष्णु पुराण में सुरक्षित है उन्हें भागवत में विस्तार प्रदान किया गया है।

कृष्ण आख्यान के अतिरिक्त विष्णु पुराण में विवृत भरत तथा मायामोह आख्यान की तुलनात्मक समीक्षा के आधार पर इस ग्रन्थ की तिथि निर्धारित करने का प्रयास किया गया है। भरत आख्यान का वर्णन भागवत पुराण में विस्तार में पाया जाता है। पर, विष्णु पुराण में संक्षेप में वर्णित है। विष्णु पुराण में वर्णन

क्रमबद्धता में दोष दिखाई पड़ता है। भागवत में वर्णन क्रमबद्धता में कोई दोष नहीं दिखाई पड़ता है। परन्तु भागवत में इन आख्यानों का सम्बन्ध है दोनों पुराणों को निहित शैली योजना के आधार पर विष्णु पुराण उत्तरकालीन रचना प्रतीत होती है। पूर्व पृष्ठों में माया मोह आख्यान के आधार पर विष्णु पुराण को तिथि विषयक तुलनात्मक समीक्षा में यह दिखाया गया है कि विष्णु पुराण में मायामोह आख्यान का वर्णन एक पूरे अध्याय में मिलता है, जब कि भागवत में समस्त विवरण केवल पाँच श्लोकों में संक्षिप्त रूप में वर्णित है। भागवत में आख्यान की सरलता पुराण रचना के पहले स्तर को व्यक्त करता है। विवरण की सरलता के आधार पर भागवत का सरल विवरण विष्णु पुराण के विवरण की अपेक्षा प्राचीन है। आख्यानों का मूल स्वरूप विष्णु पुराण में प्राप्त होता है जो इस की प्राचीनता को व्यक्त करता है। मुख्यतया भागवत की अपेक्षा विष्णु पुराण पूर्व कालीन रचना है। पर, विष्णु पुराण के प्रक्षिप्तांश इसकी पूर्वकालीनता को सन्दिग्ध कर देते हैं। विष्णु पुराण में मायामोह आख्यान का विस्तृत विवेचन मिलना जोइस के निहित इस कथानक की उत्तरकालीनता का परिचायक है और भागवत पुराण में प्रस्तुत आख्यान का संक्षेप में पाया जाना इस ग्रन्थ के इस कथानक की पूर्वकालीनता का द्योतक है।

दोनों पुराणों के सामान्य तिथि विषयक आलोचना पर निम्नांकित तीन सहज तथ्य प्रकाशित हो जाते हैं:-

(1) आख्यानों का प्रारम्भिक एवं मूल स्वरूप विष्णु पुराण में प्राप्त होता है। प्रस्तुत ग्रन्थ पौराणिक वाङ्मय की आदि रचनाओं में से एक है। अतएव ऐसी स्थिति में इस ग्रन्थ में आख्यानों के मौलिक स्वरूप का उपलब्ध होना एक सहज सी बात है। पौराणिक कलेवर के निर्माण का सूत्रपात आख्यानों के समावेश के द्वारा ही हुआ था। स्वयं विष्णु पुराण में ही इस बात की ओर संकेत है कि

जिस समय पुराण को संहिता का रूप प्रदान किया गया अर्थात् इसे एक संग्रहीत रूप दिया गया, आख्यानों का प्रमुख स्थान था। इस प्रकार विष्णु पुराण में प्रारम्भ से ही आख्यान का संकलन अथवा दूसरे शब्दों में आख्यानों के द्वारा पुराण का विस्तार स्वाभाविक था।

§2§ उक्त आख्यानों के माध्यम से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि प्रारम्भ में विष्णु पुराण भले ही साम्प्रदायिक आग्रह से मुक्त रहा होगा तथापि आगे चलकर साम्प्रदायिक प्रवृत्तियों के प्रबल होनेपर विष्णु पुराण में ऐसे आख्यानों का समावेश होने लगा जो प्रारम्भ में या तो इस में संकलित नहीं थे अथवा यदि ये संकलित भी थे तो उन्हें वह विस्तार और वह व्यापकता नहीं प्राप्त थी जो प्रारम्भ में वैष्णव परक परिवेश के लिए आवश्यक और अपेक्षित था। इस प्रकार की उत्तरकालीन संयोजना के कारण विष्णु पुराण अपने मौलिक स्तर से च्युत होने लगा और इसी नवीन संयोजना के कारण विष्णु पुराण के प्रारम्भिक कृतित्व पर व्याघात पहुँचने लगता है।

§3§ यह सही है कि अनेक दृष्टियों से विष्णु पुराण भागवत की अपेक्षा प्राचीन है तथापि इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता कि रचना शैली की जो समायोजना समग्र रूप में भागवत में दिखाई देती है वह विष्णु पुराण में सर्वथा अनुपस्थित है। जो साम्प्रदायिक आग्रह कहीं-कहीं विष्णु पुराण में दिखाई देता है वह भागवत में नहीं मिलता § ऐसी स्थिति में ऐसा निष्कर्ष निकालना अनुचित न होगा कि सामान्यतया विष्णु पुराण भागवत की अपेक्षा प्राचीन है। परन्तु उपर्युक्त विश्लेषण के आलोकमें विष्णु पुराण के कतिपय स्थल भागवत की रचना

काल की अन्तिम सीमा नवीं शताब्दी के बाद भी रखे जा सकते हैं।

सम्पूर्ण भागवत पुराण में आख्यानों, उपाख्यानों, कथाओं, एवं अन्तर्कथाओं की बहुलता है। परन्तु यहाँ पर कुछ विशिष्ट एवं रोचक आख्यानों का ही कथानक प्रस्तुत करना समीचीन प्रतीत होता है। जिनमें निम्नलिखित आख्यान विशेषतया उल्लेखनीय हैं- अजामिलोपाख्यान; 6/1, गजेन्द्र मोक्ष आख्यान; 8/9, त्रिशंकु और हरिश्चन्द्र की कथा; 9/7, चीर हरण आख्यान; 10/22 ।

अजामिलोपाख्यान- भागवत धर्म में भक्ति के जिस स्वरूप और प्रकार का विकास हुआ उस की अपनी कुछ महत्वपूर्ण विशेषतायें रही हैं जिसके आवरण में कभी तो उपदेशात्मक रूप में भारतीय मनीषियों ने अपने मन्तव्य को समझने और सुस्पष्ट करने का प्रयास किया है। इसी की अवतारणा उस पौराणिक आख्यान में हुई जिसे अजामिल के जीवन के साथ नि:स्यूत किया गया है। भारत में विकसित भक्ति परक विशेषताओं के अनुसार मनुष्य उनके उत्कृष्ट-निकृष्ट, धार्मिक5 अधार्मिक एवं पाप-पुण्य कर्मों के संघात से क्रियाशील रहता है। यदि वह पापों का दूसरे जन्म में प्रायश्चित न करले तो मृत्यु के पश्चात् उसे निश्चय ही अनेक यातनापूर्ण नरकों में जाना पड़ता है। इस लिए बड़ी सतर्कता के साथ मृत्यु के पहले ही पापों की गुरुता और लघुता पर विचार करके पापों से छुटकारा पाने के लिए समस्त साधनों का उपभोग करना चाहिये। पापों से छुटकारा पाने का सब से महत्वपूर्ण साधन भक्ति है। भागवत पुराण के विभिन्न स्थलों में भक्ति के सूत्र अपनी अनेक विशेषताओं के साथ पिरोये गये हैं। संसार में भक्ति का मार्गही सर्वश्रेष्ठ भय रहित एवं कल्याणकारी है। जिन्होने भगवान् के गुणों में अनुराग रखने वाले अपने मन रूपी मधुकर को भगवान श्री कृष्ण के चरण कमल के मकरन्द का एक बार पान करा दिया, वे स्वप्न में भी यमराज और उनके

पाशधारी यमदूतों से भयभीत नहीं होते, तथा नरक में दी जाने वाली कठोर यातनाओं से वंचित रहते हैं।

भागवत पुराण में अजामिलोपाख्यान विवरण निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया गया है- कान्यकुब्ज नगर (कन्नौज) में अजामिल नाम का एक दासी पति ब्राह्मण रहता था। दासी के सम्बन्ध से दूषित होने तथा सुमार्ग की ओर न होकर कुमार्ग की ओर प्रवृत्त होने के कारण उसका सदाचार विनष्ट हो चुका था। वह चोरी, लूट खसोट, धोखाधड़ी आदि निकृष्ट कर्मों द्वारा धन संचय कर दासी के बच्चों का पालन पोषण करता था। इस प्रकार उसकी आयु के अट्ठासी वर्ष बीत गये। बूढ़े, अजामिल के दश पुत्र थे। उनमें सब से छोटे का नाम "नारायण" था। अजामिल "नारायण" को सबसे अधिक प्यार करता था। एक दिन अजामिल "नारायण" के जीवन के विकास से सम्बन्धित साधनों के विषय में सोच ही रहा था कि तीन निशाचर जैसी आकृति वाले यमदूत उसे दिखाई दिये। अजामिल उन यमदूतों को देखकर भयभीत हो कर अपने पुत्र "नारायण" को ऊँचे स्वर में पुकारा। भगवान के पार्षदों ने देखा कि यह मरते समय हमारे स्वामी "नारायण" के नाम का कीर्तन कर रहा है। अत: वे अजामिल के पास उपस्थित हुये। उस समय यमदूत अजामिल के शरीर से उसके सूक्ष्म शरीर को खींच रहे थे। ऐसा देखकर भगवान् के पार्षदों द्वारा रोके जाने पर यमराज के दूतों ने उनसे कहा- धर्मराज की आज्ञा का निषेध करने वाले तुम लोग कौन हो? भगवान् के पार्षदों ने यमदूतों से यह सुनकर उनसे इस प्रकार कहा - धर्म का तत्व एवं लक्षण क्या है? यमदूतों ने धर्म के लक्षण और तत्व को बतलाते हुये कहा कि वेदों ने जिन धर्मों का विधान किया है, वे धर्म हैं और जिन का निषेध किया है, वे अधर्म हैं। वेद स्वयं भगवान्

के स्वरूप हैं। यमदूतों को ऐसी वाणी को सुनकर भगवान के पार्षदों ने कहा, तुम लोग अजामिल को छोड़ दो, क्यों कि इसने सम्पूर्ण पापों का प्रायश्चित कर लिया है और मरते समय भगवान् के नाम का उच्चारण किया है। हरिस्मरण ही हृदय शुद्धि का एक महत्वपूर्ण साधन है। जिस प्रकार जाने या अनजाने में ईंधन से अग्नि का स्पर्श हो जाने पर वह भस्म हो जाता है, उसी प्रकार भगवान् के नाम का कीर्तन करने से मनुष्य के सारे पाप भस्म हो जाते हैं। इस प्रकार भगवान् के पार्षदों ने भागवत धर्म की विशद व्याख्या प्रस्तुत कर दिया। भगवान् के पार्षदों ने अजामिल को यमदूतों के पाश से छुड़ाकर मृत्यु के मुख से छुड़ा लिया। कुछ काल के पश्चात् वे हरिद्वार चले गये। वहाँ भगवान् के मन्दिर में आसन लगाकर बैठ गये और भगवान् के नाम का उच्चारण करते लगे । कुछ ही क्षणों के पश्चात् अजामिल ने उन्हीं चार पार्षदों को देखा जिन्हें पहले देखा था, खड़े थे। अजामिल ने सिर झुका कर उन्हें नमस्कार किया। उन का दर्शन प्राप्त करने के पश्चात् उन्होंने उस तीर्थ स्थान में गंगा के तट पर अपना शरीर त्याग दिया और उसी क्षण भगवान् के पार्षदों के साथ स्वर्णिम विमान पर आरूढ़ होकर आकाश मार्ग से भगवान लक्ष्मीपति के निवास स्थान वैकुण्ठ को चले गये ।[1]

अजामिल से सम्बन्धित भागवतोक्त कथानक के आधार पर निम्नांकित उल्लेखनीय तत्वों को प्रस्तावित किया जा सकता है। इसमें सन्देह नहीं है कि अजामिल का आख्यान पौराणिक भक्ति के विकास का एक मधुमय निदर्शन है। पौराणिक धर्म का विकास वस्तुतः दो उद्देश्यों की पूर्ति के लिए हुआ था। एक तो वैदिक धर्म की रक्षा एक ऐसी शैली के अनुसार और एक ऐसी व्यवस्था के अनुसार कि उत्तरकालीन मान्यताओं के साथ उनका सामंजस्य पूर्णतया बैठ सके। वेद विरोधी धर्मों की प्रतिक्रिया के रूप में इस प्रकार की प्रक्रिया आवश्यक और

1- भागवत पु०, 6/1

अपेक्षित थी। उक्त आख्यान ने धर्म के निरूपण में वेदों को साक्ष्य माना है। दूसरे यह स्पष्ट है कि भागवतकार का उद्देश्य वैदिक धर्म को सुरक्षा रही होगी। दूसरे पौराणिक धर्म को जनमानस के लिए ग्राह्य बनाना जिस के लिए भगवान् का नाम संकीर्तन, तीर्थ यात्रा और तीर्थों की उपादेयता पर अधिक बल देना आवश्यक था। ऐसी ही स्थिति में पौराणिक धर्म सर्वजनीन और सुलभ बनने में समर्थ हो सकता था। इसके अतिरिक्त यहाँ इस बात का उल्लेख आवश्यक प्रतीत होता है कि प्रस्तुत कथानक में ब्राह्मण और दासी (शूद्र) का पारस्परिक सम्बन्ध निन्दित बताया गया है, जिस से स्पष्ट है कि पौराणिक धार्मिक व्यवस्था वर्ण व्यवस्था के अनुकूल और समस्तरीय परिस्थितियों में चल रही थी। इस आख्यान से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि भागवत के रचनाकाल को पौराणिक वाङ्मय के विकास के उस स्तर पर रख सकते है जब कि तीर्थों से सम्बन्धित स्थलों का पुराणों में समावेश हो रहा था। इसे भागवत की उत्तरकालीनता का परिचायक माना जा सकता है, जब कि पौराणि वाङ्मय पंच लक्षणों से दूर हट कर धार्मिक साहित्य का रूप धारण कर रहे थे। प्रस्तुत कथानक में हरद्वार तीर्थ के प्रसंग से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि यदि पूरे भागवत पुराण का नहीं तो कम से कम इस ग्रन्थ में विवेचित आख्यान की मौलिक रचना का क्षेत्र हरद्वार रहा होगा।

गजेन्द्र मोक्ष आख्यान- भागवत पुराण में उल्लिखित गजेन्द्र मोक्ष भक्ति परक आख्यानों का प्राण है। प्रस्तुत आख्यान में यह दिखाने की चेष्टा की गई है कि भगवान् अपने भक्तों का उद्धार किन-किन परिस्थितियों में किस-किस ढंग से करते हैं तथा किस प्रकार उन्हें मोक्ष प्रदान करते हैं। आख्यान का वर्णन निम्नलिखित शब्दों में किया जा सकता है- क्षीर सागर में दश हजार योजन ऊँचाई वाला त्रिकूट नाम का एक सुन्दर एवं श्रेष्ठ पर्वत था। रत्नों एवं विभिन्न

धातुओं को रंगविरंगी छटा से सुशोभित उस गिरि के शिखर समस्त दिशाओं को प्रकाशित कर रहे थे। उस पर्वत को तलहटी विभिन्न जंगली जानवरों के झुंडों से सुशोभित रहती थी। पर्वत के घोर जंगल में बहुत सी हथिनियों के साथ सरदार एक गजेन्द्र भी निवास करता था। एक दिन वह हथिनियों के बच्चों के साथ घूमते-घूमते बहुत दूर निकल गया। बड़े जोर को धूप थी इसलिए वह व्याकुल हो उठा। उसको तथा उसके साथियों को प्यास भी सताने लगी। बड़ी दूर से ही कमल के पराग से सुवासित वायु को गन्ध सूंघ कर वह उसी सरोवर को ओर चल पड़ा। प्यास से संतप्त वह थोड़ी देर में वेग से चलकर सरोवर के तट पर जा पहुंचा। अत्यन्त निर्मल एवं अमृत के समान मधुर जल का पान करने के पश्चात् गजेन्द्र न जल में स्नान करके अपनी थकान मिटाई। गजेन्द्र ज्यों ही इतना उन्मत्त हो रहा था, एक ग्राह ने क्रोध के वशीभूत हो कर उस का पैर पकड़ लिया। गजेन्द्र अपनी शक्ति के अनुसार बार-बार अपने को बलवान् ग्राह से छुड़ाने को कोशिशें की, परन्तु छुड़ा न सका। उसके साथी अन्य गज भी उस को छुड़ाने में असमर्थ ही रहे। अन्ततोगत्वा वह अपेन मन में इस प्रकार विचार करने लगा- जो अत्यन्त भयभीत होकर भगवान को शरण में चला जाता है उसे वे दयालु प्रभु अवश्य बचालेते हैं। इस लिए भगवान के नाम का उच्चारण करना चाहिए। इसी से हमारा कल्याण होगा। कुछ ही क्षणों के पश्चात् गजेन्द्र भगवान् विष्णु की इस प्रकार वन्दना करता है- जो जगत के मूल कारण और सबके हृदय में पुरूष रूप में विराजमान् समस्त जगत के एक मात्र स्वामी इस इस संसार में चेतना के विस्तार के कारण हैं वे ही इस में व्याप्त हो कर स्वयं इस के रूप में प्रकट हो रहे हैं। उन की मैं शरण ग्रहण करता हूं। गजेन्द्र को इस प्रकार करूण वाणी को सुनकर गरूण पर आरूढ़ होकर चक्रधारी भगवान् ने वहां के लिए प्रस्थान किया। जहां

गजेन्द्र अत्यन्त संकट में पड़ा हुआ था। भगवान् वहाँ पहुँच कर गजेन्द्र को अत्यन्त पीड़ित देखकर अपने चक्र से ग्राह का मुँह फाड़कर गजेन्द्र को छुड़ा लिया। वहाँ पर उपस्थित देवगण भगवान् के इस कार्य की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुये पुष्पों की वर्षा करने लगे। इधर वह ग्राह परम आश्चर्यमय दिव्य शरीर से सम्पन्न हो गया। भगवान् श्री हरि ने गजेन्द्र का उद्धार करके उसे अपना पार्षद बनाकर अपने साथ लेकर अपने अलौकिक धाम को चले गये।[1]

भागवत पुराण में विवेचित उपर्युक्त गजेन्द्र मोक्ष आख्यान प्रस्तुत पुराण में विवृत अजामिलोपाख्यान के समस्तरीय है। जिस प्रकार अजामिलापाख्यान में अजामिल, यमदूतों द्वारा भयभीत किये जाने पर अपने पुत्र "नारायण" के नाम के एक मात्र उच्चारण करने से भगवान् का पार्षद् बनकर विष्णु लोक चला गया उसी प्रकार गजेन्द्र को भी मोक्ष प्राप्त हुआ। दोनों आख्यान भक्तिपरक हैं। दोनों में भगवान के प्रति अटूट भक्ति की झाँकी-झाँकी प्रस्तुत की गई है। भगवान ही प्रत्येक प्राणी की उत्पत्ति, रक्षा और संहार के कारण हैं। इस प्रकार भागवत में वर्णित गजेन्द्र मोक्ष आख्यान भक्ति से ओत प्रोत है। प्रस्तुत आख्यान में निरूपित भक्ति का स्वरूप वैष्णव धर्म के विकास में सहायक सिद्ध हुआ होगा।

राजा त्रिशंकु और हरिश्चन्द्र की कथा -- त्रिशंकु के पुत्र का नाम हरिश्चन्द्र था। हरिश्चन्द्र संतान हीन थे। इससे वे बहुत उदास रहा करते थे। नारद जी की महती कृपा से उन का उपदेश ग्रहण कर वे वरुण देवता की शरण में गये और उनसे एक पुत्र प्राप्ति की प्रार्थना की, साथ ही साथ इन्होंने यह भी कहा कि यदि मेरे वीर पुत्र होगा तो मैं उसी से आप का यजन करूँगा। हरिश्चन्द्र की ऐसी विनय वाणी को सुनकर वरुण ने उनकी प्रार्थना को स्वीकार किया । कुछ काल के

1- भागवत पु0, 8/2

पश्चात् वरूण की कृपा से हरिश्चन्द्र को रोहित नाम का पुत्र हुआ। पुत्र के पैदा होते ही वरूण ने आकर हरिश्चन्द्र से अपने यज्ञ के सम्पादन के विषय में कहा। हरिश्चन्द्र ने कहा- जब यह यज्ञ पुरूष (रोहित) दश दिन से अधिक आयु का हो जायेगा, तब यज्ञ के योग्य होगा। दश दिन बीतने के पश्चात् वरूण ने पुन: हरिश्चन्द्र से अपना यज्ञ करने को कहा। हरिश्चन्द्र ने कहा- जब आपके यज्ञ पशु के मुँह में दाँत निकल आयेंगे, तब वह यज्ञ के योग्य होगा इस प्रकार वरूण द्वारा बारम्बार हरिश्चन्द्र से यज्ञ के विषय में पूछते हुये काफी समय बीत गये हरिश्चन्द्र वरूण की बात बार-बार टालते हो गये। इस का कारण यह था कि हरिश्चन्द्र पुत्र प्रेम में इतना अनुरक्त हो चुके थे कि पुत्र की अनुपस्थिति में उनका जीना असम्भव था। पुत्र रोहित को जब इस बात का पता चला कि मेरे पिता जी मेरा बलिदान करना चाहते हैं, वह अपने प्राणों की रक्षा के निमित्त वन में चला गया। कुछ काल के पश्चात् रोहित को यह ज्ञात हुआ कि वरूण देवता मेरे पिता जी से रूष्ट एवं असंतुष्ट हैं जिसके कारण वे महोदर रोग से अत्यन्त पीड़ित हो रहे हैं। कुछ काल के पश्चात् रोहित ने अपने घर की ओर प्रस्थान किया। इन्द्र ने रोहित के प्रति अपना मन्तव्य व्यक्त करते हुये कहा- रोहित यज्ञ पशु बन कर मरने की अपेक्षा तो पवित्र तीर्थों में भ्रमण करना ही श्रेयस्कर है। इस प्रकार रोहित इन्द्र के विचारों से सहमत होकर छ: वर्ष तक वन में ही भ्रमण करते रहे। सातवें वर्ष नगर को लौटते समय उसने अजीगर्त से उन के पुत्र शुन:शेप को यज्ञ पशु बनाने के लिए खरीद लिया और उसे अपने पिता को सौंप कर उनके चरणों में नमस्कार किया। परमयशस्वी राजा हरिश्चन्द्र ने महोदर रोग से छुटकारा प्राप्त कर पुरूषमेध यज्ञ द्वारा वरूणादि देवताओं का यजन किया। यज्ञ के शुभ अवसर पर इन्द्र द्वारा हरिश्चन्द्र को एक स्वर्णिम रथ प्राप्त हुआ ।

हरिश्चन्द्र को अपनी पत्नी सहित सत्य में दृढता पूर्वक स्थित देख कर विश्वामित्र अत्यन्त प्रसन्न हुये। उन्होंने ऐसे ज्ञान का उपदेश दिया जिस का कभी नाश नहीं होता। उस उपदेश के द्वारा हरिश्चन्द्र सुख को अनुभूति का परित्याग कर समस्त बन्धनों से मुक्त हो कर वे अपने उस स्वरूप में स्थित हो गये, जो न तो वर्णनीय है और न उस के सम्बन्ध में किसी प्रकार का अनुमान ही किया जा सकता है।[1]

भागवत पुराण में विवेचित उपर्युक्त आख्यान को यदि अंतरंग समीक्षा की जाय तो यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि प्रस्तुत आख्यान में पौराणिक & धार्मिक व्यवस्था, वर्णाश्रम व्यवस्था के अनुकूल और समस्तरीय परिस्थितियों में चलती हुई दिखलाई पड़ती है। प्रस्तुत आख्यान में गार्हस्थ्य जीवन पर विशेष बल देते हुये पुत्र के प्रति पिता के अटूट वात्सल्य का निदर्शन प्रस्तुत किया गया है। उक्त आख्यान में यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि वैदिक पुरुषमेध स्मृति में जीवित था। पुराणकार धर्म यज्ञों के प्रति श्रद्धालु हो नहीं है अपितु इसके द्वारा व्यवहार शीलता पर भी बल दिया गया था। पर पौराणिकों न इस के विपरीत तीर्थयात्रा को ही अधिक महत्वपूर्ण बताया है। इससे यह ज्ञात होता है कि पौराणिक धर्म में प्रमुख स्थान तीर्थ यात्रा को मिलता था तथा लोक धर्म का आचरण की प्रवृत्ति करने के साथ-साथ जनमानस तीर्थ यात्रा की ओर उन्मुक हो रहा था। जनमानस को छलने वाली जिन याज्ञिक क्रियाओं का खण्डन वेद विरोधी धर्मों ने किया था उसका उद्देश्य केवल यज्ञों का ही परिहार करना था जिसकी प्रतिष्ठा यज्ञों में सन्निहित थी। इसके विपरीत पौराणिकों का लक्ष्य जनमानस के अनुकूल रहने वाले

1- भागवत पु0,9,7

धार्मिक क्रिया कलापों में तथा विधानों में संतुलन एवं समानता स्थापित करना था। इस प्रकार उस समय वर्णाश्रम व्यवस्था सुदृढ़ हो रही थी, और पौराणिक धर्म विकास के पथ पर अग्रसर हो रहा था।

चीर हरण आख्यान-- भगवान् श्री कृष्ण लीला पुरुषोत्तम हैं वे चराचर प्रकृति के एकमात्र अधीश्वर हैं, समस्त क्रियाओं के कर्ता, भोक्ता एवं साक्षी हैं। श्री कृष्ण की दिव्य मधुरमयी लीलाओं का रहस्य संसार के बहुत थोड़े लोग ही जानने में समर्थ हैं। जिस प्रकार भगवान् ज्ञानमय हैं उसी प्रकार उनकी लीला ज्ञानमयी ही होती है। भागवत पुराण में श्री कृष्ण की जीवन सम्बन्धी न जाने कितनी लीलाओं का वर्णन प्राप्त है परन्तु, उनमें रास तथा चीरहरण लीला विशेष उल्लेखनीय है। चीरहरण आख्यान का प्रसंग भागवत पुराण में निम्नांकित शब्दों में व्यक्त किया गया है- हेमन्त के मार्ग शीर्ष में व्रजकुमारियाँ कात्यायनी देवी की पूजा और व्रत में रत थीं। कुमारियाँ पूर्व दिशा के लाल क्षितिज का अवलोकन कर प्रातःकाल ही यमुना जल में स्नान कर लेती थीं और तट पर देवी की बालुकामयी मूर्ति बनाकर आवश्यक पूज्य सामग्री द्वारा उनकी पूजा करती थीं। नित्य प्रति की भाँति एक दिन कुमारियों ने यमुनाजी के तट पर अपने वस्त्रों को उतार कर भगवान श्रीकृष्ण के गुणों का गान करती हुयीं आनन्दपूर्वक जलक्रीडा करने लगीं। उधर श्रीकृष्ण भगवान उनके समस्त वस्त्र उठाकर कदम्ब के वृक्ष के ऊपर चढ गये। कुछ ही क्षणों के पश्चात् श्रीकृष्ण अपने हाथों में लिए हुये वस्त्रों की ओर संकेत करते हुए कुमारियों को अपने-अपने वस्त्रों को लेने के लिए हँसते हुये अपना मन्तव्य व्यक्त किया। भगवान् श्रीकृष्ण की हँसी भरी बातों को सुनकर गोपियों का हृदय प्रेम से गद्गद् हो गया। वे बार-बार अपने वस्त्रों के लिए प्रार्थना करती हैं

तथा अपने को उनकी दासी स्वीकार करती हुई उनकी सराहना करती हैं। श्रीकृष्ण अत्यन्त प्रसन्न हो कर कहते हैं कि व्रजकुमारियों तुम लोगों ने जो वस्त्रहीन होकर जल में स्नान किया है, इससे जलके अधिष्ठात देवता वरुण तथा यमुना जी का अपमान हुआ है। अत: इस दोष की शांति के लिए हाथ जोड़ कर उनसे प्रणाम करो, फिर अपने अपने वस्त्र ले जाओ। कुमारियों ने अपने व्रत में त्रुटि समझकर उसकी निर्विघ्न पूर्ति के लिए उन्होंने समस्त कर्मों के साक्षी श्रीकृष्ण को नमस्कार किया और उनका ध्यान करती हुयीं व्रज को ओर चली गयीं[1]।

<u>भागवत पुराण</u> में उल्लिखित उपर्युक्त चीरहरण कथानकप्रस्तुत पुराण में वर्जित रासलीला आख्यान के समस्तरीय है। दोनों आख्यानों में कथा प्रवाह तथा कृष्ण के प्रति गोपियों के अपार प्रेम में समानता दृष्टिगोचर होती है। इस पुराण में गोपियों द्वारा कात्यायनी देवी के प्रति भक्ति प्रदर्शन तथा अपनी मनोकामना को पूर्ण करने के लिए व्रत करना पौराणिक धार्मिक प्रवृत्ति का स्पष्ट परिचायक है। वैदिक ग्रन्थों में व्रत का उल्लेख पौराणिक मन्तव्य से भिन्न अर्थ में प्राप्त होता है। उदाहरणार्थ, एक महत्व पूर्ण छन्द में <u>ऋग्वेद</u> का ऋषि मित्र और वरुण दोनों को साथ-साथ प्रार्थना करता है। मित्र के विषय में ऋषि का कथन है कि प्रस्तुत देवता युद्ध में {देवताओं अथवा आर्यों} के शत्रुओं का विनाश करता है। वरुण के बारे में ऋषि का कथन है कि वह "व्रतों" की रक्षा करता है।[2] "वृ" से व्युत्पन्न "व्रत" शब्द के अनेक अर्थ हैं आदेश या विधि {कानून}, आज्ञा पालन या कर्तव्यता, धार्मिक या नैतिक व्यवहार, धार्मिक उपासना या

1- <u>भागवत</u> पु०, 10/22

2- <u>ऋग्वेद</u>, 7/83/9

आचरण पुनीत या गम्भीर संकल्प या स्वीकरण तथा आचरण-सम्बन्धी कोई भी संकल्प। ऋग्वेद में जहाँ भी "व्रत" शब्द आया है उसका अर्थ उपर्युक्त अर्थों में ही लगाया गया है।[1] आलोचित विष्णु पुराण में तो व्रत का उल्लेख किसी स्थल में नहीं प्राप्त होता है पर, भागवत तथा हरिवंश में इस का विशद् विवरण प्राप्य है। चीरहरण आख्यान में गोपियों द्वारा श्रीकृष्ण के प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण तथा उनके साथ इस प्रकार घुल मिल जाना कि उनका रोम-रोम, मन, प्राणसम्पूर्ण आत्मा केवल श्रीकृष्णमय हो जाय, इस पर विशेष बल दिया गया है। इस कथानक में देवी की बालुकामयी प्रतिमा बनाने तथा उसकी पूजा करने की ओर संकेत किया गया है। जिस से यह ज्ञात होता है कि पौराणिक काल में देवी देवताओं की मूर्तियों का निर्माण तथा उनकी उपासना का पूर्ण रूपेण विकास हो चुका था। जहाँ तक वैष्णव भक्ति का प्रश्न है भागवत पुराण के विवेचित वर्णन में भक्ति का सांगोपांग निरूपण मिलता है। प्रस्तुत आख्यान वैष्णव परक है।

1- पी०वी० काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 4, पृ० 5

हरिवंश

हरिवंश -- प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में हरिवंश की प्रकृति, गठन और काल विषयक संस्थिति विद्वानों के लिए विचार विमर्श और विवाद के विषय रहे हैं। प्राचीन रचनाओं में इसे किस कोटि में रक्खा जाय, इसके रचना काल को प्राचीन इतिहास और संस्कृति के किस स्तर से सम्बन्धित किया जाय तथा इसके आख्यानों और वृतान्तों की मौलिकता अथवा इतर स्थिति को किस प्रकार निर्धारित किया जाय, ऐसे सहज और स्वाभाविक प्रश्न हरिवंश की समीक्षा के साथ बारम्बारजोड़े गये हैं। जिन पाश्चात्य विद्वानों ने इन प्रश्नों को सुलझाने का प्रयास किया है, उनमें फर्कुहर का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसके गठन और प्रकृति को निश्चित करते हुये इस विद्वान ने प्रस्तुत रचना को पुराण ग्रन्थ घोषित किया है। इनके मतानुसार हरिवंश में न केवल पुराणों के सुविदित लक्षण ही प्राप्त होते हैं अपितु इसमें उन विषयों का समाहार दिखाई देता है जो समय-समय पर प्राथमिक उत्तरकालीन पुराण रचनाओं में अपना प्रवेश पाते रहे हैं। आख्यानों की समता और वर्ण्य विषयों के सन्निकर्ष के आधार पर इन्होंने हरिवंश और विष्णु पुराण को समस्तरीय घोषित करने की चेष्टा की है। इन्होंने हमारा ध्यान विशेषतया कृष्णाख्यान में वर्णित हल्लीस नामक नृत्य की ओर आकर्षित किया है जो नाटककार भास के बाल-चरित में वर्णित मिलता है। हल्लीसनृत्य का उल्लेख दोनों ग्रन्थों में है पर, विशेषता यह है कि जब कि बालचरित में हल्लीस नृत्य के वर्णन में कृष्ण के साथ गोपियों के लास्य और विलास का वर्णन नहीं है, हरिवंश में हल्लीस नृत्य के वर्णन में ये अपनी व्यापकता को पहुंच चुके हैं। ऐसी स्थिति में फर्कुहर ने हरिवंश के रचना काल को बाल-चरित की रचना के उपरान्त माना है। बाल चरित की रचना तृतीय शताब्दी ई० में हुई थी तो

1- फर्कुहर, एन आउट लाइन ऑफ दि रिलीजस लिटरेचर ऑफ इण्डिया, पृ० 139

ऐसी स्थिति में उक्त विद्वान ने हरिवंश की रचना का काल चतुर्थ शताब्दी ई० माना है।[1]

जिन पुराण समीक्षकों ने फर्क्युहर के मत को काटने का प्रयास किया है उनमें वीणा पाणि पाण्डे का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने इस प्रसंग में जोआपत्तियाँ प्रस्तुत की हैं वे इस प्रकार है- §1§ विष्णु पुराण में कृष्णाख्यान विस्तार में वर्णित है पर, हरिवंश में उनको विस्तार नहीं मिलता है।
§2§ विष्णु पुराण के कृष्णाख्यान से सम्बन्धित वृतान्तों की संख्या अधिक है पर हरिवंश में इनकी संख्या कम है।
§3§ विष्णु पुराण के कृष्णाख्यान में राधा के व्यक्तित्व का प्रादुर्भाव हो चुका है पर हरिवंश में राधा का वर्णन बिल्कुल नहीं मिलता है।[2]

फर्क्युहर का मत वास्तविकता का परिचायक हो सकता हैअथवा नहीं यह तो प्रसंगान्तर काविषय है। प्रश्न इस बात का है कि वीणा पाणि पाण्डे ने जिन आपत्तियों को प्रस्तावित किया है वे यथार्थ परक स्थिति के द्योतक है अथवा नहीं। इनका यह कहना कि इस के आधार पर एक की पूर्वकालीनता और दूसरे की उत्तरकालीनता सिद्ध हो सकती है, सही नहीं लगता। इसके आधार पर केवल यही कहा जा सकता है कि विष्णु पुराण का संकलनकर्ता इस रचना में विस्तार लाना चाहता था अथवा यह कह सकते हैं कि उस में वैष्णव आग्रह और वैष्णव प्रवृत्ति की प्रबलता और प्रचुरता थी। दूसरे, आख्यानों की संख्या में अधिकता अथवा न्यूनता दो रचनाओं की पूर्वकालीनता और उत्तरकालीनता का आधार नहीं माना जा सकता है। इससे केवल संकलनकर्ता की शैली विषयक वैशिष्ट्य

1- फर्क्युहर, वही, पृ० 143-144

का ही बोध होता है। विशणु पुराण में एक ऐसी गोपिका का वर्णन है जिसे कृष्ण विरह में मोक्ष प्राप्त हुये दिखाया गया है। इसी गोपिका के व्यक्तित्व में आगे चलकर राधा के चरित्र का विस्तार होता है और उसे राधा नाम भी दिया जाता है। अत: राधा के व्यक्तित्व को सूक्ष्म व्यन्जना विष्णु पुराण में हो गई थी। जहाँ तक विष्णु पुराण में राधा के भावी व्यक्तित्व के सूक्ष्म उल्लेख का प्रश्न है उसे सम्भावना के स्तर पर ही स्वीकार किया जा सकता है या नकारा जा सकता है। यह सत्य है कि हरिवंश में कृष्ण विरह में मोक्ष प्राप्त करती हुई किसी गोपिका का वर्णन नहीं है लेकिनइस वर्णन के अभाव को न तो राधा के स्पष्ट उल्लेख का अभाव माना जा सकता है और न इस अभाव को हरिवंश को विष्णु पुराण की अपेक्षा प्राचीन सिद्ध करने का आधार बनाया जा सकता है। एक सन्देहास्पद सम्भावना के आधार पर प्रतिष्ठित की गई दूसरी सम्भावना भी सन्देहास्पद हो जाती है। विष्णु पुराण में यदि राधा का स्पष्ट उल्लेख होता और हरिवंश में न होता तो यह निष्कर्ष विष्णु पुराण में केवल रासलीला प्रसंग की उत्तरकालीनता सिद्ध कर सकता था।

अब प्रश्न इस बात का है कि फर्क्यूहर के मत को मान्यता मिल सकती है अथवा नहीं तथा वे वस्तुस्थिति के निकट हैं, इस बात पर विचार करना अत्यन्त समीचीन प्रतीत होता है। हाजरा ने फर्क्यूहर के तम का खण्डन करते हुये निम्नांकित महत्त्वपूर्ण तर्कों को प्रस्तावित किया है। इन का पहला तर्क यह है कि हरिवंश में कृष्ण की जीवन चर्चा विस्तार में वर्णित है और उन्हें अंशावतार कहा गया है। इनका दूसर तर्क यह है कि विष्णु पुराण में हल्लीस नृत्य अनेक अश्लील रूपों में विवृत है। परन्तु हरिवंश में कृष्ण के यौवन की सम्पूर्ण कहानी विस्तार में विवेचित है और हल्लीस नृत्य के वर्णन में संयम का अतिक्रमण हुआ है। इनके तीसरे

तर्क के अनुसार हरिवंश में आख्यानों का विकसित एवं विस्तृत रूप पाया जाता है। जिन आख्यानों का विकसित और विस्तृत रूप पाया जाता हैउनमें जरासन्ध और पारिजात हरण आख्यान विशेषतया उल्लेखनीय हैं। इनका चौथा तर्क यह है कि कि इसके अतिरिक्त हरिवंश में अनेक नवीन आख्यान जोड़े गये हैं। उदाहरणार्थ- आर्यसत्त्व और पुण्सक व्रत, जिन का विष्णु पुराण में वर्णन नहीं मिलता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि विष्णु पुराण हरिवंश के पहले की रचना है।[1] हाजरा के उक्त तर्कों में दूसरा, तीसरा और चौथा तर्क तो वस्तुस्थिति के निकट हैपर इनके प्रथम तर्क में संगति नहीं दिखाई देती है क्यों कि विष्णु पुराण में एक स्थल पर विष्णु और कृष्ण में एकता स्थापित की गई है। दूसरे प्रकार के स्थलों में कृष्ण विष्णु के अंशावतार कहे गये हैं। तीसरे प्रकार के स्थलों में श्री कृष्ण का उल्लेख अंश अंशावतार रूप में किया गया है।[2] भागवत पुराण तथा हरिवंश में कृष्ण के अंशावतार का ही वर्णन पाया जाता है। उनके अंश अंशावतार का वर्णन अप्राप्य है। विष्णु पुराण में कृष्ण के अंश अंशावतार का वर्णन प्राप्त होना विष्णु पुराण की पूर्वकालीनता का द्योतक है। हरिवंश में इस का न मिलना इस को उत्तर कालीनता का परिचायक है।

वीणापाणि पाण्डे ने हाजरा के उक्त तर्कों का खण्डन इस प्रकार किया है- उनका यह तर्क है कि हरिवंश को विष्णु पुराण की अपेक्षा उत्तरकालीन सिद्ध करने के लिए हाजरा महोदय ने केवल एक सिद्धान्त दिया है। स्थिति यह है कि केवल एक सिद्धान्त के आधार पर समस्त पुराण ग्रन्थ की उत्तरकालीनता अथवा

1- द्रष्टव्य हाजरा, वही,पृ0 23

2- द्रष्टव्य, पृष्ठांक, ५५

पूर्वकालीनता सिद्ध नहीं की जा सकती है।[1] उल्लेखनीय है कि हाजरा महोदय ने अपने निष्कर्ष को परिपुष्ट करने के लिए अन्य तर्कों को भी प्रस्तावित किया है जिस का उल्लेख पिछले अनुच्छेदमें किया जा चुका है। जिस सिद्धान्त का उल्लेख वीणापाणि पाण्डे कर रही हैं और जिसे हाजरा ने वस्तुत: प्रतिपादित किया है उसके महत्त्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता वस्तुस्थिति को देखा जाय तो यह प्रतीत होगा कि कृष्ण चरित में गोपिकाओं के साथ कृष्ण की क्रीडाओं में अश्लीलता का समावेश संयम का अतिक्रमण, वर्णन का विस्तार- ये सभी बातें सम्बन्धित स्थल का समावेश करने वाले विशेष ग्रन्थ की उत्तरकालीनता को ही सिद्धकरते हैं। जैसा कि विद्वानों का विचार रहा है वैष्णव धर्म में इन तत्वों का समावेश भारतीय संस्कृति के उत्तरकालीनस्तर पर हुआ था। इन्हें वैष्णव धर्म के संदर्भ में आनुषंगिक न मानकर अनन्य अंग मानना अधिक समीचीन प्रतीत होता है। ऐसी स्थिति में हाजरा का निष्कर्ष अमान्य नहीं हो सकता।

हापकिंस ने भी हरिवंश के काल निर्धारण में अपने विचार व्यक्त किये हैं। उन्होंने हरिवंश का काल चतुर्थशताब्दी निश्चित किया है और कुछ विचारणीय तर्कों के आधार पर महाभारत की अपेक्षा हरिवंश को उत्तरकालीन माना है। इन का प्रथम तर्क यह है कि हरिवंश में नाटक का विकसित रूपादिखाई पड़ता है। परन्तु महाभारत में ऐसी बात नहीं दिखाई देती है।[2] हरिवंश की उत्तरकालीनता

1- द्रष्टव्य, वीणापाणि पाण्डे, वही, पृ0 96

2- हापकिंस, दि ग्रेट एपिक ऑफ इण्डिया, पृ0 55

के लिए दूसरा तर्क एका नंशा [योगमाया] का उल्लेख महाभारत में अप्राप्य है जब कि हरिवंश में इस का स्पष्ट उल्लेख मिलता है, पर आधारित है।[1] उनका तीसरा तर्क यह है कि हरिवंश में पुरुषों के साथ यादव स्त्रियों के आसवपान में महाभारत कालीन परिष्कृत सभ्यता का बिगड़ा हुआ रूप मिलता है।[2] वीणा पाणि पाण्डे फर्क्युहर और हापकिंस के उक्त मन्तव्यों को स्वीकार करते हुये यह कहा है कि यह मानना पड़ता है कि हरिवंश के पूर्वोक्त स्थल महाभारत के उत्तरकालीन हैं। परन्तु किसी स्थल में केवल एक प्रमाण के आधार पर समस्त हरिवंश को महाभारत से उत्तरकालीन नहीं माना जा सकता[3]।

जिस विशेष मापदण्ड के अनुसार तथा जिन तीन तर्कों के आधार पर हापकिंस ने महाभारत की पूर्वकालीनता तथा अपेक्षाकृत हरिवंश की उत्तरकालीनता सिद्ध करने का प्रयास किया है उनके औचित्य अथवा अनौचित्य पर विचार करना उतना प्रासंगिक नहीं लगता जितना पाण्डे ने अपने विमर्श और विश्लेषण में इन पर बल दिया है। विषय की प्रासंगिकता केवल इतनी ही है कि इन दोनों रचनाओं में अपेक्षाकृत प्राचीनता का परिवेश किस में पाया जाता है। इसका सीधा सादा उत्तर यह है कि महाभारत के स्थलों में अधिक प्राचीन तत्व संगृहीत हुये हैं और हरिवंश उत्तरकालीन तत्वों का परिचय प्रस्तुत करता है। महाभारत की अपेक्षा हरिवंश इसलिए उत्तरकालीन है क्योंकि इसे महाभारत का परिशिष्ट बनाया गया

1- फर्क्युहर, एन आउट लाइन ऑफ दि रिलीजस लिटरेचर ऑफ इण्डिया, पृ0 151

2- हापकिंस, वही, पृ0 376-377

3- द्रष्टव्य, वीणापाणि पाण्डे, वही, पृ0 97

था। महाभारतको प्राचीनता, प्रतिष्ठा और प्रचलन के ही कारण हरिवंश को उसमें जोड़ा गया होगा। जहाँ तक हाप्किंस के विरोध में पाण्डे के उक्त तर्क का सम्बन्ध है इनका यह कहना सामान्य दृष्टि से भ्रामक नहीं माना जा सकता है कि किसी एक विशेष स्थल के आधार पर पूरे ग्रन्थ की उत्तरकालीनता निर्धारित नहीं की जा सकती। पर पाण्डे ने इस बात को स्पष्ट नहीं किया है कि हाप्किंस द्वारा प्रस्तावित तीनों तर्कों से सम्बन्धित स्थल स्वयं हरिवंश में मूल ग्रन्थ की रचना के उपरान्त जोड़े गये थे अथवा उन्हें हरिवंश के मूल प्रति का अनन्य अंग माना जा सकता है। यदि पहली बात सही है तो निश्चय ही इनके आधार पर हरिवंश की उत्तरकालीनता सिद्ध हो जाती है। पर वास्तविकता यह है कि पाण्डे ने इस स्पष्टीकरण का प्रयास नहीं किया है। इस के अतिरिक्त यदि सचमुच ही देखा जाय तो एकानंशा का वर्णन, नाटकों के विकसित रूप की झाँकी-झाँकी तथा सामाजिक चित्रण में अभद्र एवं अशिष्ट तत्वों का प्रवेश, ये स्थल ऐसे हैं जो हरिवंश के मूल लेखक की लेखनी से प्रसूत प्रतीत होते हैं। दूसरे शब्दों में इन्हें हरिवंश का मौलिक अंश माना जा सकता है तथा इनके आधार पर हरिवंश का काल निर्णय भी अप्रासंगिक नहीं माना जा सकता।

दीनारों के उल्लेख का मिलना हरिवंश के काल ज्ञान के लिए एक महत्त्वपूर्ण आधार माना जा सकता है। दीनार का प्रयोग हरिवंश में इन्द्र के द्वारा द्वारिका वासियों के प्रति भेजे गये उपहार के लिए हुआ है।[1] हाप्किंस ने भारत में इन सिक्कों का प्रचार काल द्वितीय शताब्दी ई० स्वीकार किया है।[2] सेवेल ने अनेक तर्कों और ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर भारत में रोमनसिक्कों का प्रचार काल, प्रथम शताब्दी ई० निश्चित किया है। श्री सेवेल के अनुसार रोम सम्राट आगस्टस काल से नीरो के काल तक रोम और भारत के बीच व्यापार चलता रहा। इस आधार पर सेवेल ने भारत में दीनारों का प्रचार काल प्रथम शताब्दी

निश्चित किया है। भारत में दोनारों का प्रचार काल द्वितोय शताब्दी मानने पर दोनारों का उल्लेख करने वाले ग्रन्थों का काल तृतीय तथा चतुर्थ शताब्दो के बोच स्वोकार करना पड़ता है। सेवेल के खोजों के आधार पर दोनार के उल्लेख होने पर भी हरिवंश का काल तृतोय शताब्दी से उत्तरकालीन नहीं हो सकता।[2]

भारत में दीनार के प्रचलन के द्योतक साक्ष्यों का द्विविध रूप-
§1§ साहित्यिक, §2§ पुरातात्त्विक
§1§ साहित्यिक साक्ष्य- पुष्यमित्र शुंग ने यह घोषणा की कि जो व्यक्ति मुझे श्रमण-सिर देगा उसे मैं 100 दीनार दूंगा।[3]
§2§ पुरातात्त्विक साक्ष्य- दक्षिणी भारत की खुदाइयों में प्राप्त रोमन सिक्कों की तिथि प्रथम शताब्दी ई0 निश्चित की गई है। आरक्योलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया की ओर से फ्रेंच सरकार के तत्वाधान में जे0एम0 कैसलने पाण्डेचेरी के पास अरिकामेदू को खुदाई करवाई। इस खुदाई में प्राप्त रोमन सिक्कों के अतिरिक्त रोमन ग्लास, बाउल्स भी प्राप्त हुये हैं जिनका समय प्रथम शताब्दी ई0 माना गया है।[4] चित्तल दुर्ग जिले में चन्द्रावल्ली से आगस्टस तथा टाइबेरियस कालीन दनारें प्राप्त हुई हैं इनके अतिरिक्त कर्नाटक प्रान्त में स्थित मास्की और महाराष्ट्र में कोण्डपुर से भी रोमन मुद्रायें मिलती हैं जिनका समय प्रथम शताब्दी ई0 निश्चित किया गया है।[5]

1- आर0सेवेल, जर्नल आफ दि रॉयल ऐशियाटिक सोसाइटी 1904, पृ0 616
2- द्रष्टव्य, वीणापाणि पाण्डे, हरिवंश पुराण का सांस्कृतिक विवेचन, पृ0 100
3- यो मे श्रमणशिरो दास्यति तस्याहं दीनार शतं दास्यामि ।
दिव्यावदान, पृ0 434
4- मारटिमर ह्वीलर, रोम बियाण्ड दि इम्पीरियल फ्रान्टियर्स, पृ0, 146

हरिवंश के गठन एवं तिथि विषयक पक्ष के सन्दर्भ में इस विशेष तथ्य को विमर्श का विषय बनाया गया है कि साम्प्रदायिक तत्वों का समावेश इस ग्रन्थ में किस सीमा तक हुआ है।[1] ऐसा अनुमान लगाया गया है कि हरिवंश के कुछ एक स्थल साम्प्रदायिक प्रवृत्ति से ओत प्रोत हैं। यह विशेष रूप से दर्शाया गया है कि हरिवंश में शक्ति, शैव और वैष्णव धर्म की परम्परायें नवीन नहीं मानी जा सकती। हरिवंश में शाक्त परम्परा में देवी का प्रथम उल्लेख किया गया है। इस ग्रन्थ के अन्तर्गत अनिरुद्ध तथा प्रद्युम्न के द्वारा देवी के कीर्तन का निर्देश है।[2] हरिवंश के भविष्य पर्व में बौद्धों के प्रति प्रदर्शित अवहेलना के भाव में बौद्ध धर्म के ह्रास की अवस्था दिखलाई देती है।[3] भागवत भी शैव, वैष्णव तथा शाक्त परम्पराओं से अछूता नहीं है। भागवत को छठी शताब्दी ई० का पुराण मान लेने पर हरिवंश में मिलने वाली इस साम्प्रदायिक सामग्री को छठी शताब्दी ई० के आसपास रखा जा सकता है। पौराणिक विषय सामग्री के आधार पर हरिवंश की प्रारम्भिकता को स्वीकार कर लेने पर, एक प्राचीन पुराण के रूप में हरिवंश मान्य है।[4]

वीणा पाणि पाण्डे ने अपने उक्त कथन में इस बात को स्पष्ट नहीं किया है कि यदि हरिवंश वैष्णव परक है तो इसमें शाक्त और शैव तत्व क्यों मिल रहे है।

1- द्रष्टव्य, वीणा पाणि पाण्डे, वही, पृ० 106

2- हरि०,2/107/6-12; 2/120/6; 43-47

3- शुक्लदन्ताजिताक्षाश्च मुंडाः काषायवाससः ।
शूद्रा धर्मं चरिष्यन्ति शाक्य बुद्धोपजीविनः

हरि०,3/3/15

4- वीणापाणि पाण्डे, वही,पृ० 106

इस प्रश्न का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया जा सकता है- हरिवंश में शिव शक्ति और विष्णु तीनों देवताओं को उपास्य देव के रूप में स्वीकार किया गया है। तीनों देवता आपस में घुले मिले हैं। विष्णु, शिव द्वारा स्तुत्य हैं। शिव, विष्णु के अवतार श्री कृष्ण द्वारा स्तुत्य है। पाण्डे ने हरिवंश में शैव, वैष्णव और शक्ति तीनों तत्वों को स्वीकार करते हुये इसे साम्प्रदायिक आग्रह माना है। हरिवंश में यदि शाक्त, शैव और वैष्णव तीनों तत्वों का समावेश है तो इसे साम्प्रदायिक आग्रह न मानकर साम्प्रदायिक समन्वय माना जा सकता है, क्यों कि हरिवंश में शिव और विष्णु का समन्वयात्मक रूप विद्यमान है। उक्त विवेचन में पाण्डे का यह कथन कि हरिवंश के भविष्य पर्व में निरूपित कलि वर्णन में बौद्धों के प्रति घृणा की भावना है। क्या इससे यह निष्कर्ष निकल सकता है कि बौद्ध धर्म का ह्रास हो रहा था? इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि इसे बौद्ध धर्म का ह्रास न कह कर बौद्ध धर्म के प्रति वैष्णवों की विशेष प्रवृत्ति क्रियाशील थी और बौद्ध धर्म के विरुद्ध वैष्णव धर्म की प्रतिक्रिया प्रारम्भ हो गई थी। वीणा पाणि पाण्डे ने उक्त विवेचन में पौराणिक सामग्री के तात्पर्य को नहीं बतलाया है। पुराणों में सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश वर्णन आदि विशेष पौराणिक लक्षण निर्णीत किये गये थे। उक्त लक्षण ही पौराणिक विषय सामग्री के रूप में मान्य हैं। पर वास्तविकता यह है कि हरिवंश इन लक्षणों का प्रयास मात्र करता है। वास्तव में इसे पुराणों के लक्षणों ह दृष्टि से पुराण नहीं मान सकते हैं क्यों कि स्वयं अठारह पुराण भी अधिकांशतः अपनी मौलिक परिभाषा से अलग होकर वास्तविक अर्थ में पुराण नहीं रह गये हैं। स्वयं हरिवंश अपने आपको पुराण घोषित करता है।

हरिवंश के काल निर्धारण में वैष्णव अवतार को भी महत्वपूर्ण माना जा सकता है। विष्णु पुराण, भागवत तथा हरिवंश में वर्णित अवतार की

तालिका में भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। हरिवंश के अन्तर्गत वर्णित विष्णु के दश अवतारों में मत्स्य को विष्णु के अवतार के रूप में नहीं माना गया है। हरिवंश में बुद्ध को विष्णु का नवां तथा बौद्ध मतावलम्बियों के प्रति "पाखण्ड" शब्द का प्रयोग हुआ है जो पुराणों की मध्यकालीन प्रवृत्ति का परिचय है।[1] भागवत पुराण में प्राप्त विष्णु के प्रति अवतारों की तालिका में बुद्ध को विष्णु का एक अवतार माना गया है।[2] हरिवंश में बौद्धमत के लिए प्रयुक्त अवहेलना सूचक शब्द पुराणों की सामान्य प्रवृत्ति के प्रतीक हैं। इससे पुराण का काल निश्चित नहीं हो पाता। किन्तु यह स्पष्ट हो जाता है कि बौद्ध धर्म को घृणा की दृष्टि से देखने के कारण पुराण का यह स्थल बुद्ध के जीवन काल से पर्याप्त अर्वाचीन होगा। बुद्ध के जीवन काल के बाद कुछ समय तक बौद्ध धर्म उन्नति के चरम शिखर पर रहा। बौद्ध धर्म में पतन के लक्षण बुद्ध काल के बहुत समय बाद दृष्टिगोचर हुये। यह काल द्वितीय तथा तृतीय शताब्दी का मध्यवर्ती ज्ञात होता है।[3]

विचारणीय है कि वीणापाणि पाण्डे का यह कथन है कि मत्स्यावतार का उल्लेख हरिवंश में नहीं है, विस्तार की उपेक्षा रखता है। मात्र इतना कहना पर्याप्त नहीं होता कि मत्स्य का उल्लेख हरिवंश में नहीं है तो इस से इस उल्लेखा-भाव के कारण प्रस्तुत ग्रन्थ की प्राथमिकता अथवा प्राचीनता पर कोई प्रकाश पड़ सकता है या नहीं। इस सन्दर्भ में यह स्मरणीय है कि विष्णु पुराण मत्स्यावतार

1- हरि०, 3/3/15

2- भागवत पु०, 1/3, 2/7, 6/8

3- वीणापाणि पाण्डे, हरिवंश पुराण का सांस्कृतिक विवेचन, पृ० 72

विषयक प्राचीन प्रवृत्ति का परिचायक है। इस बात का उल्लेख किया जा सकता है कि विष्णु पुराण में मत्स्यावतार का प्रसंग देता है। विष्णु के अवतारों में मत्स्य का उल्लेख अवतार विषयक प्राचीन प्रवृत्ति का परिचायक है। इस बात का उल्लेख किया जा सकता है कि विष्णु पुराण में मत्स्यावतार का प्रसंग इस ग्रन्थ के ऐसे सम्भावित प्राचीन संस्करण की सूचना देता है जिसे निश्चय के साथ हरिवंश का पूर्ववर्ती माना जायगा।

हरिवंश की अवतार विषयक तालिकाओं में बुद्ध और कल्कि का उल्लेख इस ग्रन्थ को उस पौराणिक प्रवृत्ति का समस्तरीय बना देता है जिस में विष्णु भागवत और अनेक पुराण आते हैं। इस से हरिवंश विष्णु आदि के समकक्ष तो अवश्य आता है पर, पुरातन स्थलों के वर्णन अभाव के कारण जिनका उल्लेख अधिकांशतः अथवा अल्पांशतः विष्णु पुराण इत्यादि में हुआ है, यह ग्रन्थ प्राथमिक पुराण रचनाओं की कोटि में नहीं आ सकता है।

जिन विशेष दृष्टियों मापदण्डों और तर्कों के आलोक में हरिवंश के स्वरूप गठन एवं काल विषयक विवेचन का प्रयास किया गया है उन से निम्नांकित निष्कर्ष विचारणीय है-

§1§ यद्यपि इस ग्रन्थ की विशेष की परिचर्या परम्परा में निश्चित पुराणों की तालिका में नहीं मिलती है तथापि यह ग्रन्थ पौराणिक विषयों से अछूता नहीं है।

§2§ इसे स्वतंत्र रचना मान सकते हैं। पर प्रश्न इस बात का है कि यह ग्रन्थ पुराण कहलाने का अधिकारी है अथवा नहीं है। यदि स्वतंत्र पुराण रचना के रूप में इस ग्रन्थ को अतीत काल में मान्यता ही प्राप्त रहती तो क्या कारण है कि इसे

महाभारत के "खिल" के रूप में रहने दिया गया था और यदि इसका संकल्पकर्ता कहीं इसे पुराण का रूप देना ही चाहता था तो उसने इसे किसी विशेष सुप्रमाणिक और सुमान्य पुराण रचना में क्यों नहीं जोड़ा था। महाभारत के साथ इसका जोड़ा जाना इस बात का द्योतक है कि इसे सम्भवत: वास्तविक पुराण के रूप में मान्यता नहीं मिली थी।

§3§ इस रचना में जहाँ कहीं इसके पौराणिक ग्रन्थ होने के तत्व, स्थल अथवा साक्ष्य मिलते हैं उनसे यही प्रतीत होता है कि प्रस्तुत ग्रन्थ एक से अधिक बार विरचित हुआ था। पहले स्तर पर इसके लेखक ने पौराणिक विषयों से आकृष्ट होकर इसे वास्तविक पुराण तो नहीं किन्तु पुराण-सम अवश्य बनाना चाहता था। सम्भवत: इसकी रचना पौराणिक संकलन के उस स्तर पर सम्पन्न हो रही थी जब कि अनेक उप पुराण अपने कलेवर में प्रतिष्ठित हो रहे थे। ऐसी सम्भावना की जा सकती है कि हरिवंश का लेखक इसे उप पुराणों की कोटि में नहीं रखना चाहता था और सम्भवत: इसी लिए उसने इसे पुराणों की कोटि में न रखकर महाभारत के खिल के रूप में प्रतिष्ठित किया। किन्तु बाद में पौराणिक सामग्री की प्रचुरता के कारण और महाभारत के साथ न रखाने के कारण इसे पुराण के रूप में भी प्रतिष्ठा मिली। यद्यपि हरिवंश का उल्लेख पुराणों की सूची में नहीं मिलता तथापि विषय योजना की दृष्टि से हरिवंश को पौराणिक ग्रन्थ माना जा सकता है। इस में पौराणिक सामग्री का पर्याप्त प्रयोग मिलता है।

आलोचित विष्णु पुराण एवं भागवत पुराण की भाँति हरिवंश में विष्णु और उनके अवतार श्री कृष्ण की बाल लीलाओं तथा उनके अन्य अनेक क्रियाकलापों का सांगोपांग निरूपण प्राप्त होता है। इस पुराण में आख्यान, उपाख्यान, कथा एवं अन्तर्कथायें बड़ी संख्या में प्राप्त होती हैं। यहाँ पर कुछ विशिष्ट आख्यानों का

ही वर्णन किया जायगा जो विशेषतया उल्लेखनीय है-धुन्धुमार आख्यान, 1/11, त्रिपुरवध आख्यान; 3/133; मधुकैटभ आख्यान, 3/13

धुन्धुमार आख्यान- महायशस्वी वृहदश्व के पुत्र कुवलाश्व धुन्धु नामक दैत्य को मारने के कारण धुन्धुमार नाम से विख्यात हुये। कुवलाश्व के सौ पुत्र थे। उनके सभी पुत्र धार्मिक प्रवृत्ति के थे। वृहदश्व अपने जेष्ठ पुत्र कुवलाश्व को राज सिंहासन पर आसीन कर वन में जाकर तपस्या करने की इच्छा व्यक्त की। ब्रह्मर्षि उत्तंक इस विचार से सहमत न हुये और उन्हें वन में जाने की सलाह न देकर प्रजा की रक्षा तथा प्रजा पालन का उपदेश दिया। उत्तंक तपस्या करने से प्राप्त पुण्य की अपेक्षा प्रजा के पालन करने से प्राप्त पुण्य को महत्वपूर्ण बतलाते हैं। उत्तंक वृहदश्व से पुन: कहते हैं कि मेरे आश्रम के समीप मरु प्रदेश की समतल भूमि में उज्जानक नामक समुद्र है। वहाँ एक विशाल काय महाबली राक्षस जिस का नाम धुन्धु है, निवास करता है। वह पृथ्वी के भीतर बालू में छिपकर समस्त लोको का संहार करने के लिए कठोर तपस्या में रत है। जनसमुदाय के हित की रक्षा के लिए इस विशाल शरीर वाले दैत्य का बध करने के लिए उत्तंक की बातों को सुनकर वृहदश्व अपना विचार व्यक्त करते हुये कहते हैं कि मैंने तो शस्त्रों को त्याग दिया है पर मेरा पुत्र धुन्धु का वध करेगा। कुवलाश्व पितृ आज्ञा प्राप्त कर अपने सौ पुत्रों तथा उत्तंक को साथ लेकर धुन्धु का वध करने केलिए चल पड़े। उस समय भगवान् विष्णु उत्तंक की प्रेरणा से लोगों का हित करने के लिए अपने तेज: स्वरूप से उस राजा के शरीर में प्रविष्ट हो गये। तेजवान् महीपति अपने पुत्रों के साथ वहाँ पहुँच कर अपार रेत से भरे हुये समुद्र को खुदवाने लगे। उस समय महाबली राजा

भगवान् नारायण के तेज से पुष्ट होने के कारण और भी तेजोमयो हो गये। धरती खोदते हुये कुवलाश्व के पुत्रों ने बालू में छिपे हुये धुन्धु को खोज निकाला। धुन्धु अपने मुख से अग्नि प्रज्वलित करता हुआ जल का स्रोत बहाने लगा। महा तेजस्वी नरेश ने उस राक्षस के सामने पहुँच कर जलमय वेग का पान कर जल से अग्नि को शान्त कर दिया। इस प्रकार उस विशाल शरीर वाले जल-राक्षस को बलपूर्वक मार कर महान् श्रेय प्राप्त किया।[1]

प्रस्तुत आख्यान पौराणिक कृतियों में प्रारम्भ से ही सम्मिलित किया गया था। क्योंकि इस का उल्लेख वायु[2] और ब्रह्माण्ड पुराण[3] में प्राप्त होता है। इसका वर्णन[4] भागवत पुराण में भी मिलता है पर वास्तविकता यह है कि हरिवंश में इस आख्यान का स्वरूप अधिक विशाल एवं वृहत है। अतएव ऐसी स्थिति में इस आख्यान के मूल को पौराणिक संरचना के साथ सम्मिलित कर सकते हैं। उपर्युक्त हरिवंश में उल्लिखित धुन्धु वध विषयक आख्यान की यदि समीक्षा की जाय तो यह स्पष्ट दिखाई पड़ता है कि विवेचित ग्रन्थ के रचना काल में आश्रम व्यवस्था प्रतिष्ठित हो चुकी थी। गार्हस्थ्य धर्म का निर्वाह अपेक्षित माना जाता था। ऋषियों को राजाश्रय प्राप्त था। पौराणिक ऋषियों ने प्रजा की रक्षा तथा प्रजापालन पर विशेष बल देते हुये प्रजा पालन को ही राजाओं के लिए सर्वश्रेष्ठ पुण्य बतलाया है। प्रस्तुत आख्यान के यदि धार्मिक पक्ष को देखा जाय तो यह ज्ञात होता है कि महर्षि उत्तंक ने वृहदश्व

1- हरि०, 1/11

2- वायु पु०, 88/28-29

3- ब्रह्माण्ड पु०, 3/63/29

4- भागवत पु०, 9/6/29

को धर्म की ओर उन्मुख होने के लिए उपदेश दिया है तथा साथ ही साथ यह भी कहा है कि धर्म में श्रद्धा रखने वाले व्यक्ति स्वर्ग में अक्षय लोक के अधिकारी हैं। प्रस्तुत आख्यान के माध्यम से आलोच्य ग्रन्थ के रचयिता ने धर्मशास्त्रों में उपेक्षित आचार विचार और वर्णाश्रम व्यवस्था से वैष्णव धर्म का अविरोध प्रकट करने की चेष्टा की है। राजधर्म के साथ वैष्णव धर्म की अनुरूपता का बोध कराया गया है। भगवान् विष्णु की कृपा और तेज केवल उसी राजा को प्राप्त हो सकता है जो समष्टिगत हित के लिए धुन्धु जैसे विशाल राक्षस को मारने का जोखिम उठा सकता है। राजा में देवत्व का आरोप वह दूसरी प्रवृत्ति है जो इस आख्यान के माध्यम से उभर कर सामने आती है। वैष्णव धर्म अब अपने को पूर्व प्रतिष्ठित धर्म शास्त्रीय संस्थाओं से सन्दर्भित कर रहा था।

<u>त्रिपुर वध आख्यान:-</u> आकाश में उमड़े हुए मेघ समूहों की भाँति प्रकट होकर बहुमूल्य धातुओं से निर्मित वे तीनों पुर सर्वत्र विचरण कर रहे थे। तीनों पुर सुवर्ण निर्मित ऊँचे विशाल फाटकों से जिनमें मणियाँ पिरोई गई थीं आकाश मण्डल में चमक रहे थे। वहाँ गर्जना और कोलाहल अधिक होता था। उस नगर में दैत्यराज सूर्यनाभ, चन्द्रनाभ तथा अन्य पराक्रमी दानव निवास करते थे। ब्रह्माजी द्वारा बनाये हुये देवयान तथा पितृयान मार्ग को वे शक्तिशाली दानव तोड़ने फोड़ने तथा नष्ट करने लगे। इस प्रकार देवयान तथा पितृयान मार्ग का दानवों द्वारा अपहरण किये जाने पर देवगण ब्रह्मा जी के पास आये। देवगण अपने विचार व्यक्त करते हुये ब्रह्माजी से कहते हैकि देवताओं के पितामह! शत्रुगण हमें सता रहे हैं, हम लोगों के मार्ग में नाना

प्रकार के अवरोध एवं बाधायें उत्पन्न कर रहे हैं। इसके निदान बतलाइये। ब्रह्माजी देवताओं को सर्वदान अविनाशी भगवान् के पास जाने का आदेश देते हुये कहते हैं कि वे ही उन दानवों का संहार करने में समर्थ हैं। समस्त देव आकाश मार्ग का आश्रय लेकर भगवान् शंकर के धाम में पधारते हैं। देवगण उनको प्रणाम कर अपनी बात कहते हैं। इस प्रकार देवताओं की विनयवाणी को सुनकर शंकर भगवान् कवच बाँधकर दैत्यों से युद्ध करने के लिए तैयार होते है। कुबेर सहित समस्त देवताओं द्वारा चारों ओर से घिरे हुये त्रिनेत्रधारी महादेव जी ने धनुष वाण लेकर त्रिपुर वासियों के साथ युद्ध प्रारम्भ कर दिये। युद्ध में दैत्यों ने अपने बाहु बल से भगवान् शंकर के रथ को धराशाई करना चाहा परन्तु विष्णु ने सब ओर दृष्टि डाल कर अपने आप ही मन को एकाग्र करके योग बल से वृष रूप धर्म के स्वरूप का आश्रय लेकर ब्रह्मभूत रथन्तर सामके द्वारा महादेव जी के रथ को ऊपर उठाया । सम्पूर्ण शक्ति से सम्पन्न देवता जिस रथ पर आरूढ़ थे,उस रथ को अपने दोनों सींगों से उठाकर वे महाबली श्री हरि मथे जाते हुये समुद्र को भाँति सम्पूर्ण शक्ति से गर्जना करने लगे। दो सींगों से युक्त वृषभ रूपधारण करने वाले विष्णु घोर गर्जना करने लगे। उस गर्जना से भयभीत महाबली दैत्य पुनः युद्ध करने लगे। भगवान शंकर दैत्यों की इस रणचातुरी को देखकर अग्नि तुल्य तेजस्वी बाणों को त्रिपुर संज्ञक दैत्य नगर पर छोड़ दिया। विषैले सर्पों के समान उन भयंकर बाणों को छोड़कर भगवान शंकर ने उस दैत्य नगर को विदीर्ण कर दिया वे तीनों पुर अग्नि से जलकर पृथ्वी पर गिर पड़े। इस प्रकार उस समय योग बल से सम्पन्न विष्णु को ही ब्रह्म तुल्य ऋषियों ने तथा ब्रह्माजी सहित अन्य देवताओं ने स्तुति की।[1]

1- हरि0.3/133

वेदोत्तरवर्ती साहित्य विशेषतया पौराणि साहित्य के अध्ययन से प्रतीत होता है कि इन्द्र के सौम्य रूप का स्थानान्तरण तो विष्णु के स्वरूप में हुवा जिसके उल्लेख प्रचुरता के साथ प्राप्त होते हैं। पर, विनाशकारी प्रवृत्ति का स्थानान्तरण विष्णु के स्वरूप में नहीं हो सका। इसके लिए यदि कोई उपयुक्त देवता थे तो वे रुद्र -शिव ही थे, जिन के व्यक्तित्व में इन्द्र के विनाशकारी सहज और स्वभाविक रूप में स्थानान्तरण हो सकता था। ऐसे वर्णन वैदिक साहित्य में बहुधा प्राप्त होते हैं। ऋग्वेद तथा शतपथ ब्राह्मण में रुद्र के भयंकर रूप का वर्णन प्राप्त होता है। ऋग्वेद के एक छन्द में रुद्र के पुरुष घातक तथा गोघातक शस्त्रों का वर्णन मिलता है[1] इसी प्रकार शतपथ ब्राह्मण में देवताओं को रुद्र द्वारा भय त्रस्त बतलाया गया है।[2] पौराणिक वाङ्मय में जिस त्रिपुर आख्यान का निरूपण मिलता है और जिसका सम्बन्ध शिव के साथ किया गया है उसका मूल विवेचित विचारधारा में ही ढूढ़ा जा सकता है। हरिवंश के अतिरिक्त त्रिपुर आख्यान का वर्णन मत्स्य[3] तथा भागवत[4] पुराण में प्राप्त होता है। अतएव ऐसी स्थिति में प्रस्तुत आख्यान को पौराणिक साहित्य कोश की सामान्य निधि मान सकते हैं। यहाँ प्रश्न किया जा सकता है कि हरिवंश वैष्णव ग्रन्थ है तो इस में शैव मत विशिष्ट आख्यान क्यों प्राप्त होता है। इस प्रश्न के उत्तर में ऐसा कह सकते हैं कि ऐसी प्रवृत्ति मत्स्य पुराण में भी दिखाई देती है। मत्स्य पुराण मूलतया वैष्णव ग्रन्थ है और

1- आरे ते गोघ्नमुतपूरुषघ्नं ....। ऋग्वेद, 1/114/10

2- एसोऽत्र रुद्रो देवता............तस्माद्देवा अबिभयुः ।
शत0ब्रा0, 9,1,1,1

3- मत्स्य पु0, 140/70

4- भागवत पु0, 7/10

इसमें त्रिपुर आख्यान का वर्णन स्थल प्रक्षेप का उदाहरण माना जा सकता है। इसी प्रवृत्ति के अन्तर्गत हरिवंश के त्रिपुर आख्यान को भी सम्मिलित कर सकते है। पर विशेषता यह है कि हरवंश में त्रिपुर आख्यान मूलतया वैष्णव परक होते हुये भी वैष्णव आग्रह से ओत प्रोत है। इस आख्यान में यह वर्णन मिलता है कि दैत्यों और शंकर में युद्ध होता है। शंकर का रथ संकट में पड़ जाता है। विष्णु भगवान् उसी क्षण वृषभ का रूप धारण कर अपने दोनों सींगों से उस रथ को ऊपर उठाकर घोर गर्जना करते हैं जिससे उनको युद्ध शक्ति क्षीण हो जाती है। इस प्रकार विष्णु शिव की सहायता करते हैं और उनको युद्ध शक्ति को बढ़ाते हैं। प्रस्तुत आख्यान के वर्णन की यह भी विशेषता है कि इस में शिव को धनुष और वाण धारण करने वाला कहा गया है। ऐसी प्रवृत्ति अन्य वेदोत्तरवर्ती ग्रन्थों में भी दिखाई देती है। वायु पुराण में एक स्थल पर शिव की स्तुति के प्रसंग में उन्हें पिनाक धारण करने वाला कहा गया है।[1] मत्स्य पुराण में भी एक स्थल पर यह वर्णन मिलता है कि रुद्र उन्हें पिनाक और इषु धारण करने वाले रूप में देखते हैं।[2] शिव के इस स्वरूप का मूल वैदिक वाङ्मय में ढूंढा जा सकता है। ऋग्वेद में इन्द्र को धनुष और वाण धारण करने वाला कहा गया है।[3] ऐसा ही वर्णन शतपथ ब्राह्मण में भी प्राप्त होता है इस आख्यान में यह वर्णन मिलता है कि त्रिपुर बध के पश्चात् शिव अन्य देवताओं सहित

1- पिनाकिने प्रसिद्धाय स्फीताय .... प्रसृताय च ।वायु पु0, 24/229

2- पिनाकिने वेषु मते ......। मत्स्य पु0,47/138

3- अर्हन्विभर्षि सहायकानिधन्वर्हिन्निष्कं । ऋग्वेद,2/33/10

विष्णु की स्तुति करते हैं। इसके द्वारा शिव की अपेक्षा विष्णु महान् है, की ओर संकेत प्राप्त होता है। अतएव हरिवंश का वैष्णव धर्म के प्रति विशेष आग्रह भी समर्थित हो जाता है।

मधु कैटभ आख्यान:- सहस्त्र युगों को ब्रह्माजी की रात्रि के अवसान होने पर सत्यु. युग के प्रारम्भ में आरम्भ होने वाली सृष्टि के कार्य में विघ्न स्वरूप मधु नामक एक शक्तिशाली असुर का जन्म हुआ। उसी का सहायक एक दूसरा असुर उत्पन्न हुआ था, उस का नाम कैटभ था वे दोनों शक्ति संपन्न असुर क्रमश: काले और लाल रंग के वस्त्र धारण करते थे। उनके सिर और शरीर का रंग मेघों की काली घटा के समान था। उनके मुख सूर्य के समान दीप्तिमान थे। जल में शयन करते हुये वे दोनों असुर वहां विचरण कर रहे थे। भगवान् नारायण के समीप बैठे हुये ब्रह्मा जी को देख कर दोनों असुर क्रोध में लाल -लाल आंखें किये हुये कहते हैं कि तूं कौन है जो मोह वश इस कमल के मध्य में बैठा है? ब्रह्माजी उन घमण्डी एवं उद्दण्ड असुरों की मदयुक्त वाणी को सुन कर कहते हैं कि जो सम्पूर्ण लोकों में "क" नाम से विख्यात है, मैं उन्हीं परमात्मा से उत्पन्न योग शक्ति से सम्पन्न हूं। क्या तुम दोनों मुझे जानने में असमर्थ हो रहे हो? ब्रह्माजी द्वारा कहे गये वचनों को सुनकर मधु और कैटभ कहते हैं कि सम्पूर्ण संसार को रजोगुण तथा तमो गुण के द्वारा आच्छादित करने वाले हम दोनों से बढ़ कर दूसरी कोई वस्तु नहीं है। हम दोनों को जीतना अन्य सभी देह धारियों के लिए असम्भव है। उपर्युक्त वाणी को सुनकर ब्रह्माजी स्वयं कहते हैं कि योग युक्त पुरूषों में श्रेष्ठ जिन परमात्मा को मै पहले ही आराधना

1- सोऽयं......रुद्र: शतेषु धिरधिज्य धन्वा। श0ब्रा0 9,1,6,6

कर चुका हूं, योगियों के परम तत्व जीवों को उत्पत्ति के कारण परमात्मा रणभूमि में युद्ध करके तुम दोनों को शान्त कर देंगे। कुछ हो क्षणों के पश्चात् विस्तृत शरीर धारण करने वाले इन्द्रियों के प्रेरक श्री भगवान् को मधु कैटभ प्रणाम कर यह कहते हैं कि जो समस्त विश्व के एक मात्र पुरूषोत्तम हैं और समस्त विश्व को उत्पत्ति के कारण हैं। जिनका दर्शन अमोघ है। उन भगवान् को मेरा नमस्कार है। दैत्यों को वाणी को सुनकर भगवान् उनको वर मागने के लिए प्रेरित करते हैं। मधु और कैटभ भगवान् से यह इच्छा व्यक्त करते हुये कहते हैं कि भगवान् जिस देश में अब तक कोई मरा न हो, उसी में हमारा वध करें, यह हम दोनों को इच्छा है। साथ हो साथ हम दोनों को पुत्र के रूप में वरण कोजिये। भगवान् उन दोनों दैत्यों को वाणी को सुनकर देश द्रोहियों का दमन करने वाले विश्व में सर्वश्रेष्ठ, सर्वव्यापी, सनातन पुरूष रजोगुण, तमोगुण के मूर्तिमान् स्वरूप उन दोनों शक्तिशाली असुरों को उपर्युक्त वर देने के पश्चात् भगवान् उन्हें अपनी जांघों पर रख कर मथ डाला। वे दोनों विश्वविधाता ब्रह्मा जो के समान शक्तिशाली थे।[1]

हरिवंश में विवृत मधु कैटभ वध विषयक आख्यान को यदि समीक्षा की जाय तो यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि इस में वैष्णव भक्ति के उदात्त और उदार पक्षों का सुमधुर एवं सुव्यक्त निदर्शन का समावेश है। विष्णु भगवान के प्रति प्रेम, भक्ति तथा उनमें आस्था रखने वाला प्रत्येक प्राणी चाहे वह मानव हो, दानव हो, पशु हो अथवा पक्षी हो सब को अपनी भक्ति

1- हरि0, 3/13

प्रदान करते हैं। उनको उनके मनोनुकूल वर देते हैं तथा मरने के पश्चात् उन्हें अभय पद प्रदान कर अपने निवास स्थान वैकुण्ठ में निवास करने की अनुमति देते हैं। उपर्युक्त हरिवंश में विवेचित मधु कैटभ आख्यान की भाँति अन्य पुराणों में भी भक्तों के प्रति भगवान् विष्णु की उदारता का स्पष्ट परिचय प्राप्त होता है। उदाहरणार्थ, विष्णु पुराण में उल्लिखित दैत्य पुत्र प्रह्लाद आख्यान तथा भागवत पुराण में अजामिल का विवरण इस सन्दर्भ में प्रस्तुत किया जा सकता है। इन आख्यानों में विवेचित भगवान् में श्रद्धा एवं भक्ति रखने वाले भक्त चाहे वे मनुष्य योनि के रहे हों, चाहे पशु योनि के रहे हों सभी अपनी अपनी भक्ति द्वारा भगवान् के अनन्य भक्त एवं पार्षद रूप में उनके अलौकिक धाम को चले गये। आलोचित विष्णु पुराण तथा भागवत में इस आख्यान का संक्षिप्त निर्देश मिलता है। विष्णु पुराण में एक स्थल पर शत्रुघ्न द्वारा मधु के पुत्र लवण नामक राक्षस के मारने तथा मथुरापुरी के बसाने का संकेत है। भागवत पुराण में भी इसी से मिलता जुलता वर्णन प्राप्त होता है। वैष्णव ग्रन्थ हरिवंश में प्रस्तुत आख्यान का वर्णन विस्तृत रूप में प्राप्य है। आलोचित विष्णु और भागवत भी वैष्णव महापुराण हैं। इसलिए इनमें भी इस आख्यान का विस्तृत विवेचन प्राप्त होना चाहिये था। क्रियायोगसार नामक वैष्णव उपपुराण में इस आख्यान का वर्णन मिलता है। जिस समय क्रियायोगसार नामक उप पुराण की रचना हो रही थी हो सकता है कि उसी समय प्रस्तुत आख्यान को हरिवंश के पृष्ठों पर अंकित किया गया हो क्योंकि अन्य पुराणों की भाँति हरिवंश में भी प्रक्षिप्तांश मिलते हैं। प्रस्तुत आख्यान का स्वरूप वैष्णव है। यह वैष्णव ग्रन्थों में ही प्राप्त है। हरिवंश में विवेचित इस आख्यान में आदि से

अंत तक विष्णु के ही क्रिया कलापों गुणों तथा उनके अनन्य स्वरूपों का सांगोपांग निरूपण प्राप्त होता है। वे ही संसार को उत्पत्ति के कारण हैं। उपर्युक्त आख्यान में विवृत विष्णु के कार्य कलापों को समीक्षा के पश्चात् निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्रस्तुत आख्यान वैष्णव परक है जिस में वैष्णव भक्ति अपनी पराकाष्ठा को पहुँच चुकी है। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि पूर्वकालीन लघु आख्यान विस्तार को प्राप्त हो रहे थे। भरसक उत्तर कालीन संकलन कर्ताओं ने ऐसे परिवर्धित आख्यानों को मूल और प्राथमिक पुराणों में ही जोड़ने का प्रयास किया था। पर, स्थानाभाव के कारण उन्होंने सहज और स्वभाविक रूप में उन्हें या तो उत्तरकालीन वैष्णव ग्रन्थों में जोड़ा अथवा इस कोटि के आख्यानों के प्रकाश में लाया । पहली प्रवृत्ति का परिचायक हरिवंश है और दूसरी का परिचायक क्रियायोगसार की पंक्तियों में प्राप्त होता है।

आलोचित पुराणों में निर्दिष्ट विशिष्ट आख्यानों की सूची

आख्यान निर्देश	ग्रन्थ निर्देश
पृथ्वी का गौ रूप धारण करना	विष्णु पु0, 1/3; भागवत पु0, 10/1; हरि0, 16
पूतना वध	विष्णु पु0, 5/5; भागवत पु0, 1/6; हरि0, 2/6
जरासंध का कृष्ण पर आक्रमण	विष्णु पु0, 5/22; भागवत पु0, 10/5; हरि0, 2/35
कंस वध	विष्णु पु0, 5/20; भागवत पु0, 10/44; हरि0, 2/30
रासलीला	विष्णु पु0, 5/13; भागवत पु0, 10/29; हरि0, 2/20
श्री कृष्ण और वाणासुर का युद्ध	विष्णु पु0, 5/33; भागवत पु0, 10/63; हरि0, 2/116
पौन्ड्रक वृतान्त	विष्णु पु0, 5/34; भागवत पु0, 10/66; हरि0, 3/91
पारिजात हरण	विष्णु पु0, 5/30; भागवत पु0, 10/59; हरि0, 2/65
प्रह्लाद चरित	विष्णु पु0, 1/18; भागवत पु0, 7/6 ; हरि0, 3/43
रुक्मिणी हरण	विष्णु पु0, 5/26; भागवत पु0, 10/53; हरि0; 2/59
वेन और पृथु चरित्र	विष्णु पु0, 1/13; भागवत पु0, 4/14; हरि0, 1/5
प्रद्युम्न हरण	विष्णु पु0, 5/27; भागवत पु0, 10/55; हरि0, 2/108

आख्यान निर्देश	ग्रन्थ निर्देश
गोवर्द्धन धारण	विष्णु पु0, 5/11; भागवत पु0, 10/24; हरि0, 2/18
मधु कैटभ आख्यान	विष्णु पु0, 1/12/3-4; भागवत पु0, 9/11/14; हरि0,3/13
देवताओं द्वारा देवकी स्तुति	विष्णु पु0, 5/2; भागवत पु0, 10/3
ध्रुव कथा	विष्णु पु0, 1/11; भागवत पु0, 4/8
भरत चरित	विष्णु पु0, 2/13; भागवत पु0, 5/7
यम गीता	विष्णु पु0, 3/7; भागवत पु0, 6/3
समुद्र मन्थन	विष्णु पु0, 1/9; भागवत पु0,8/6
प्रचेताओं द्वारा भगवान् की स्तुति	विष्णु पु0, 1/14; भागवत पु0, 3/30
द्विविध वध	विष्णु पु0, 5/36; भागवत पु0, 10/67
प्रिय व्रत चरित	विष्णु पु0, 2/1; भागवत पु0, 5/1
माया मोह	विष्णु पु0, 3/18; भागवत पु0, 9/17
धुन्धुमार की कथा	भागवत पु0,9/16; हरि0,1/11
त्रिपुर वध	भागवत पु0, 7/10; हरि0, 3/33

आख्यान निर्देश	ग्रन्थ निर्देश
ऋभु का निदाघ को अद्वैत ज्ञानोपदेश की कथा	विष्णु पु0, 2/15
अजामिलोपाख्यान	भागवत पु0, 6/1
गजेन्द्र मोक्ष	भागवत पु0, 8/2
त्रिशंकु और हरिश्चन्द्र की कथा	भागवत पु0, 9/7
चीर हरण	भागवत पु0, 10/22
राजा परीक्षित को शृंगी ऋषि का शाप	भागवत पु0, 1/18
जय विजय आख्यान	भागवत पु0, 7/1
चित्रकेतु को पार्वती का शाप	भागवत पु0, 6/17
श्रीकृष्ण द्वारा सुदामा जी को ऐश्वर्य की प्राप्ति	भागवत पु0, 10/81
सुभद्राहरण और भगवान् का मिथिलापुरी में राजा जनक और श्रुतदेव ब्राह्मण के घर एकही साथ जाना	भागवत पु0, 10/86
घण्टाकर्ण द्वारा भगवान विष्णु की स्तुति	हरि0, 3/82
हंस और डिम्भक की मृगया	हरि0, 3/106
श्रीकृष्ण और विचक्र की मृगया, युद्ध तथा विचक्र के वध की कथा	हरि0, 3/113

पूर्व पृष्ठांकित तालिका से स्पष्ट है कि इस में कतिपय आख्यान ऐसे हैं, जिन का वर्णन तीनों आलोचित पुराणों में उपलब्ध है और कुछ का दो ही में तथा कुछ एक ऐसे भी हैं जो एक ही में वर्णित हैं। जिन आख्यानों का वर्णन आलोचित विष्णु पुराण, भागवत और हरिवंश में मिलता है, वे इस प्रकार है- पृथ्वी का गौ रूप धारण करना; पूतना वध; जरासन्ध का कृष्ण पर आक्रमण, कंस वध; रासलीला; श्रीकृष्ण और वाणासुर का युद्ध; पौंड्रक वृतान्त; पारिजात हरण, प्रह्लाद चरित; रुक्मिणी हरण, वेन और पृथु चरित्र; प्रद्युम्न हरण; मधु कैटभ तथा गोवर्धन धारण आख्यान। जिन आख्यानों का वर्णन विष्णु और भागवत पुराणों में है, वे हैं- देवताओं द्वारा देवकी की स्तुति; ध्रुव कथा; भरत चरित; यमगीता; समुद्र मंथन; प्रचेताओं द्वारा भगवान् की स्तुति; द्विविध वध; प्रिय व्रत चरित्र तथा माया मोह आख्यान। धुन्धुमार की कथा, त्रिपुर वध की कथा भागवत तथा हरिवंश में मिलती है। ऋभु का निदाघ और अद्वैत ज्ञानोपदेश की कथा का वर्णन केवल विष्णु पुराण में प्राप्य है। अजामिलो पाख्यान, गजेन्द्र मोक्ष, त्रिशंकु और हरिश्चन्द्र की कथा, चीर हरण, राजापरीक्षित को श्रृंगी ऋषि का शाप, जयविजय आख्यान, चित्रकेतु को पार्वती का शाप, श्रीकृष्ण जी के द्वारा सुदामा जी को ऐश्वर्य की प्राप्ति तथा सुभद्रा हरण और भगवान् का मिथिलापुरी में राजा जनक और श्रुतदेव ब्राह्मण के घर एक ही साथ जाने का प्रसंग केवल भागवत पुराण में ही प्राप्त होता है। घण्टार्क द्वारा भगवान् विष्णु की स्तुति, हंस और डिम्भक की मृगया तथा कृष्ण द्वारा विवक्र के वध की कथा का वर्णन केवल हरिवंश में मिलता है।

पौराणिक कलेवर के निर्माण में प्रारम्भ से ही आख्यानों का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। इस स्तर पर तो पुराण और आख्यान एक दूसरे के

पर्यायवाची माने जाते थे। इन आख्यानों की विशेषता रही है कि कभी तो इनका गठन पहले ही हो चुका था। कभी नये नये आख्यान निर्मित हुये और कभी पुराने आख्यानों को नवीन धारणाओं एवं मान्यताओं से युक्त करके परिवर्धित रूप प्रदान किया गया था। कभी कभी ऐसा भी देखने में आता है कि मूल भूत एक ही आख्यान का एक पुराण में शैव स्वरूप है तो दूसरे में उस का शाक्त स्वरूप है। वस्तुतः आख्यान के माध्यम से जिन में भारतीय धर्म के विभिन्न साम्प्रदायिकों ने अपनी मान्यताओं को पिरोया था और उन्हें इस प्रकार प्रियकर, लोक ग्राह्य और आकर्षक बनाकर जनमानस तक पहुँचाने का प्रयास किया था। जिन आख्यानों की आलोचित पृष्ठों में चर्चा की गई है वे मूलतया वैष्णव सम्प्रदाय के आग्रह से ओत-प्रोत हैं, इस में सन्देह नहीं है एक ही आख्यान का अलग-अलग पुराणों में कभी कभी भिन्न-भिन्न हो जाना इस बात का द्योतक है कि पुराणकार पुराण लेखन में स्वतन्त्र था और उसका उद्देश्य था सामयिक परिस्थितियों के अनुसार और अन्य धार्मिक सम्प्रदायों की प्रतिस्पर्धा की प्रेरणा में आख्यानों के विशिष्ट अथवा संश्लिष्ट बनाकर अपनी धार्मिक मान्यताओं को वरेण्य और धुरीण्य सिद्ध करना। स्मरणीय है कि वैष्णव धर्म की गति शीलता में प्रखरता की प्रवृत्ति गुप्तकाल के अभ्युदय के साथ-साथ आरोहणशील स्थिति में आ सकी थी और शनैः-शनैः अनुवर्ती स्थलों पर मध्यकाल तक गतिशील ही रही। आलोचित ग्रन्थों को देखा जाय तो इनकी रचनाकाल का भी यही समय आता है। वैष्णव धर्म के विकास में अनेक परिस्थितियाँ उत्तरदायी रही हैं, पर इसमें सन्देह नहीं है कि इन उत्तरदायी और आधारभूत परिस्थितियों में पौराणिक पृष्ठों में निबद्ध

वैष्णव आख्यानों का विशिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण स्थान था। विष्णु पुराण के वैष्णव आख्यान में तथा भागवत और हरिवंश के समस्तरीय आख्यानों में, जैसा कि पिछले पृष्ठों पर दिखाया जा चुका है समानता और विषमता दोनों ही तत्त्व दृष्टिगोचर होते हैं। इन में समानतः तत्त्वों का विद्यमान होना सहज और स्वाभाविक ही है। पर जहाँ तक विषमता का प्रश्न है इसके दो प्रधान कारण माने जा सकते हैं। एक तो क्षेत्रीय विषमता और दूसरे काल विषयक विषमता इन दोनों क्षेत्रीय और कालविषयक विभेदों और आवश्यकताओं के कारण पौराणिकों को प्रचलित और नवीन मान्यताओं के द्योतक और पूरक स्थलों का समावेश करना पड़ा होगा। इसमें सन्देह नहीं है, पुराण संकलन कर्ताओं ने इसे अपेक्षित और अपरिहार्य माना होगा।

तृतीय अध्याय

वैष्णव कथानकों में वैदिक तत्व

विष्णु की वैदिक स्थिति की समीक्षा- इसमें सन्देह नहीं है कि प्राचीन भारत के प्रचलित धर्मों में वैष्णव धर्म का महत्त्वपूर्ण एवं विशिष्ट स्थान रहा है। इस धर्म को उद्भव और विकास की दृष्टि से देखा जाय तो ऐसा प्रतीत होगा कि विष्णु की उपासना का प्रारम्भ वैदिक काल में हो हो चुका था। वैदिक देव मण्डली में विष्णु का स्थान यदि सर्वश्रेष्ठ नहीं था तो कम से कम उन्नत और महत्त्वपूर्ण अवश्य था। ऋग्वेद के मंत्रों की समीक्षा करने पर यह सहज निष्कर्ष निकलता है कि प्रस्तुत देवता के कुछ विशेष लक्षणों एवं विशेषताओं का उद्भव ऋग्वेद काल में हो चुका था। जिन अनेक मंत्रों में विष्णु का नाम आया है अथवा जिन मंत्रों के अधिष्ठातृ देवता विष्णु हैं उनमें कहीं तो विष्णु के परिकल्पित क्रिया कलापों में उनके तीन पदों की चर्चा है तो कहीं उनकी व्यापनशीलता का ज्ञापन भी कराया गया है। इन विशिष्ट मंत्रों में विष्णु के लिए दो विशेष विवेचनीय शब्द प्रयुक्त किये गये हैं, जिनमें पहला शब्द "उरुगाय" है और दूसरा शब्द "उरुक्रम" है। जैसा कि अग्रिम पृष्ठों पर विवेचित करने की चेष्टा की जायेगी, यह दोनों ही शब्द विष्णु के आख्यान परक, कथानक परक और रूपक सापेक्ष पौराणिक स्वरूप के निर्धारण में अतीव महत्त्वपूर्ण रहे हैं। इन्हीं मंत्रों में विष्णु के उस तीसरे पद की चर्चा हुई है जिसे अमृत का स्रोत बताया गया है। अग्रिम पृष्ठों में इस बात को भी स्पष्ट किया जायेगा कि विष्णु के इन परमपद का विश्लेषण पुराण पृष्ठों में वैदिक पृष्ठभूमि में ही पौराणिक शैली एवं रूपरेखा के अनुसार किया गया है। इसी प्रसंग में ऋग्वेद के उस स्थल का उल्लेख किया जा सकता है जिसके अनुसार विष्णु का आवास उस विशेष स्थल पर स्थित है जहाँ स्वर्णिम सींगों से युक्त गायें चरण विचरण करती हैं और जिसे गायक ऋषि अपनी प्रार्थनाओं का विषय बनाते हैं।[1]

1- ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृंगा अयासः।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमव भाति भूरि ।।
ऋग्वेद, 1·154·6

अग्रिम विवेचनों में यह भी स्पष्ट किया जायगा कि विष्णु से सम्बन्धित पौराणिक कथानकों में विशेषतया श्रीकृष्ण का विवरण देने वाले इन वेदोत्तरवर्ती साहित्यिक स्थलों में प्रस्तुत वैदिक वर्णन को विस्तार देने का प्रयास किया गया है। विवेचन की अनुकूलता की दृष्टि से यहाँ इस बात का भी उल्लेख किया जा सकता है कि कभी-कभी वैदिक साहित्य के समीक्षक वेदों में वर्णित विष्णु के तीन पदों के तात्पर्य को विवाद का विषय बनाते रहे हैं। और्णवाभ ने अपनी समीक्षा में यह व्यक्त किया है कि विष्णु के प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय पद वस्तुतः सूर्य की ही उदय कालीन मध्यकालीन एवं अस्तकालीन स्थिति के बोधक हैं। और्णवाभ के इस मत का निराकरण करने की चेष्टा की गई है। मैकडानल का ऐसा निष्कर्ष रहा है कि विष्णु के तीनों पदों का तादात्म्य सूर्य के तीनों लोकों में स्थिति और स्थानान्तरण से स्थापित किया जा सकता है। दोनों मतों में किस मत विशेष को अधिक श्रद्धेय और आदरणीय माना जाय इस सन्दर्भ में निश्चय के साथ नहीं कहा जा सकता है। पर, इतना निर्विवाद है कि विष्णु के तीन पदों का मूल सम्बन्ध वस्तुतः सूर्य की ही विभिन्न दृश्यमान स्थितियों से ही है जिसे पुराण ग्रन्थों से भी विवृत करने की चेष्टा की गई है।

विवेचित वैदिक उल्लेख से इतना स्पष्ट हो जाता है कि सूर्य और विष्णु का तादात्म्य स्थापित करने की प्रवृत्ति वैदिक काल से ही आरम्भ

1- निरुक्त, 12·19

2- मैकडानल, वैदिक माइथालोजी, पृ0 38

हो चुकी थी और ऐसी स्थिति में यह भी कहा जा सकता है कि प्रारम्भ में विष्णु एक गौर देवता थे। इस प्रवृत्ति की प्रतिच्छाया पौराणिक स्थलों में दिखाई देती है जिनमें, जैसा कि आगे दिखाया जायगा कहीं-कहीं स्पष्टतया विष्णु को गौर देवता ही माना गया है। इसी वैदिक प्रवृत्ति के आधार पर आगे चलकर पौराणिक काल में तीनों लोकों को अपने तीनों पदों से नापने वाले वामन के कथानक का विकास हुआ।

पौराणिक स्थलों के विवेचन के पूर्व यहाँ इस बात का भी पुनः उल्लेख किया जा सकता है कि ऋग्वैदिक धार्मिक परिकल्पन में विष्णु का स्थान अपेक्षाकृत गौण ही था। ऋग्वेद[1] में विष्णु की स्तुति में जितनी ऋचाएँ उपलब्ध होती हैं उनकी संख्या इन्द्र, अग्नि तथा वरुण जैसे देवताओं की तुलना में कम है। ऋग्वैदिक वर्णन के अनुसार इन्द्र देवताओं की मण्डली के मूर्धन्य स्थान पर वर्तमान हैं।[2] जब तक इन्द्र की प्रेरणा नहीं है तब तक विष्णु भी सोमपान करने में तथा असुरों को परास्त करने में समर्थ नहीं होते हैं।[3] पर ऐसा प्रतीत होता है कि उत्तर वैदिक काल में विष्णु की श्रेष्ठता को स्वीकार कर लिया गया था। क्योंकि शतपथ ब्राह्मण में यह स्पष्टतया कहा गया है कि विष्णु सभी देवताओं की अपेक्षा उन्नत एवं श्रेष्ठ हैं।[4]

1- वी०एस० घाटे, लेक्चर्स ऑन ऋग्वेद, पृ० 154

2- देवो देवान् क्रतुनापर्यभूषत, स जनासइन्द्रः । ऋग्वेद, 2/12/1

3- मेकडानल, वैदिक माइथालोजी, पृ० 41, कीथ, दि रिलिजन एण्ड फिलासफी ऑफ दि वेद एण्ड उपनिषद्स, पृ० 109

अस्येदु मातः सवनेषु सद्यो मः पितुं पपिवांचार्वन्ना
मुषायद्विष्णुः पचतं सहीयान्विध्यद्वराहंतिरोअद्रिमस्ता । ऋग्वेद, 1/61/7

4- स विष्णुः प्रथमः प्राप। सदेवानां श्रेष्ठोऽभवत्तस्मादाहु-
विष्णुर्देवानां श्रेष्ठ इति । श०ब्रा०, 14/1/1/5

वैदिक परम्परा के अन्तर्गत विष्णु के तीन पदों के सन्दर्भ में जो विवरण प्राप्त होता है उस का पुनरावर्तन कुछ आवश्यक समयानुकूल प्रवृत्तियों के अनुसार पुराण साहित्य में अनेक स्थलों पर मिल जाता है। पुराणों में वामन अवतार पर तीन पद के परिकल्पन का प्रभाव दिखाई पड़ता है। विष्णु पुराण में एक स्थल पर कहा गया है कि उन महात्मा वामन विष्णु ने तीन डगों से सम्पूर्ण लोकों को जीत कर यह निष्कण्टक त्रिलोकी इन्द्र को दे दी।[1] भागवत पुराण में कहा गया है कि वामन भगवान् ने बलि से पृथ्वी को भिक्षा के रूप में माँग कर अपने बड़े भाई इन्द्र को स्वर्ग का राज्य दिया जिसे उनके शत्रुओं ने छीन लिया था।[2] हरिवंश में इसी से मिलता जुलता वर्णन प्राप्त होता है। उस समय हरि ने सम्पूर्ण त्रिलोकी को जीतकर और प्रमुख असुरों का वध करके वसुधा का राज्य इन्द्र को दे दिया।[3] जहाँ तक वैदिक परम्परा एवं पौराणिक परम्परा में सन्निकर्ष का प्रश्न है पौराणिक उल्लेखों को शतपथ ब्राह्मण के स्थलों के निकट रखा जा सकता है क्योंकि प्रस्तुत उत्तर वैदिक ग्रन्थ में भी विष्णु के तीन पदों के स्थापना को ऐसे विजय की संज्ञा दी गई है जिस के परिणाम में उन्होंने देवताओं की अधिकार सम्पन्न किया था।[4]

1- त्रिभिः क्रमैरिमाँल्लोकाजित्वा येन महात्मा।
पुरन्दराय त्रैलोक्यं दत्तं निहत कण्टकम ।। विष्णु पु0 ,3/1/43

2- एवं बलेर्मही राजन भिक्षित्वा वामनो हरिः ।
ददौ भ्रात्रे महेन्द्राय त्रिदिवं यत परैहृतम् ।। भागवत पु0, 8/23/19

3- जित्वा लोकत्रयं कृत्स्नं हत्वा चासुरपुङ्गवान् ।
ददौ शक्राय वसुधां हरिर्लोकनमस्कृतः ।। हरि0, 3/72/31

4- अथाक्रमते । विष्णुस्त्वाक्रमतामिति .....सदेवेभ्य इमां
विक्रान्तिं विधि क्रमे ।
शत0 ब्रा0, 1/1/2/13

विष्णु का परमपद- विगत अनुच्छेदों में इस बात का विश्लेषण किया जा चुका है कि ऋग्वेद के मंत्र द्रष्टा ऋषि ने विष्णु पद का प्रसंग दिया है तथा इसे अमृत का स्रोत बताया गयाहै। उल्लेखनीय है कि लगभग वही वर्णन पौराणिक स्थलों में भी प्राप्त होता है जिनमें वैदिक सन्दर्भ में कुछ हेर फेर लाकर आख्यान एवं रूपक की प्रबलता अधिक दिखाई देती है। विष्णु पुराण में विष्णु पद, विष्णुपाद एवं विष्णु के परमपद इन तीनों शब्दों की चर्चा हुई है। विष्णु पाद का उल्लेख भूमि संस्थान विवरण में तथा विष्णु पद का निर्देश ज्योतिषचक्र निरूपण में हुआ है। इन्हें गंगा का स्रोत बताया गया है। विष्णु पादोद्भवा गंगा जो चन्द्रमण्डल के चारों ओर से स्वर्गपुरी से ब्रह्मपुरी में गिरती हैं।[1] विष्णु पुराण में एक दूसरे स्थल पर कहा गया है कि त्रिलोकी को पवित्र करने में समर्थ वह गंगा जिस से उत्पन्न हुई हैं वही भगवान का तीसरा "परमपद" है।[2] विष्णु पुराण की भाँति भागवत पुराण में भी गंगावर्णन भुवनकोश के स्थलों में ही प्राप्त होता है इन्हीं स्थलों में गंगा का उद्भव विष्णु पद से वर्णित किया गया है।[3]

1- विष्णु पाद विनिष्क्रान्ता प्लावयित्वेन्दु मण्डलम् ।
समन्ताद ब्रह्मणः पुर्यगङ्गा पतति वैदिवः ।।
विष्णु पु0, 2/2/32

2- तद् प्रभवति ब्रह्मन्सर्वपापहरा सरित।
गङ्गा देवाङ्गनामनुलेपनपिंजरा ।।
वही, 1/8/110

3- भागवत पु0, 5/17/1

इतना ही नहीं विष्णु पुराण में विष्णु के परमपद को दार्शनिक दृष्टिकोण से भी समझाने का प्रयत्न किया गया है। विष्णु पुराण में एक स्थल पर कहा गया है कि भक्ति और भोग्य, स्रष्टा और सृज्य तथा कर्ता और कार्य के रूप में जो स्वयं ही है, वही विष्णु पद है। उस विष्णु पद की निम्नलिखित विशेषतायें हैं- वह पद विशुद्ध, बोध स्वरूप नित्य अजन्मा, अक्षत, अव्यय और अविकारी है वह सदा निर्मल रहता है, वह न स्थूल है न सूक्ष्म और न किसी विशेषण का विषय है इस परमपद का साक्षात्कार पाप पुण्य आदि के क्षीण हो जाने पर केवल योगी लोग ही कर पाते हैं।[1] विवेचन की अनुकूलता की दृष्टि से यहाँ उल्लेखनीय है कि परमपद के सन्दर्भ में पौराणिक विवरण शतपथ ब्राह्मण के लगभग समान ही चलता है जिसके अनुसार विष्णु का परमपद आकाश में नेत्र के समान जड़ा हुआ है जिस को केवल धीमान् व्यक्ति ही देख पाते हैं।[2]

ऋग्वेद के एक ही सूक्त में, "गिरिक्षित" और "गिरिष्ठा" विशेषण विष्णु के लिए प्रयुक्त हुये हैं।[3] यहाँ विचारणीय है कि यद्यपि पौराणिक विवरण

1- भोक्तारं भोग्यभूतं च स्रष्टारं सृज्यमेव च ।
कार्यकर्तृस्वरूपं तं प्रणताः स्म परं पदम् ।।
विशुद्ध बोधवन्नित्यमजमक्षयमव्ययम् ।
अव्यक्तमविकारं यत्त द्विष्णोः परमंपदम् ।।
न स्थूलं नच सूक्ष्मं यन्न विशेषण गोचरम् ।
तत्पदं परमं विष्णोः प्रणमामः सदामलम् ।।
यद्योगिनः सदोद्युक्ताः पुण्यपापक्षयेऽक्षयम् ।
पश्यन्ति प्रणवे चिन्त्यंतविष्णोः परमं पदम् ।।
विष्णु पु०, 1/9/50-54

2- तद्विष्णोः परमं पदं सदापश्यन्ति सूरयः दिवीव चक्षुराततम्.........
। श०ब्रा०, 3/7/1/18

3- प्र तद्विष्णुस्तवते वीर्येण मृगोन भीमः कुचरो गिरिष्ठाः । ऋग्वेद, 1/154/2

में गिरि का सम्बन्ध शिव से किया गया है तथा एतदर्थ पुराणों में गिरिश (गिरिशेते) शब्द शिव के विशेषणार्थ प्रयुक्त हुआ है, तथापि यह एक सन्देह-रहित तथ्य माना जा सकता है कि पुराणों ने उक्त वैदिक परम्परा को विष्णु के सन्दर्भ में आख्यान के माध्यम से स्पष्ट करने की चेष्टा किया है। इस निष्कर्ष के समर्थन में विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण का उस सुप्रचलित कथा का उल्लेख कर सकते हैं जिसके अनुसार उन्होंने अपने पराक्रम से इन्द्र के दर्प को भग्न किया था तथा इसके लिए उन्होंने उस गिरि का समाश्रय लिया था जिसे पुराणकारों ने गोवर्द्धन की संज्ञा दी है। ऐसी स्थिति में वैष्णवधर्म के प्रसंग में गोवर्धन धारण करने की कथा को "गिरिष्ठा" और गिरिक्षत" का ही पौराणिक अवतरण माना जा सकता है। जिस विशेष वैदिक मंत्र में ये शब्द मिलते हैं, उसमें विष्णु की स्तुति का कारण उनका पराक्रम माना जा सकता है (प्रतद्विष्णुः स्तवते वीर्येण------)। यह नितान्त सम्भव है कि गोवर्द्धन गिरि धारण के कथानक की रचना के समय पुराणकार ने इसी वैदिक मंत्र को अपने ध्यान में रखा था

<u>विष्णु शब्द की उत्पत्ति पर वैदिक परम्परा का प्रभाव</u>-विष्णु पुराण में "विष्णु" शब्द की व्युत्पत्ति का आधार प्रवेशन के अर्थ में प्रयुक्त "विश्" धातु माना है और यह कहा गया है कि यह अखिल विश्व इन्हीं की शक्ति से व्याप्त है।[1] इस बात का उल्लेख विगत अनुच्छेदों में किया जा चुका है कि विष्णु की व्यापनशीलता सम्बन्धी धारणा का आविर्भाव वैदिक काल में ही हो चुका था तथा आचार्य सायण ने ऋग्वेद के मंत्रों में उपलब्ध विष्णु

1- यस्मादिष्ट मिदं विश्वं तस्य शक्तया महात्मनः।
   तस्मात्स प्रोच्यते विष्णुर्विशेर्धातोः प्रवेशनात् ।।

विष्णु पु0, 3/2/45

शब्द का अर्थ व्यापनशील माना है।[1]

<u>विष्णु का बल वैभव तथा विष्णु एवं इन्द्र का साहचर्य-</u> वेद में सबल एवं शक्ति सम्पन्न देवता के रूप में विष्णु का सूत्रपात हो गया था। जहाँ तक इन्द्र के साथ उनके साहचर्य का सम्बन्ध है वे किसी भी वैदिक देवता से पीछे नहीं हैं। इन्द्र के वे परम मित्र हैं।[2] वे इन्द्र की ही भाँति समान वीर्यशाली एवं शक्ति शाली देवता हैं। विष्णु ने अपने तीनों पदों का क्रमण इन्द्र की ही शक्ति के द्वारा किया था।[3] वृत्र हनन के पूर्व इन्द्र ने विष्णु से कहा, सखा तुम लम्बे-लम्बे डग धरो।[4] विष्णु के साथ इन्द्र ने वृत्र की हत्या की।[5] विष्णु और इन्द्र ने एक साथ दास पर विजय प्राप्त की।[6] शम्बर के 99 किलों को तोड़ डाला और वर्चिन के साथियों को धराशायी किया।[7] मित्रता के कारण ही इन्द्र विष्णु के समीप सोमपान करते हैं और इस प्रकार उनकी विष्णय शक्ति को बढ़ाते हैं।[8] उपर्युक्त इन्द्र और विष्णु के साहचर्य सम्बन्धी ऋग्वैदिक

1- विष्णाव्यापिन शीलस्य ।
ऋग्वेद, 1/15/4 पर सायण

2- इन्द्रस्य युज्यः सखा ।
ऋग्वेद, 1/22/19

3- यदा ते विष्णु रार्जसा त्रीणिपदाविचक्रमे ।
वही, 8/12/27

4- अथाब्रवीद् वृत्रमिन्द्रोहनिष्यन्त्सखे विष्णोवितरं विक्रमस्व ।
वही, 4/18/11

5- आहिं यद वित्र मघो ववृवींसं हन्न जीषिन विष्णुना सचानः। वही, 6/20/2

6- दासस्यचिद् वृषशिप्रस्यमाया जघनथुर्नरापृतनाज्येषु । वही 7/99/4

7- इन्द्राविष्णू दृंहिताशम्बरस्य नव पुरो नवतिं चश्नथिष्टम ।
शतं वर्चिनः सहस्त्रं च साकं हथो अप्रत्य सुरस्य वरीन । वही, 7/99/5

8- अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यंशवः । वही, 8/3/8

स्थलों के अध्ययन के फलस्वरूप बारनेट इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि दोनों देवताओं का सम्बन्ध वैदिक लोगों की राय में इस बात की ओर संकेत करता है कि इन्द्र का शक्तिपूर्ण रक्त विष्णु की शिराओं में समाविष्ट है।[1] किन्तु यहाँ पर विचारणीय यह है कि इन्द्र के स्वरूप की उच्छृंखलता और विनाशक तत्व विष्णु के व्यक्तित्व का अंग नहीं बन पाया।

वैदिक परम्परा के प्रभाव के कारण पुराण में भी विष्णु इन्द्र साहचर्य विषयक स्थल पाये जाते हैं। विष्णु पुराण के अनुसार इन्द्र ने सौ यज्ञों के द्वारा विष्णु को प्रसन्न कर देवत्व की प्राप्ति की।[2] बलि के सम्बन्ध में इस बात का उल्लेख है कि विष्णु को सन्तुष्ट कर उसने एक मन्वन्तर तक निर्विरोध रूप में इन्द्रत्व का उपभोग किया[3]। इन्द्र ने कृष्ण का रूप धारण करने वाले विष्णु की आज्ञा से सुधर्मा नामक सभा को यदुवंशियों को समर्पित किया।[4] देवासुर संग्राम के अवसर पर असुरों की हत्या करने के लिए तैयार राजा पुरंजन के लिए इन्द्र ने वृष का रूप धारण किया था पर, असुरों के मारने वाले राजा का तेज स्वयं विष्णु से प्राप्त हुआ था।[5] विष्णु पुराण में दूसरे स्थल पर कहा गया है

1- बार्नेट, हिन्दू गाड्स एण्ड हीरोज, पृ0 41

2- इष्टवा यमिन्द्रो यज्ञानाम् शतेनामर राजताम् ।
अवाप तमनन्तादिमहं द्रक्ष्यामि केशवम् ।। विष्णु पु0, 5/17/7

3- यत्राम्बु विन्यस्य बलिर्मनोज्ञानवाप भोगान्वसुधातलस्थः ।
तथा मरत्वं त्रिदशाधिपत्वं मन्वन्तरं पूर्णमपेतशत्रुम् । वही, 5/17/30

4- इत्युक्तः पवनोगत्वा सर्वमाह शचीपतिम् ।
ददौ सोऽपि सुधर्माख्यां सभां वायोः पुरन्दरः ।। वही, 5/21/16

5- ततश्च शतक्रतोर्वृषरूपधारिणः ----- अच्युतस्यतेजसा प्यायितो ।
वही, 4/2/31

कि शङ्ख में विष्णु का रूप समन्वित है। इसी रूप में वे पृथ्वी का पालन करते हैं[1]। हरिवंश में गोवर्द्धन धारण के प्रसंग में कहा गया है कि इन्द्र द्वारा कृष्ण का शक्ति परीक्षा के पश्चात् इन्द्र ने कृष्ण का अभिषेक कर के गोविन्द नाम से सम्बोधित किया।[2] भागवत पुराण में इसी से मिलता जुलता वर्णन पाया जाता है[3] ऋग्वेद में इन्द्र को विष्णु की अपेक्षा श्रेष्ठ माना गया है। इस प्रकार यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि ये पौराणिक स्थल वैदिक परम्परा में परिवर्तन के सूचक हैं। वैदिक परम्परायें वेद में बीज के रूप में सन्निहित है परन्तु उनका विशेष विकास पुराणों में ही हुआ ।

विष्णु एवं सूर्य में साहचर्य के निदर्शक स्थलों की समीक्षा-

ऋग्वेद में विष्णु एवं सूर्य में साहचर्य स्थापित करने वाले कई मंत्रों का उल्लेख है। एक मंत्र में सूर्य को जगत की आत्मा कहा गया है[4]। जिस प्रकार आत्मा जगत में व्याप्त है वैसे ही सूर्य भी जगत में व्याप्त है। प्रस्तुत वर्णन का सम्बन्ध विष्णु से स्थापित किया जा सकता है क्यों कि विष्णु को जगत में व्यापनशील बताया गया है। ऋग्वेद के एक ऐसे स्थल का विश्लेषण किया जा सकता है

1- शङ्खादि रूपी परिपाति विश्वम्

विष्णु पु०, 4/1/87

2- अहं किलेन्द्रो देवानां त्वं गवामिन्द्रतां गतः।

गोविन्द इति लोकास्त्वां स्तोष्यन्ति भुवि शाश्वतम् ।

हरि०, 2/19/45

3- सर्वं कृष्ण मुपामन्त्र्य सुरभिः पयसाऽऽत्मनः ।

जलैराकाशगङ्गाया ऐरावत करोद्धृतैः ।

इन्द्रःसुरर्षिभिः साकं नोदितो देवमातृभिः ।

अभ्यषिञ्चत दाशार्हं गोविन्द इति चाभ्यधात् ।।

भागवत पु०, 10/27/22-23

4- सूर्य आत्मा जगत स्तस्थुषश्च ।

ऋग्वेद, 1/115/1

जहाँ सूर्य की उत्पत्ति का कारण इन्द्र और विष्णु की सह शक्ति को माना गया है।[1]

पुराणों में भी विष्णु एवं सूर्य में साहचर्य सम्बन्धित अनेक स्थलों का उल्लेख किया जा सकता है। विष्णु में एक स्थल पर कहा गया है कि सूर्य का मण्डल विष्णु शक्ति से उत्तेजित होता है।[2] एक दूसरे स्थल पर कहा गया है कि सूर्य का स्वतः तेज वैष्णवी तेज से संयुक्त था। सूर्य की पत्नी संज्ञा इस तेज को सहन सकीं। अतएव विश्वकर्मा ने इसे काटने का प्रयत्न किया किन्तु वे उस अक्षुण्ण तेज को अष्टमांश ही क्षीण कर सके।[3] अतएव यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि प्रस्तुत पौराणिक स्थल वैदिक परम्परा में परिवर्तन के द्योतक हैं। कारण यह है कि वैदिक परिकल्पन के अनुसार सूर्य की उत्पत्ति में इन्द्र और विष्णु के साहचर्य का योगदान रहता है। इनके विपरीत विष्णु अपनी शक्ति से एकाकी और एकान्तिक रूप में सूर्य की उत्पत्ति को प्रेरित करते हैं। अन्य पौराणिक स्थलों द्वारा भी यह सिद्ध किया जासकता है कि सूर्य की अपेक्षा विष्णु अधिक महत्वपूर्ण देवता हैं। विष्णु पुराण में एक स्थल पर कहा गया है कि आदित्य विष्णु की उपासना करते थे।[4] दूसरे स्थल पर विष्णु को आदित्यों का नायक अथवा अधिपति बताया गया है।[5] इतना ही नहीं विष्णु सूर्य से ही बड़े नहीं हैं

1- ऋग्वेद, 7/99/4

2- सवितुर्मण्डले ब्रह्मन्विष्णु शक्त्युपबृंहिता: । विष्णु पु0, 2/10/19

3- विष्णु पु0, 3/2/3, 8, 9, यस्माद्वैष्णवं तेज: शातितं विश्वकर्मणा।
वही, 3/2/10

4- आदित्य———————सदाभिष्टुतो—————— विष्णु ।
वही, 4/11/2

5- आदित्यानां पतिं विष्णुं ।
वही, 1/22/3

अपितु वे पूषा, अग्नि, अश्विनीकुमार, वसु, मरुत आदि सभी देवताओं से भी बड़े हैं। विष्णु पुराण के अनुसार पूषा, अग्नि, अश्विनीकुमार, वसु, मरुत आदि सभी देवता असुरों से भयभीत होकर विष्णु की शरण लेते हैं।[1] विष्णु उनकी सुरक्षा के लिए उद्यत हैं। क्योंकि इन सभी देवताओं में विष्णु की ही प्रतिष्ठा है।[2] अन्य स्थल पर कहा गया है कि अग्नि, आदित्य, मरुदण, वायु आदि सभी देवता विष्णु के ही अंश हैं।[3]

विष्णु से गायों का सम्बन्ध- वैदिक मंत्रों के सम्बन्ध में विष्णु से गायों का सम्बन्ध, वैदिक एवं पौराणिक परम्पराओं से परस्पर समन्वय एवं विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण माना जा सकता ह। ऋग्वेद के एक मंत्र में स्पष्ट रूप से विष्णु को "गोप" शब्द से अभिहित किया गयाहै।[4] इसी प्रकार एक दूसरे मंत्र में विष्णु के उस आवास का उल्लेख किया गया है जहाँ प्रशस्त सींगों वाली गायें विचरण करती हैं।[5] यह एक संदेह रहित सत्य है कि वैदिक संस्कृति कृषि प्रधान और गोचारण प्रधान थी। इसका सम्यक अवतरण, कुछ परिवर्द्धनों के

1- सर्वादित्यैः समंपूषा पावकोऽयं सहाग्निभिः ।।
अश्विनौ वसवश्चेमे सर्वे चैते मरुद्गणाः ।।
साध्या विश्वे तथा देवा देवेन्द्रश्चायमीश्वरः ।।

प्रणामप्रवणा नाथ दैत्यसैन्यैः पराजिताः ।
शरणं त्वामनुप्राप्ताः समस्ता देवतागणाः ।। विष्णु पु0, 1/9/63-65

2- यो ऽयं तवाग्रतो देव समीपं देवता गणः
सत्यमेव जगत्स्रष्टायतः सगवती भवान् ।। वही, 1/9/70

3- तदंशभूतस्सर्वेषां समूहो वस्सुरोत्तमाः ।
आदित्या मरुतस्साध्या रुद्रावस्वश्विवह्नयः ।। वही, 5/1/16

4- त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णु र्गोपा अदाभ्यः । ऋग्वेद,1/22/18

5- द्रष्टव्य, पृष्ठांक, 130

साथ पौराणिक संस्कृति में हुआ था। पौराणिक पंक्तियों में विष्णु के अवतार श्री कृष्ण को बहुविध लीलाओं में गोवारण का उल्लेख बहुधा एवं बहुश: प्राप्त होता है। इसका निर्देश मात्र विष्णु पुराण में मिलता है तथा दसो का विवरण हरिवंश की पंक्तियों में मिलता है, पर वर्णन विस्तार भागवत के स्थलों में प्राप्त होता है। विष्णु के लिए ऋग्वेद में गोप शब्द का प्रयोग इस लिए महत्वपूर्ण मान सकते हैं कि इस शब्द को श्रीकृष्ण के सन्दर्भ में पौराणिक स्थलों में व्यापकता देने की चेष्टा की गई है। धार्मिक गठन के अतिरिक्त पौराणिक आर्थिक गतिविधियों में गोपालन की विशेष महत्ता थी, इस का समर्थन विष्णु पुराण के एक विशेष स्थल के द्वारा होता है। अपनी "वार्ता" सम्बन्धी विशेषता को व्यक्त करते हुये श्री कृष्ण तथा उनके अनुयायी अन्य गोप जन अतीव गर्व के साथ कहते हैं कि कृषि तो कर्षकों की वृत्ति है तथा "विपणिजीवी" वाणिज्य का अनुसरण करते हैं, पर उन की वृत्ति तो "गोपालन" है जो उनके लिए श्रेष्ठ घोषित की गई है।[1] वार्ता का तात्पर्य कृषि से उत्पन्न ओषधियों से लिया गया है। विष्णु पुराण में वर्णित है कि जब मनुष्यों ने वार्ता का उपाय किया, उस समय विभिन्न प्रकार के अनाज उत्पन्न हुये।[2] वार्ता के विशेष अर्थ के अन्तर्गत कृषि वाणिज्य और पशुपालन आते हैं। आलोचित विष्णु पुराण में वर्णन आता है कि जिस समय जनसमुदाय पृथु से वृत्ति की याचना किया और उनके संरक्षण में कृषि, पशुपालन, वाणिज्य का विकास हुआ।[3]

1- कर्षकाणां कृषिर्वृत्तिः पण्यं विपणिजीविनाम्।
स्माकं गौः परावृत्तिर्वार्ता भेदैरियं त्रिभिः ।। विष्णु पु0, 5/10/29

2- विष्णु पु0, (1/6/20-26) (वार्त्तोपायं ततश्चक्रुः)

3- न सस्यानि न गोरक्ष्यं न कृषिर्न वणिक्पथः

वही, 1/13/67, 68-84

विष्णु पुराण की भाँति भागवत पुराण में वार्त्ता का तात्पर्य बतलाते हुये कृष्ण भगवान् कहते हैं कि वृत्ति चार प्रकार की होती है- कृषि, वाणिज्य, गोरक्षा और कुसीद (ब्याज लेना)। हम लोग उन चारों में से केवल गोपालन ही सदा से करते आये हैं।[1] विष्णु और भागवत पुराण की भाँति हरिवंश में भी वार्त्ता का तात्पर्य स्पष्ट रूप से बताया गया है। भगवान् कहते हैं कि किसानों की जीविका है खेती, व्यापार से जीविका निर्वाह करने वाले वैश्यों की जीविका वृत्ति है खरीद बिक्री, और हम लोगों की सर्वोत्तम वृत्ति है गौओं का पालन। ये वार्त्तारूप विद्या के तीन भेद कहलाते हैं।[2] अन्य ग्रन्थों के साथ यदि उपर्युक्त पौराणिक उद्धरणों का अध्ययन किया जाय तो इसी तात्पर्य के प्रतिपादक स्थल प्राप्त होते हैं। उदाहरणार्थ, रामायण में वार्त्ता के अन्तर्गत कृषि और पशुपालन उपलब्ध होता है।[3] इसके विपरीत कौटिल्य अर्थशास्त्र,[4] अमरकोष,[5] शुक्रनीति[6] और महाभारत[7] में इस का तात्पर्य कृषि, पशुपालन और वाणिज्य से लिया गया है।

1- कृषि वाणिज्य गो रक्षा कुसीदं तुर्यमुच्यते।
वार्त्ता चतुर्विधा तत्र वयं गो वृत्तयो अनिशम् ।। भागवत पु0, 10/24/21

2- कर्षकाणां कृषिर्वृत्तिः पण्यं विपणिजीविनाम्।
गावोऽस्माकं परा वृत्तिरेतत् त्रैविद्यमुच्यते ।। हरि0,

3- कच्चित्ते दयिताः सर्वे कृषि गोरक्षा जीविनः ।
वार्तायां संश्रितस्तात लोकोऽयं सुखमेधते । अयोध्याकाण्ड, 100/48

4- कृषि पशुपाल्ये वाणिज्या च वार्ता ।
धान्य पशुहिरण्यकुप्यविष्टिप्रदानादोपकारिकी ।
तथा स्वपक्षं परपक्षं च वशीकरोति को दण्डाभ्याम् । कौटिल्य अर्थशास्त्र, 1/4

5- अमरकोष, 2/9/1-2

6- कुसीद कृषि वाणिज्यं गोरक्षावार्तयोच्यते
सम्पन्नो वार्तयासाधुर्न वृत्तेर्भय मृच्छति । शुक्र, 1/3/11

7- वार्त्तामूलोऽयं लोकस्य तया वैधार्यते सदा
तत्सर्वं वर्तते सम्यग्यथारक्षति भूमिपः । महाभारत वनपर्व, 67,35

द्रष्टव्य के0वी0 आर आयंगर, ऐस्पेक्ट्स ऑव इण्डियन इकोनामिक थाट, पृ0 14-14, के0टी शाह, ऐंशिण्ट फाउन्डेशन ऑव इकोनामिक इन इण्डिया, पृ0 31-32

विष्णु और यज्ञ- ब्राह्मण युग में विष्णु की एकता यज्ञ के साथ सम्पन्न हुई है। शतपथ ब्राह्मण में एक स्थल पर कहा गया है कि यज्ञ पुरुष सर्वप्रथम यज्ञ फल समझ गये और उसके द्वारा देवताओं के सिर मौर बन गये।[1] उनका सिर उन्हीं को धनुष के द्वारा कट कर सूर्य बन गया। तैत्तिरीय आरण्यक अपना और जोड़ देता है कि अश्विनियों ने यज्ञ के सिर को पुन: स्थापित किया और अब देवतापूर्ण रूप से याज्ञिक हविर्दान करके स्वर्ग के उपभोक्ता बनें।[2]

ब्राह्मण साहित्य की भाँति पुराण में भी विष्णु के सन्दर्भ में उनकी याज्ञिक महत्ता के द्योतक अनेक स्थलों का उल्लेख किया जा सकता है। विष्णु पुराण में यज्ञपति, यज्ञ, व षट्कार तथा ओंकार विशेष विष्णु के लिए प्रयुक्त किए गये हैं।[3] विष्णु पुराण में एक दूसरे स्थल पर विष्णु भगवान को परमपुरुष, यज्ञ और योगेश्वर कहा गया है।[4] पुन: एक स्थल पर कहा गया है कि जम्बू द्वीप में यज्ञमय, यज्ञपुरुष भगवान् विष्णु का सर्वदा यज्ञों द्वारा यजन किया जाता है। इस के अतिरिक्त अन्य द्वीपों में उनकी और प्रकार से उपासना होती है।[5]

1- श0ब्रा0, 1/4/1/1

2- ते देवा अश्विनावब्रुवन। भिषजौ वै स्थ: इदं यज्ञस्य शिर: प्रतिधत्तमिति। ताव ब्रूतां वार्वृणवहे। ग्रह एव नावयापि गृह्यतामिति ताभ्यामेतमाश्विन मगृह्वन। तावेतद् यज्ञस्य शिर: प्रत्यधत्ताम। यत्प्रवर्ग्य:। निरुशीर्ष्णायिज्ञेन यजमाना: अवाशिषोऽरुन्धत। अभिस्वर्गं लोकमजयन।
तै0 आ0, 5/1/56

3- परापरात्मन्विश्वात्मंजय यज्ञपतेऽनघ
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोङ्कारस्त्वमग्नय: ।। विष्णु पु0, 1/4/22

4- यो यज्ञपुरुषो यज्ञो योगेशः परम: पुमान् । वही, 1×11/48

5- पुरुषैर्यज्ञपुरुषो जम्बू द्वीपे सदेज्यते ।
यज्ञैर्यज्ञमयो विष्णुरन्यद्वीपेषु चान्यथा ।। वही, 2/2/21

विष्णु के सन्दर्भ में उन को याज्ञिक महत्ता के द्योतक उक्त शब्दों का समाहार पौराणिक कथानकों में भी प्राप्त होता है। इनकी समीक्षा से यह प्राय: व्यक्त हो जाता है कि पूर्ववैदिक काल में यज्ञ के सम्बन्ध में जो महत्ता इन्द्र को प्रदान की गई थी तथा जिसे उत्तर वैदिक काल में विष्णु से सम्बन्धित करने का प्रयास किया गया था, उस परम्परा को पौराणिक स्थलों के माध्यम से अधिकाधिक परिपुष्ट करने का प्रयास किया गया था। इस प्रसंग में विष्णु पुराण का अक्रूर आख्यान विशेषतया उल्लेखनीय है। अक्रूर जी श्री कृष्ण भगवान् की स्तुति करते हुये कहते हैं कि समस्त पुरूषों के द्वारा यज्ञों में जिन अखिल विश्व के आधारभूत पुरूषोत्तम का यजन किया जाता है, आज उन्हीं जगत्पति का दर्शन करूँगा।[1]

भागवत में यज्ञ का सम्बन्ध न केवल विष्णु से ही अपितु कृष्ण से भी स्थापित किया गया है। भागवत पुराण में एक स्थल पर विष्णु को यज्ञों का अधिपति कहा गया है।[2] एक दूसरे स्थल पर कहा गया है कि यह सम्पूर्ण विश्व कृष्ण का ही रूप है। भगवान् कृष्ण ही अग्नि आहुति और मंत्रों के रूप में हैं। ज्ञान मार्ग और कर्म मार्ग ये दोनों ही कृष्ण की प्राप्ति के हेतु हैं।[3] पुन: एक स्थल पर आया है कि देशकाल, पृथक्-पृथक् सामग्रियाँ उन-उन कार्यों में नियुक्त मंत्र, अनुष्ठान की पद्धति, ऋत्विज, अग्नि, देवता, यजमान, यज्ञ और धर्म सब

1- यज्ञेषु यज्ञपुरूष: पुरूषै: पुरूषोत्तम:
इज्यते तोऽखिलाधारस्तं द्रक्ष्यामि जगत्पतिम् ।।
इष्टा यमिन्द्रो यज्ञानां शतेनामरराजताम् ।
अवाप तमनन्तादिमहं द्रक्ष्यामि केशवम् ।। विष्णु पु0, 5/17/6-7

2- यच्छ्रद्धया यजेद् विष्णुं सर्वयज्ञेश्वरं मखै: ।
भागवत पु0, 10/84/35

3- यदात्मकमिदं विश्वं क्रतवश्च यदात्मा: ।
अग्नि राहुतयोमन्त्रा: सांख्यं योगश्च तत्पर: ।।
वही, 10/74/20

भगवान के ही स्वरूप हैं । विष्णु पुराण और भागवत की भांति हरिवंश में भी एक स्थल पर कहा गया है कि विष्णु यज्ञ, यज्ञों द्वारा पूजनीय तथा हविष्य रूप है। हव्यों द्वारा सुसंस्कृत है, ध्रुव है, यज्ञपात्र है, यज्ञों के अंगभूत उपकरण हैं और इन सबसे परे भी हैं।[1]

गर्भरक्षक के रूप में विष्णु का परिकल्पन- वैदिक वर्णनों की यह भी विशेषता रही है कि इनमें विष्णु का परिकल्पन गर्भ-रक्षक के रूप में किया गया है। इस प्रसंग में ऋग्वेद के एक विशेष स्थल का उल्लेख किया जा सकता है। ऋग्वेद के एक सूक्त में विष्णु को गर्भों का रक्षक कहा गया है।[2]

वर्णन सम्बन्धी महत्ता की दृष्टि से यहाँ पहले भागवत का ही उल्लेख किया जा सकता है। इस के तत्सम्बन्धी वर्णन पर वैदिक परम्परा का साक्षात प्रभाव दिखाई देता है। भागवत पुराण में एक स्थल पर कहा गया है कि भगवान् विष्णु ने उत्तरा के गर्भ को पाण्डवों की परम्परा को चलाने के लिये अपनी माया के कवच से ढक दिया। विष्णु पुराण में उक्त परम्परा का निर्वाह कृष्णावतार के प्रसंग में प्राप्त होता है। प्रस्तुत वर्णन वैदिक परम्परा के द्वारा आंशिक रूप में ही प्रभावित कहा जा सकता है। विष्णु पुराण में एक स्थल पर कहा गया है कि देवताओं से प्रार्थित होने पर भगवान् ने कहा कि वसुदेव की भार्या देवकी के आठवें गर्भ से मेरा (श्याम केश) अवतार लेगा। यही वर्णन

1- नमो यज्ञाय अज्याय हविषे हव्यसंस्कृते ।
नमः ध्रुवाय पात्राय यज्ञाङ्गायपराय च ।। हरि0,3/90/22

2- विष्णुर्योनिकल्पयतु । ऋग्वेद, 10/184/1

3- अन्तः स्थतः सर्वभूतानामात्मायोगेश्वरोहरिः ।
स्वमायया55वृणोद्गर्भं वैराट्याः कुरुतन्तवे ।। भागवत पु0, 1/8/14

4- वसुदेवस्य या पत्नी देवकी देवतोपमा।
तत्रायमष्टमो गर्भो मत्केशो भविता सुरा: ।। विष्णु पु0, 5/1/63

भागवत पुराण में निरूपित कृष्णाख्यान में प्राप्त होता है। भागवत पुराण में भगवान ने कहा है कि मैं अंशरूप से कश्यप के वीर्य में प्रवेश करूँगा और तुम्हारा पुत्र बनकर तुम्हारी सन्तान की रक्षा करूँगा[1]।

विष्णु के अवतार पर वैदिक परम्परा का प्रभाव- वैदिक परम्पराओं के अन्तर्गत विष्णु के अवतार भी उल्लेखनीय है। अवतार सम्बन्धी भावना का मूल ऋग्वेद में मिलता है।[2] जहाँ से ये संगृहीत करके पुराणों में व्यवस्थित किये गये हैं। मत्स्य अवतार की वैदिक कथा शतपथ ब्राह्मण[3] में पाई जाती है। जलप्लावन से इस कथा का प्रारम्भ होता है। आलोचित विष्णु एवं भागवत पुराण[5] में मत्स्यावतार का विवेचन किया गया है। कूर्मावतार का वर्णन तैत्तिरीय आरण्यक[6] तथा शतपथ ब्राह्मण[7] में भली भाँति पाया जाता है। कूर्म प्रजापति का ही स्वरूप बतलाया गया है। पुराणों में भागवत पुराण[8] इस कूर्म को भगवान् विष्णु

1- शवांशेन पुत्र त्वमुपेत्यतेसुतान्
गोप्तास्मि मारीचतपस्यधिष्ठित: ।
भागवत पु0, 8/17/18

2- आर0जी0 भण्डारकर ,वैष्णविज्म,शैविज्म एण्ड अदर माइनर रिलीजस सिस्टम्स, पृ0 58

3- मनवे हवै प्रात: ----- मत्स्य पाणीऽआपेदे । सहास्मैव्वाच मुवाद। बिभृहि मापारिष्यामि त्वेति कस्माना पारयिसोतत्योधऽइमा: सर्वा: प्रजा: निर्वोढा ततस्त्वा पारयितास्मीति ।
श0ब्रा0 1/8/1/1

4- मत्स्यकूर्मवराहाश्वसिंहरूपादिभि: स्थितिम् । विष्णु पु0, 5/17/10

5- रूपं स ज गृहे मात्स्यं चाक्षुषोदधिसम्प्लवे।
नाव्यारोप्यमहीमय्यामपाद्वैवस्वतं मनुम ।। भागवत पु0, 1/3/15

6- अनन्तस्तत: कूर्मभूतपर्यन्तं तम ब्रवीत-ममवै त्वङ्मांसात समभूतनेत्य ब्रवीत पूर्व-तत् पुरुषस्य पुरुषत्वम्।सहस्त्र शीर्षा: पुरुष: मेवाहभिहासमिति सहस्त्राक्ष:सहस्त्रपात भूत्वोदतिष्ठत । तैत्तिरीय आरण्यक, 1/23/3

7- स यत कूर्मो नाम एतदे वैरूपं कृत्वा प्रजापति: प्रजाऽसृजत । श0ब्रा0, 7/5/1/5

8- भागवत पु0, 8/7/89

का द्वितीय अवतार माना है। वराह अवतार का प्रसंग तैत्तिरीय संहिता[1] तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण[2] में तीन स्थानों पर पृथक रूप से एक ही आकार में पाया जाता है। वराह अवतार का वर्णन विष्णु[3] भागवत[4] तथा हरिवंश[5] इन तीनों ग्रन्थों में प्राप्त होता है। वराह अवतार की चर्चा के बाद वामनावतार उल्लेखनीय है। ऋग्वेद[6] के एक मंत्र में कहा गया है कि विष्णु ने इस जगत को तीन पदों में ही माप डाला, और इन पदों में समस्त लोक अन्तर्हित हो गये। शतपथ ब्राह्मण[7] में वामन का प्रसंग आता है जो पौराणिक प्रसंग का मूल रूप माना जा सकता है। आलोचित ~~पुराण~~ विष्णु[8] तथा भागवत[9] में इस की चर्चा हुई है। भागवत पुराण में वामन अवतार का विस्तृत वर्णन राजा बलि के प्रसंग में किया गया है। वामन रूप में उत्पन्न होकर भगवान् बलि की यज्ञशाला में पधारे और तीन डग जमीन मांगी, बलि ने वामन की इच्छा पूर्ण की। वामन ने दो ही डगों में पृथ्वी तथा स्वर्ग दोनों को माप डाला और तीसरा चरण बलि के आत्मसमर्पित मस्तक के ऊपर रख कर अपने त्रिविक्रम नाम को चरितार्थ बनाया।

1- आपो वा इदमग्रे सलिलमासीत । तस्मिन् प्रजापतिर्वा -
   युर्भूत्वाऽचरत। स इमाम पश्यत् । तं वराहाभूत्वाहरत् । तै०सं०7/1/5/1
2- स वराहो रूपं कृत्वोपन्यमज्जत । सपृथ्वीमधः आर्च्छत् । तै०ब्रा०, 1/1/6
3- विष्णु पु०, 5/17/10
4- भागवत पु०, 3/13/35-39
5- यज्ञं यज्ञ वराहेणभूत्वाभूतहितार्थिना ।
   उद्धृता पृथिवी देवी लोका नां हितकाम्यया। हरि०,3/34/45
6- इदं विष्णुविचक्रमे त्रेधा निदधे परमूसभूरमस्य पांसुरे । ऋग्वेद, 1/22/17
7- श०ब्रा०, 1/2/5/1
8- त्रिभिः क्रमैरिमाँल्लोकाञ्जित्वायेन महात्मना।
   पुरन्दराय त्रैलोक्यदत्तुं निहत कण्टकम । विष्णु पु०, 3/1/43
9- तस्माद् त्वत्तो मही ईषद् वृणेऽहं पादकंभात् ।
   पदानि त्रीणि दैत्येन्द्र संमितानि पदामम ।।

   भागवत पु०, 8/19/16

विष्णु के कृष्ण वासुदेव स्वरूप में वैदिक तत्व-- आलोचित पुराणों में पाये जाने वाले कथानकों में कृष्ण वासुदेव को प्रायः विष्णु के साथ और कभी कभी आदित्यों के साथ समीकृत किया गया है। कृष्ण को देवकी के पुत्र के रूप में अवतार लेने वाले विष्णु के रूप में ही प्रदर्शित किया गया है। उत्तर-वैदिक धार्मिक परम्परा के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि पुराणों के ये कथानक वैदिक सूत्रों पर ही आधारित थे और उन्हीं के विकसित रूप तैत्तरीय आरण्यक[1] में वासुदेव नारायण और विष्णु का नाम एक मंत्र में साथ-साथ आया है। ऋग्वेद[2] के एक मंत्र में कृष्ण और नारायण साथ-साथ आते हैं। छान्दोग्य उपनिषद[3] में कृष्ण को देवकी पुत्र कहा गया है और कौशीतकि ब्राह्मण[4] में कृष्ण देवकी पुत्र, गुरु घोर आंगिरस को सूर्य का उपासक बताया गया है। इन परम्पराओं के अवलोकन से जिन का अध्ययन अधिक विस्तार के साथ एक अगले अध्याय में किया जायगा, विदित होता है कि पौराणिक साहित्य में विकसित होने वाले विष्णु के कृष्ण नारायण और वासुदेव स्वरूप वैदिक काल में ही अंकुरित होने लगे थे यद्यपि अभी उनका आकार प्रकार उभर कर सामने नहीं आया था।

1- नारायण विद्महे, वासुदेवाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् ।
तैत्तिरीय आरण्यक, 10/1, 6

2- अपवा कृष्णो अश्विना हवतो वाजिनी वसू। तथा श्रुतं जरितुर्हवं कृष्णस्य स्तुवतो नारायण ।
ऋग्वेद, 8/85/3

3- तद्धैतद्घोर आंगिरसः कृष्णाय देवकी पुत्रा योक्त्वा।
छान्दोग्य उपनिषद-, 3/17/6

4- कौशीतकि ब्राह्मण, 30/6

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि हमारे पुराणकार वैष्णव कथानकों के समायोजन और विस्तार में अपनी स्वतंत्र कल्पनाओं का ही उपयोग नहीं कर रहे थे। जैसा कि परम्परागत उक्तियों में कहा गया है कि "इतिहास-पुराणाभ्यां वेदंसमुपबृंहयेत । वे वस्तुत: वेदों में सूत्र रूप में पाये जाने वाले तत्वों का समायोजन और विस्तार अपनी समकालीन धार्मिक और सामाजिक परिस्थिति और प्रवृत्ति के अनुसार कर रहे थे। ये कहना भूल होगी कि पौराणिक कथानकों में वैदिक तत्वों के अतिरिक्त कोई नवीन तत्व नहीं आने पाया। किन्तु यह कहना भी उतना ग़लत होगा कि वैष्णव पुराणों में पाये जाने वाले कथाविस्तार में नवीनतायें थी वैदिक तत्व बिल्कुल नहीं थे। वस्तुत: इस सन्दर्भ में वैदिक तत्वों का आधारिक महत्व रहा है नवीनतायें उसी के चतुर्दिक शोभा पाती हैं और समायोजित होती हैं। वैदिक तत्वों की इसी भूमिका को उभारने के उद्देश्य से प्रस्तुत अध्याय में उनका क्रमबद्ध विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

चतुर्थ अध्याय

आलोचित पुराणों में भक्ति का स्वरूप

भक्ति का तात्पर्य एवं लक्षण -- सामान्यतया भारतीय संस्कृति एवं विशेषतया भारतीय धर्म के समीक्षक विद्वानों के शोधों के संचित कोशों के उपरान्त सन्देह के लिए रंचमात्र अवकाश नहीं रह जाता है कि वैष्णव धर्म को आधार शिला का सुदृढ़ स्वरूप, इसके विकास के विभिन्न अंग, उपांग एवं उपादान तथा इसके प्रचलन, लोकप्रियता एवं चिरजीविता को प्राण प्रतिष्ठा में भक्ति का उद्भव, एवं उद्वेलन क्रियाशील रहा है। इतना विचार रहित है कि भक्ति का उद्भव भारतीय हिन्दूधर्म के उद्भव का सहचर एवं समस्तरीय रहा है। इसके शैशव कलेवर के निर्माण को बाँकी झाँकी वैदिक मंत्रों के उन सन्दर्भों में दिखाई देती है जहाँ मंत्रों का द्रष्टा, स्रष्टा एवं प्रयोक्ता वैदिक ऋषि मंत्रों के अधिष्ठातृ देवता के स्वरूप, प्रकर्ष एवं प्रभाव के गुण गान में भाव विभोर होकर अपने अन्त: करण को उपास्य देव के समीप उतारने के लिए विह्वल हो उठता है। वेदोत्तरवर्ती साहित्य में भक्ति के उन्नयन एवं विकास के अनेकानेक प्रमाण मिलते हैं। बौद्ध ग्रन्थों एवं पाणिनि के अष्टाध्यायी के साक्ष्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि पाँचवीं-चौथी शताब्दी ई0पू0 के लगभग हिन्दू धर्म में उपासना-परक पक्ष में उपास्य देवता के प्रति उपासक को भक्ति प्रवण प्रवृत्ति को प्रतिष्ठा अपने पूर्ण परिपाक को प्राप्त हो चुकी थी। भक्ति का पारिभाषिक रूप में प्रतिष्ठित होना इसके प्रचलन और लोक प्रियता का विशेष परिचायक माना जाता है। इस सन्दर्भ में आलोचक विचारकों का ऐसा अनुमान रहा है कि पाँचवीं-चौथी शताब्दी ई0पू0 भारतीय धर्म के विकास का वह विशेष काल है जब कि न केवल भक्ति का उद्भव हो हुआ था इसके पारिभाषिक स्वरूप के ग्रहणार्थ अनुकूल परिस्थितियाँ भी प्रकाश में आ चुकी थीं ।

भक्ति के वैदिक एवं पौराणिक स्वरूप को स्पष्ट करने के पूर्व इस के अर्थ एवं तात्पर्य पर विचार किया जा सकता है। सेवा अर्थ के द्योतक " भज" धातु में क्तिन प्रत्यय के संयोग से निष्पन्न भक्ति शब्द का अर्थ है सेवा।[1] सेवा में प्रेम का भाव जुड़ा रहता है। भगवान् में अनन्य प्रेम का नाम ही भक्ति है। ~~प्रेम का नाम ही भक्ति है~~। प्रेम की पराकाष्ठा ही भक्ति है और प्रेम ही भक्ति का पूर्ण रूप है। प्रेम की वास्तविक पूर्णता सेवाभाव में ही है। महर्षि शाण्डिल्य ने भक्ति का लक्षण इस प्रकार किया है- ईश्वर के प्रति परमानुराग को ही भक्ति कहते हैं।[2] जब आराधक और आराध्य एक हो जाँय, उठते-बैठते खाते-पीते सोते-जागते चलते फिरते क्षण-प्रतिक्षण सारी क्रियायें करते हुये सभी अवस्थाओं में भक्त जब भगवान् के अतिरिक्त और कोई वस्तु न देखे तब वही तन्मयता पराभक्ति बन जाती है। नारदीय भक्ति सूत्र में देवर्षि नारद ने "भक्ति" का लक्षण इस प्रकार बतलाया है- परमेश्वर के प्रति होने वाले प्रेम को ही भक्ति कहते हैं। भक्ति रसायन में श्री मधुसूदन सरस्वती ने "भक्ति" का लक्षण बतलाते हुये कहा है- भागवत गुण के श्रवण से प्रवाहित होने वाली चित्तवृत्ति धारावाहिक वृत्ति को ही भक्ति कहते हैं।[4] भक्ति में पूर्ण निष्कामता होनी चाहिये।

1- पाणिनि सूत्र, 3/3/14

2- सा परानुरक्तिरीश्वरे ।
शाण्डिल्य भक्ति सूत्र, 1/1/2

3- सात्वस्मिन् पर(म)प्रेम रूपा ।
नारदीय भक्ति सूत्र, 2

4- द्रुतस्य भगवद्धर्माद्धारावाहिकतां गता ।
सर्वेशे मनसो वृत्तिर्भक्ति रित्यभिधीयते ।
भक्ति रसायन, 1/3

यह निष्कामता मानव में विना ज्ञान के नहीं आ सकती। ज्ञानी भक्त ही वास्तव में भक्त है। ज्ञानी पुरूष अपने कर्तव्य तथा बुद्धि से ही ईश्वर में प्रेम करता है। भागवत के अनुसार जो लोग ज्ञानी हैं जिन की अविद्या की ग्रन्थियाँ खुल गई हैं और जो सर्वदा आत्मा में ही विहार करने वाले हैं वे भी भगवान् की हेतु रहित भक्ति किया करते हैं क्यों कि भगवान के गुण भी ऐसे सुमधुर हैं जो अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं।[1] भक्ति भावना विभिन्न है, जब विष्णु भक्ति के मूल आधार होते हैं तब विष्णु भक्ति कहलाती है।

सामान्यतया वैदिक धर्म के आलोचक विद्वान इसे बहुदेववाद की संज्ञा देते हैं, किन्तु वैदिक धर्म में परिभाषा और लक्षण में पूर्णता लाने के लिए इसे केवल बहुदेववाद नाम देने से काम नहीं चल सकता है वस्तुत: वैदिक धर्म का बहुदेववाद इस का केवल वाह्य पक्ष है। इसके अंतरंग और वास्तविक पक्ष का धोतन एकेश्वरवाद, एकत्ववाद एवं समन्वयवाद के द्वारा होता है। इस कथन के निदर्शनार्थ अन्य अनेक पुरातन साक्ष्यों में यास्क के निरूक्त का उल्लेख किया जा सकता है। यास्क ने अपने ग्रन्थ निरूक्त के दैवत काण्ड (सप्तम अध्याय) में देवताओं के स्वरूप का वर्णन करते हुये कहा है- इस संसार के मूल में एक ऐसी शक्ति विद्यमान् है जो अत्यन्त प्रभाव शालिनी होने के कारण (ईश्वर) तथा

1- आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरूक्रमे ।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्ति मित्थम्भूतगुणोहरि: ।

भागवत पु0, 1/7/10

महनीय होने से ब्रह्म कहलाती है। वह एक है, अद्वितीय है और उसी एक देवता को विभिन्न रूपों में नाना प्रकार से वन्दना की जाती है। एक ही आत्मा के अन्य देवता प्रत्यंग मात्र हैं।[1] ऋग्वेद के ऋषि के द्वारा उपास्य भगवान् प्रभु सर्वशक्तिसम्पन्न है इसी लिए उसे सर्वशक्तिमान् कहा गया है। मनुष्य और दिव्य गुण सम्पन्न देवता उस की शक्ति का माप नहीं कर सकते।[2]

ऋग्वेद के उल्लेख से प्रतीत होता है कि वह ईश्वर अपने निश्चित रूप से एक है, देवता अनेक हैं। परन्तु देवताओं का परमेश्वर एक है। वह अनेक नामों से पुकारा जाता है। उस एक परमेश्वर के इन्द्र, अग्नि, वरुण, मित्र, सुपर्ण गरुत्मान आदि विविध नाम हैं।[3] ऋग्वेद में निरूपित वही एक शक्ति ऋग्वैदिक भक्ति के लक्ष्य और विषय के रूप में प्रतिष्ठित मानी जा सकती है। भक्ति शब्द का तात्पर्य परमेश्वर से सम्बन्धित विषय का अनुराग है। उस अनुराग को भक्त श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन आदि विविध क्रियाओं से चरितार्थ करता है। भक्ति के प्राचीनतम अर्थ की आलोचना करते हुये ऋग्वैदिक पृष्ठभूमि के सन्दर्भ में ऐसा निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उस समय तक उत्तर काल में प्रतिष्ठित वैष्णव धर्म के लाक्षणिक पक्षों का एवं अंगों का केवल आरोपण हुआ था तथा उन्हें आरोहणशील अवस्था में पनपने का सुअवसर बाद में मिला था।[4]

1- महाभाग्याद् देवताया: एक: आत्मा बहुधा स्तूयते ।
एकस्य आत्मन: अन्ये देवा: प्रत्यङ्गानि भवन्ति ।। यास्क निरुक्त, 7/4/8

2- न यस्य देवा न मर्ता आपश्चन शव सो अन्तमापु: ।। ऋग्वेद, 1/100/15

3- इन्द्रं मित्रं वरुणमग्नि माहुरथो दिव्य: ससुपर्णोगरुत्मान ।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमंमातरिश्वान माहु: ।
ऋग्वेद, 1/164/46

4- विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य, भण्डारकर, वैष्णविज्म, शैविज्म एण्ड अदर माइनर रिलीजस सिस्टम्स, पृ० 41

<u>वैदिक भक्ति के स्वरूप की समीक्षा</u> - ज्ञान कर्म एवं भक्ति का उद्गम स्थल वेद है। ज्ञान बुद्धि से सम्बन्धित है। उपासना श्रद्धा एवं विश्वास पर अवलम्बित है। प्रत्येक कार्य के मूल में इन दोनों का होना अत्यन्त आवश्यक है। जिस प्रकार कर्म के लिए ज्ञान और उपासना बुद्धि तथा श्रद्धा की आवश्यकता है, उसी प्रकार ज्ञानार्जन के लिए कर्म (तप) और उपासना (श्रद्धा) तथा उपासना के लिए श्रद्धा और कर्म अपेक्षित है।[1] उपासना के पूर्व भक्ति के क्षेत्र में स्तुति और प्रार्थना आते हैं। देवताओं की स्तुति करते समय साधक उनके साथ माता, पिता, बन्धु आदि का सम्बन्ध स्थापित करता है। उदाहरणार्थ-अग्नि वैदिक कर्मकाण्ड के महान् देवता हैं उन्हीं की सद्भावना से यज्ञों का सम्पादन होता है। अग्नि को <u>ऋग्वेद</u> में मनुष्यों का माता पिता बतलाया गया है।[2] अग्नि ही नहीं इन्द्र भी वैदिक देवताओं में सौर्य के प्रतीक माने गये हैं। इन्द्र केवल पिता ही नहीं, माता भी माने गये हैं।[3] ऋग्वेद में एक मंत्र में कृष्ण आंगिरस ऋषि से कह रहे हैं कि जिस प्रकार जाया पति को आलिंगन करती है उसी प्रकार हमारी मति इन्द्र को आलिंगन करती है।[4] ऋग्वेद के इस मंत्र में रागात्मक सम्बन्ध स्थापना निखरे

1- द्रष्टव्य मुंशीराम शर्मा, भक्ति का विकास, पृ०।।।

2- त्वां वर्धन्ति क्षितयः पृथिव्यां त्वां रायउभयासो जनानाम् ।
त्वं त्राता तरणे चेत्यो भूः पिता माता सदमिन्मानुषाणाम ।।

<u>ऋग्वेद</u>, 6/1/5

3- त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शत क्रतो वभूविथ ।
अधाते सुम्नमीमहे ।

वही, 8/98/11

4- अच्छा म इन्द्रं मतयः स्वर्विदः सध्रीची विश्वा उशतीरनूषत।
परिष्वजन्ते जनयो यथा पतिं मर्यं न शुन्ध्युं मघवानमूतये ।।

<u>ऋ० सं०</u>, 10/43/1

हुए रूप में मिलती है। यह रागात्मक अनुराग प्रदर्शन कहीं-कहीं पर श्रृंगारिक रहस्यवाद के रूप में परिणित है।

ऋग्वेद में वार्णिक, वरूण के सूक्तों में भक्ति भावना सबसे अधिक पाई जाती है। उन का स्थान वैदिक देवताओं में सर्वो परि है। एक स्थल पर वरूण के लिये कहा गया है कि वह सर्वज्ञ है वह अन्तरिक्ष में उड़ने वाली पक्षियों का मार्ग उसी प्रकार जानता है जिस प्रकार वह समुद्र पर चलने वाली नावों का ।[1] एक दूसरे स्थल पर वरूण को दया तथा करूण गुणों से परिपूर्ण बतलाया गया है। वह मनुष्यो के अन्त: करण में होने वाले पापों को अच्छो तरह जानता है। यही कारण है कि वह अपराधियों को दण्ड देता है तथा अपना अपराध स्वीकार कर प्रायश्चित करने वाले व्यक्ति को वह क्षमा प्रदान करता है। अपराधो अपराध की भावना से द्रवीभूत होकर उनसे प्रार्थना करता है- मैं तुम्हारा सदा का बन्धु और प्यारा सखा होकर भी रात दिन कितने पाप किया करता हूँ । इन पापों के करते हुये मुझे तुमने कितने भोग प्रदान किये हैं। हे पूज्य देव! ये भोग मुझे नहीं चाहिए। मुझे तो अब आप अपनी शरण प्रदान करो। इन पापों से हटाओ।[2]

इन मंत्रों को समीक्षा से यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि स्तोता का हृदय भक्ति भाव से सिक्त था। वेद में अनेकों स्थलों पर नवधा

1- वेदा यो बीना पदमन्तरिक्षेण पततामू ।
वेदनाव: समुद्रिय:

ऋ०सं०, 1/25/7

2- य अपिर्नित्यो वरूणप्रिय: सन्त्वा मागांसि कृणवत्सखाते ।
मात एन स्वन्तो यक्षिन्भुजेम यन्धिष्मा विप्र: स्तुवते वरूथम ।।

ऋ०सं० 7/88/6

भक्ति का निरूपण है। परन्तु वेदों में भक्ति का स्वरूप बीजरूप में ही मिलता है। ऋग्वेद में श्रवण, कीर्तन तथा भावदर्पण का स्पष्ट प्रतिपादन हुआ है। जो मनुष्य सबसे प्राचीन तथा नवीनजगत की सृष्टि करने वाले, स्वयं उत्पन्न होने वाले अथवा समस्त संसार में हर्ष उत्पन्न करने वाली लक्ष्मी पति विष्णु के लिए अपने द्रव्य(धन) को तथा स्वयं अपने आप को समर्पण करता है वह प्रशंसक तथा दानशीलकीर्ति अथवा अन्न (श्रवोभिः) से सम्पन्न होकर सब के मन्तव्य परमपद को अनुकूलता से प्राप्त कर लेता है।[1]

उपनिषदों में भक्ति-- वैदिक वाङ्मय में उपनिषदों का महत्वपूर्ण स्थान है। कुछ विचारकों की यह धारणा है कि उपनिषद् में विशेषतः ज्ञान की ही चर्चा है, भक्ति या कर्म का उल्लेख नहीं है। किन्तु ऐसे निष्कर्ष के सूचक प्रमाण नहीं प्राप्त होते हैं। उपनिषद में ज्ञान भक्ति और कर्म इन तीनों का समावेश हुआ है। केनोपनिषद् में यह कहा गया है कि ब्रह्म की उपासना करनी चाहिये। उसकी कृपा होने पर उसको प्राप्त कर सकते हैं।[2] कठोपनिषद् में ऐसा वर्णन मिलता है कि ब्रह्मा प्राण वायु को ऊर्ध्व दिशा में प्रेरित करता है वह स्वयं भजनीय रूप में हृदय के भीतर निवास करता है सभी देवता उसकी उपासना करते हैं।[3]

1- यः पूर्व्याय वेधसे नवीयसे सुमज्जानयेविष्णवे ददाशति ।
यो जातमस्य महतो महि ब्रवत् सेदुश्रवोभिर्युज्यं--
चिदभ्यसत् ।

ऋग्वेद, 1/156/2

2- तद्वन मित्युपासितव्यम्। केनोपनिषद्, 4/6

3- ऊर्ध्वं प्राण मुन्नयत्पानं प्रत्यगस्यति ।
मध्ये वामन मासीनं विश्वेदेवाउपासते ।।

कठोपनिषद्, 2।2।3

भण्डारकर महोदय का यह विचार है कि "उपनिषद्" में वर्णित उपासना भक्ति का आधार है। भक्ति का उदय उपासना से हुआ।[1] कठोपनिषद् में आत्मा के प्राप्ति के उपायों का वर्णन कहीं-कहीं पर मिलता है। यह आत्मा वेदाध्ययन द्वारा प्राप्त नहीं किया जाता, मेधा के द्वारा नहीं प्राप्त होता, बहुत पाण्डित्य और न अधिक श्रवण से हो। यह जिस को वरण करता है उसके सामने यह आत्मा अपने स्वरूप को व्यक्त करता है।[2] कठोपनिषद् में एक दूसरे स्थल पर यह उल्लेख मिलता है कि आत्मा अणु से भी अणु है। महान् से भी महान् है। यह प्राणी के हृदय में निवास करता है उस का दर्शन करने पर साधक में सर्वज्ञता आदि महिमा का आविर्भाव होता है तथा वह शोक से उत्तीर्ण हो जाता है।[3] छान्दोग्य उपनिषद् में ब्रह्म उपासना का उल्लेख है। संसार को सभी वस्तुयें ब्रह्म हैं, क्योंकि सभी वस्तुयें उसी से उत्पन्न होती हैं और अन्त में विलीन हो जाती हैं। इस लिये अपने मन को शान्त रख कर उपासना करनी चाहिये।[4] श्वेताश्वतर उपनिषद् में ब्रह्म के प्रति सम्पूर्ण भाव से आत्म समर्पण को बात कही गई है। हे भगवान् मैं मोक्ष को प्राप्ति के लिए आप की शरण लेता हूँ।[5] पुनः श्वेताश्वतर उपनिषद् में कहा गया है- जिस की

1- क०व०, भाग 5, पृ० 39

2- नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन ।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम् ।।

कठोपनिषद्

3- अणोरणीयान् महतोमहीयानात्मास्य जन्तोर्निहितोगुहायाम् ।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोकोधातुः प्रसादान्महिमानमात्मनः ।।

वही, 1/2/20

4- सर्वंखल्विदं ब्रह्मतज्जलानिति शान्त उपासीत ।

छान्दोग्य उपनिषद्, 3/14/1

5- मुमुक्षुर्वैशरणमहं प्रपद्ये।

श्वेता०उ०, 6/18

ईश्वर में परा भक्ति है और ईश्वर में जैसी भक्ति है वैसी गुरु में भी है उसके समक्ष ये बातें कहने पर सब कुछ उपलब्ध कर सकता है।[1]

भक्ति मार्ग की साधना में गुरु भक्ति की जो महती प्रशंसा है उस का मूल उपनिषद् में है। अतएव देखा जाता है कि उपनिषद् में भक्ति की चर्चा अनेक स्थलों पर की गई है। यह भी कहा गया है, ब्रह्म की कृपा के बिना ब्रह्म की प्राप्ति नहीं हो सकती। उपनिषद् में जहां कहीं गया है कि ज्ञान के द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति होती है वहाँ भी समझना चाहिये कि उपनिषद् का उद्देश्य भक्ति के द्वारा ज्ञान को तथा ज्ञान के द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति करना है। गीता में स्पष्ट रूप से कहा गया है- भक्ति के द्वारा मनुष्य मुझको जान सकता है कि मैं क्या वस्तु (सच्चिदानन्द स्वरूप) हूँ तथा मेरा परिमाण क्या है।[2]

उपनिषद् में ओऽम् नाम का आश्रय लिया गया है। यह भगवान् का अपना नाम है। छान्दोग्य उपनिषद् के प्रारम्भ में ओऽम् की उपासना का महत्व बतलाया गया है। मुण्डक उपनिषद् में आत्मा को बाण और ओऽम् को धनुष अर्थात् उस का आश्रय कहा गया है।[3] भक्ति के क्षेत्र में नाम के जाप का महत्व बहुतों ने स्वीकार किया है। उपनिषद् युग तक प्रभु का मुख्य नाम ओऽम् ही रहा है। परवर्ती युग में इस का स्थान अन्य नामों ने ले लिया। परन्तु साथ-साथ आज भी अनेक साधक इसी पर आश्रित हैं।

1- यस्य देवेपरा भक्तिर्यथा देवे यथा गुरौ ।।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ।।
वही, 6/23

2- भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्वः ।
गीता, 18/55

3- धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं शरं ह्युपासा
निशितं सन्धयीत । आयम्य तद्भावगतेन चेतसा
लक्ष्यं तदेवाक्षरं सोम्यविद्धि । प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा
ब्रह्म तल्लक्ष्य मुच्यते । अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत् तन्मयो भवेत् ।

पुराणों में भक्ति- पौराणिक भक्ति का वैदिक उद्गम-

इसमें सन्देह नहीं है कि पौराणिक धर्म के प्रादुर्भाव में वैदिक धर्म की प्रेरणा विद्यमान् थी। इस धर्म में प्राचीन विषयों को छोड़कर नवीन विषयों को ग्रहण किया गया है। वैदिक संहिताओं में कर्मकाण्ड को प्रधानता दी गई है, परन्तु पौराणिक युग में भक्ति को विशेष महत्व दिया गया है। पुराणों ने सरल संस्कृत भाषा को अपना माध्यम बनाकर वेद के तत्वों को जन साधारण तक पहुँचाया है। पुराणों की मुख्य विशेषता यह है कि वेद ने जिस परम तत्व को ऋषियों तक ही सीमित रख दिया था पुराणों ने उस को जन साधारण तक पहुँचा दिया है। जहाँ वेद में यह कहा गया है कि ब्रह्म का न कोई रूप है न कोई भाव है वहाँ पुराण में यह कहा गया है कि ब्रह्म सर्वव्यापी, सर्वरूपी और सर्वभावमय है। वैदिक धर्म को लोकप्रिय बनाने का श्रेय इन्हीं पुराणों को है।[1]

भक्ति के प्रति पुराणों का दृष्टिकोण---- पुराण में भक्ति की महिमा पर यदि विचार किया जाय तो पता चलता है कि भारतीय आध्यात्मिक साधना के क्षेत्र में ज्ञान, कर्म और भक्ति मोक्ष के साधन के रूप में स्वीकार किये गये हैं। यह तीनों साधन एक दूसरे के पूरक हैं। ज्ञान हमें लक्ष्य का बोध कराता है कर्म उस लक्ष्य तक पहुँचाता है और भक्ति उस लक्ष्य में रत कर देती है। ज्ञान,

---

1- द्रष्टव्य, बलदेव उपाध्याय, पुराणविमर्श, पृ० 403

उपाध्याय जी का यह कथन एकांगी प्रतीत होता है क्योंकि उपनिषदों में ब्रह्म तत्व का निरूपण नकारात्मक एवं सकारात्मक दोनों ही विधियों से किया गया है। किन्तु उपाध्याय जी के इस कथन के पीछे भाव शायद यह है कि उपनिषदों के ज्ञान काण्ड में सकारात्मक की अपेक्षा नकारात्मक निरूपण पर अधिक बल दिया था सम्भवतः ज्ञान मार्ग के लक्ष्य के रूप में वही अभीष्ठ था। यह बात उपाध्याय जी के इस कथन से पुष्टि होती है कि वैदिक संहिताओं में कर्मकाण्डकी प्रधानता के वावजूदइन्हे भक्ति से नितान्त शून्य मानना उपहासास्पद होगा।

कर्म और भक्ति को प्रकाशित करता है। भक्ति, ज्ञान और कर्म का विकास करती है। कर्म अन्य दोनों के निष्पादन में सहायक होता है। गीता में भी ज्ञान कर्म और भक्ति तीनों विद्यमान् हैं, परन्तु भक्ति का स्थान उच्च है। पुराण में कर्म योग, ज्ञान योग और भक्तियोग इन तीनों का अस्तित्व है, परन्तु भक्ति योग के ऊपर विशेष बल दिया गया है।[1]

भागवत पुराण में एक स्थल पर भक्ति की महिमा को बतलाते हुये भगवान् श्रीकृष्ण उद्धव जी से कहते हैं कि कर्म, तपस्या, ज्ञान, वैराग्य, योग, दान, धर्म तथा तीर्थयात्रा, व्रत आदि अन्य साधनों के द्वारा जो प्राप्त होता है मेरा भक्त भक्ति योग के द्वारा वह सब अनायास ही प्राप्त कर लेता है।[2] इसी पुराण में एक दूसरे स्थल पर भक्ति की महिमा का विशेष वर्णन मिलता है। प्रस्तुत स्थल श्रीकृष्ण और उद्धव के परस्पर वार्तालाप के रूप में है। उद्धव के प्रति श्री कृष्ण का वचन निम्नांकित है- मैं न योग न ज्ञान के द्वारा ही प्राप्त होता हूँ। मेरी प्राप्ति का सब से उत्तम साधन भक्ति है। एक निष्ठा से की हुयी मेरी भक्ति चाण्डाल को भी पवित्र कर देती है।[3] भागवत पुराण में पुनः एक स्थल पर

1- द्रष्टव्य मुंशीराम शर्मा, भक्ति का विकास, पृ0 302

2- यत् कर्मभिर्यत्तपसा ज्ञान वैराग्यतश्चयत् ।
योगेन दान धर्मेण श्रेयोभिरितरैरपि ।
सर्वं मद्भक्तियोगेन मद्भक्तो लभतेऽञ्जसा ।। भागवत पु0, 11/20/22

3- न साधयति मां योगान सांख्यंधर्मउद्धव ।
नस्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता ।।
भक्त्याहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयाऽऽत्मा प्रियः सताम् ।।
भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि सम्भवात् ।।

भागवत पु0• 11/14/20-21

भगवान को महिमा का वर्णन किया गया है और कहा गया है कि जो इस नाम का उच्चारण करते हैं वे चाण्डाल होने पर भी श्रेष्ठ हो जाते हैं।[1]

भागवत पुराण की भांति ही विष्णु पुराण में भी भक्ति की महिमा का वर्णन है। विष्णु पुराण में भक्ति ज्ञान और कर्म समस्त यौगिक विषयों का विवेचन हुआ है। सभी मार्गों के अनुयायियों को इस में यथेष्ठ सम्बन्ध सामग्री की प्राप्ति हो सकती है। ज्ञान और कर्म के समान भक्ति योग का भी विशेष महत्त्व प्रदर्शित किया गया है। यम, दूत को विष्णु भक्त के लक्षण प्रतिपादन में कहता है- जो पुरुष अपने वर्ण-धर्म से विचलित नहीं होता, अपने मित्र और शत्रु के प्रति समान भाव रखता है, न किसी जीव की हिंसा ही करता है, और बलात्कार से किसी का द्रव्य हरण नहीं करता उस निर्मल चित्त व्यक्ति को भगवान का भक्त जानो[2]। जिस निर्मल मति का चित्त कलि कल्मष रूप मल से मलिन नहीं हुआ और जिसने अपने हृदय में सर्वदा भगवान् को बसा रखा है उस मनुष्य को भगवान् का परम भक्त समझो[3]। जो एकान्त में पड़े हुये एक दूसरे के सोने को देख कर भी उसे अपनी बुद्धि द्वारा तृण के समान समझता है और निरन्तर भगवान् का अनन्य भाव से चिन्तन करता है, उस नरश्रेष्ठ को विष्णु

1- अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान् यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम् ।
ते पुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते ।।
वही, 3/33/7

2- न चलति निज वर्ण धर्म तो यः सममति यत्मसुहृद्विपक्षपक्षे ।
न हरति न चहन्ति किंचिदुच्चैः सितमनसं तमवेहि विष्णुभक्तम्
विष्णु पु०, 3/7/20

3- कलिकलुषमलेन यस्य नात्मा विमलमतेर्मलिनीकृतस्तमेनम् ।
मनसि कृतजनार्दनं मनुष्यं सततमवेहि हरेरतीव भक्तम् ।।
वही, 3/7/21

का भक्त जानो।[1] पुन: एक दूसरे स्थल पर कहा गया है कि जिस का हृदय निरन्तर भगवत्परायण रहता है उस का यम, यमदूत, यमपाश, यमदण्ड और यमयातना कुद भी नहीं कर सकते।[2] विष्णु पुराण में भक्ति के अनेक उदाहरण दृष्टि-गोचर होते हैं। भगवान् प्रह्लाद से कहते हैं कि प्रह्लाद "मैं तेरी अनन्य भक्ति से अति प्रसन्न हूं। तुझे जिस वर की इच्छा हो मांग लो।[3] प्रह्लाद कहते हैं- नाथ सहस्त्रों योनियों में मैं जिस-जिस में जाऊं-उसी-उसी में हे अच्युत आप में मेरी सर्वदा अक्षुण भक्ति रहे। अविवेकी पुरूषों की विषयों में जैसे अविचल प्रीति होती है वैसे ही आप का स्मरण करते हुये मेरे हृदय से वह (भक्ति) कभी दूर नहीं[4]। पुन: भगवान् ने जब प्रह्लाद को मनोवांछित वर मांगने केलिये आग्रह किया तब प्रह्लाद ने कहा- भगवान्मै तो आप के इस वर से ही कृतकृत्य हो गया हूं आप की कृपा से आप में मेरी निरन्तर भक्ति रहेगी। हे भगवान् सम्पूर्ण जगत के कारण रूप आप में जिस की निश्चल भक्ति है मुक्ति भी उसकी मुट्ठी में रहती है, फिर धर्म, अर्थ और काम से प्रयोजन ही क्या रह जाता है।[5] इसमें सन्देह नहीं कि विष्णु पुराण के प्रस्तुत वर्णन में भक्ति अपने परम स्तर पर पहुंची हुई प्रतीत होती है।

1- कनकमपि रहस्यवेक्ष्य बुद्धया तृणमिव यस्समवेति वै परस्वम् ।
भवति च भगवत्यनन्यचेता: पुरूषवरं तमवेहि विष्णुभक्तम् ।।
वही, 3/7/22

2- किङ्करा: पाशदण्डाश्च न यमो न च यातना: ।
समर्थास्तस्य यस्यात्मा केशवालम्बनस्सदा ।। वही, 3/7/38

3- कुर्वतस्ते प्रसन्नोऽहं भक्तिमव्यभिचारिणीम् ।
यथाभिलषितो मन्त: प्रह्लाद व्रियतां वर: ।। वही, 1/20/17

4- नाथ योनि सहस्रेषु येषु व्रजाम्यहम् ।
तेषु तेष्वच्युता भक्तिरच्युतास्तु सदा त्वयि ।। वही, 1।2 व 18

5- या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वन पायिनी ।
त्वामनुस्मरत: सा मे हृदयान्मापसर्पतु ।। विष्णु पु0, 1/20/19

विष्णु पुराण में बालक ध्रुव का उल्लेख है। उन्हें सर्वोत्तम स्थान प्राप्त करने की प्रबल इच्छा होती है। वे अपने हृदयेच्छा को सप्तर्षियों के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। मरीचि ऋषि कहते हैं कि बिना गोविन्द की आराधना के मनुष्य को सर्वश्रेष्ठ स्थान नहीं मिल सकता है। अत्रि के अनुसार परमपुरूष जनार्दन पर प्रकृति आदि से भी दूर हैं वे जिस से सन्तुष्ट होते हैं उसी को परम प. मिलता है। अंगिरा समस्त जगत को अच्युत से ओत-प्रोत बतलाते हुये कहते हैं कि गोविन्द की आराधना करने से अत्यन्त कठिन और दुर्लभ पद मोक्ष को भी प्राप्त किया है "तू" उन यज्ञ पति भगवान् की आराधना कर । क्रतु ने कहा, परम पुरूष, यज्ञपुरूष, योगेश्वर के संतुष्ट होने पर ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो प्राप्त न हो सकती हो। वसिष्ट ने कहा, भगवान् की आराधना करने पर मन की कोई भी इच्छा पूरी हो जाती है फिर त्रैलोक्य के अन्दर उत्तमोत्तम स्थान की तो बात ही क्या है।[1] पुन: एक दूसरे स्थल पर कहा गया है, कि भगवान विष्णु अपने द्वेषियों द्वारा भी कीर्तित होने पर उन्हें फल प्रदान करते हैं फिर उचित विधान सहित उनको भक्ति करने वाले को दुर्लभ फल देना तो उनका सहज नियम ही है।[2] विष्णु पुराण के प्रस्तुत उल्लेख से दो बातें स्पष्ट हो जाती हैं, एक तो पौराणिक धार्मिक परिकल्पन में वैदिक प्रवृत्तियाँ क्रियाशील थीं। यज्ञेय, यज्ञपति, यज्ञपुरूष आदि शब्द वैदिक प्रवृत्ति के ही परिचायक पद हैं। दूसरे इन्हीं शब्दों की पृष्ठ भूमि में पौराणिकों ने भक्ति के

1- विष्णु पु0, 1/11/43-49

2- अयं हि भगवान् कीर्तितश्च संस्मृतश्च द्वेषानुबन्धेना
पिअखिल सुरासुरादि दुर्लभं फलं प्रयच्छति किमुत
सम्यग्भक्तिमतामिति ।

विष्णु पु0, 4/15/17

तत्वों को पिरोने और उन्हें गतिशील बनाने का प्रयास किया था। हरिवंश में कृष्ण एक स्थल पर गोपों से कहते हैं कि मुझ में भक्ति रखने वाले तुम गोपों के मैं प्रत्येक वन में कल्याणकारी होऊँगा और तुम लोगों के साथ मैं उसी प्रकार आदर पूर्वक रहूँगा जिस प्रकार दिव्य धाम में रहा करता हूँ।[1]

विष्णु भक्ति का सूक्ष्म स्वरूप :- विष्णु पुराण में एक स्थल पर नारायण को हृदयस्थ माना गया है।[2] विष्णु आराधना के विषय में उनकी आराधना के ~~विषय में उनकी आराधना के~~ निम्नांकित नियम बताये गये हैं- कहा गया है कि विष्णु के उपासक को चाहिये कि पहले वह सम्पूर्ण बाह्य विषयों से चित्त को हटावे और उसे संसार के एक मात्र आधार विष्णु में केन्द्रित करे। इस प्रकार तन्मय भाव से विष्णु का जप करना चाहिये।[3] विष्णुपुराण में एक स्थल पर पराशर ने विष्णु के सूक्ष्म स्वरूप के विषय में कहा है कि वे विकार रहित हैं, नित्य हैं तथा उनका रूप सदा एक सा रहता है। वे विश्व के स्वामी हैं, अति सूक्ष्म से भी सूक्ष्म हैं तथा विश्व की उत्पत्ति

1- शिवश्च वो भविष्यामि भ दवतानां वने वने ।
रंस्ये च सह युष्माभिर्यथा दिविगतस्तथा ।।
हरि0, 2/17/29

2- विष्णु पु0, 1/11/40-49

3- राज पुत्र यथा विष्णोराराधन परैर्नरै: ।
कार्यमाराधनं तन्नो यथावच्छ्रोतुमर्हसि ।।
बाह्यार्थादखिलाच्चित्तं त्याजयेत्प्रथमं नर: ।
तस्मिन्नेव जगद्धाम्नि तत: कुर्वीत निश्चलम् ।।
एवमेकाग्रचित्तेन तन्मयेन धृतात्मना ।
जप्तव्यं यन्निबोधैतत्तन्न: पार्थिवनन्दन
विष्णु पु0, 1/11/52-54

स्थिति और संहार के मूल कारण हैं।[1] उनका पारमार्थिक रूप अत्यन्त निर्मल है तथा वे ज्ञानमय हैं। वे पर से भी परे हैं, अन्तरात्मा में उनका निवास है। वे रूप वर्ण नाम और विशेषण आदि से सर्वथा रहित हैं उनमें जन्म, वृद्धि, परिणाम, क्षय और नाश का अभाव है। उनके विषय में " है" केवल इतना ही कहा जा सकता है।[2] वे स्वयं को ही परिपालित करते हैं और स्वयं को ही उपसंहृत करते हैं ऐसे विष्णु सर्वश्रेष्ठ हैं, उपासना के योग्य हैं तथा भक्तों को वरदान देते हैं।[3]

वैष्णवी भक्ति का स्थूल रूप - विष्णु पुराण में विष्णु की स्तुति करते हुये विष्णु के एक रूप सूक्ष्म और दूसरे रूप स्थूल की ओर संकेत है।[4] स्थूल रूपधारी विष्णु का आवास पर्वत और पयोधि (जल) बताया गया है। परन्तु अधिकांश पौराणिक स्थलों में नारायण को जल में निवास करने वाला बतलाया गया है। उदाहरणार्थ, विष्णु पुराण में नारायण की व्युत्पत्ति का

1- अविकाराय..... नित्याय....सदैकरूपरूपाय
आधार भूतं विश्वस्या प्याणीयां समणीयसाम ।....
ग्रसिष्णुं विश्वस्य स्थितौ सर्गे तथा प्रभुम् विष्णु पु0, 1/2/1-5

2- ज्ञानस्वरूपमत्यन्तनिर्मलं परमार्थतः ।
परः पराणां परमः परमात्मात्मसंस्थितः।
रूपवर्णादि निर्देश-विशेषण विवर्जितः ।।
अपक्षय विना शाव्यापरिणामर्द्धिजन्मभिः ।
वर्जितः शक्यते वक्तुं यः सदस्ति केवलम् ।। वही, 1/2/6・10-12

3- स एव सृज्यः स च सर्गकर्ता स एव पात्यत्ति च
पाल्यते च । विष्णुर्वरिष्ठो वरदो वरेण्यः । वही, 1/2/70

4- एकानेक रूपाय स्थूल सूक्ष्मात्मनेनमः।
विष्णु पु0, 1/2/3

सम्बन्ध ही विष्णु के जलवास से किया गया है।[1] भागवत पुराण तथा हरिवंश[3] में भी नारायण को जल में निवास करने वाला बतलाया गया है। अन्यत्र कहा गया है कि विष्णु का दर्शन करने के लिये इन्द्र आदि देवमण्डली सहित क्षीर सागर के तट पर गये थे।[4]

पुराणों में कुछ ऐसे भी स्थल प्रस्तुत किये जा सकते हैं जिन में मूर्तिपूजा के प्रचलन का पता चल सकता है। विष्णु पुराण के अनुसार देवताओं को स्तुति के उपरान्त जिस समय तवष्णु प्रकट हुये वे हाथ में शंख, चक्र और गदा धारण किये हुये गरुड़ पर आरूढ़ थे।[5] अन्यत्र उनके सुन्दर रूप का वर्णन करते हुये उनकी आंखों को कमल के सदृश्य बताया गया है। कहा गया है कि वे पीला वस्त्र पहनेते हैं, उनके आभूषण किरीट,केयूर,हार,कटक आदि हैं, उनकी चारों भुजाओं में शंख, चक्र, गदा औरपद्म विद्यमान है।[6] भागवत पुराण में एक स्थल पर

1- नारायणः परोऽचिन्त्यः परमेषामपि सप्रभुः ।
ब्रह्म स्वरूपी भगवाननादिः सर्व सम्भवः ।
आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वे नर सूनवः ।
अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः वही, 1/4/4,6

2- भागवत पु०, 1/6/30

3- आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वे नर सूनवः ।
अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ।। हरि०, 1/1/36

4- एव मुक्त्वा सुरान्सर्वान् ब्रह्मा लोकपितामहः ।
क्षीरोदस्योत्तरं तीरं तैरेव सहितो ययौ ।। विष्णु पु०, 1/9/38

5- स्तोत्रस्य चावसाने ते ददृशुः परमेश्वरम्
शङ्ख-चक्रगदापाणिं गरुडस्थं सुरा हरिम् । वही, 3/17/35

6- तच्च रूपमुत्फुल्लपद्मदलामलाक्षम ....पीतवस्त्र
धार्य मलकिरीट केयूरहार कटकादि शोभितमुदार
चतुर्बाहु शंख चक्र गदाधरम् ।
विष्णु पु०, 4/15/13

श्री कृष्ण उद्धव से कहते हैं कि मेरी मूर्ति की प्रतिष्ठा करने से पृथ्वी का एक छत्र राज्य, मन्दिर-निर्माण से त्रिलोकी का राज्य, पूजा आदि की व्यवस्था करने से ब्रह्मलोक और तीनों के द्वारा मेरी समानता प्राप्त होती है।[1]

नितान्त प्राथमिक स्तर पर भक्ति का आविर्भाव ऋग्वेद के काल में हो ही चुका था। भक्ति को विकसित होने के लिए फिर उपनिषदों में अवकाश मिला। पुराणों में वर्णित विष्णु भक्ति का सूक्ष्म स्वरूप औपनिषदिक वर्णन से बहुत कुछ समता रखता है। उदाहरण के लिए विष्णु पुराण में नारायण को हृदयस्थ माना गया है।[2] कठोपनिषद् में उपास्य देव को आत्मा में स्थित बताया गया है।[3]

पुराणों में वर्णित विष्णु के स्थूल रूप पर वैदिक विचारधारा का प्रभाव दो रूपों में दिखाई पड़ता है। कहीं तो इनमें वैदिक वर्णन बिना किसी परिवर्द्धन के अपनाये गये हैं पर कहीं-कहीं उन्हें परिवर्द्धित रूप प्रदान कर नवीन आवरण दिया गया है। ऋग्वेद में "गिरि क्षित" और " गिरिष्ठा" जैसे शब्द विष्णु के आवास का सम्बन्ध पर्वत से निश्चित करते हैं। ऐसे वर्णन पुराणों में भी मिलते हैं।[4] किन्तु विशेषता यह है कि इन की संख्या कम है। जहाँ परिवर्द्धन का

1- प्रतिष्ठया सार्वभौमं सद्मना भुवनत्रयम् ।
पूजादिना ब्रह्मलोकं त्रिभिर्मत्साम्यतामियात् ।।
भागवत पु0, 11/27/52

2- विष्णु पु0, 1/11/40-49

3- कठोपनिषद्, 2/23 भण्डारकर, वही, पृ0 40

4- वायु पु0, 41/49-50; मत्स्य पु0, 119/28

प्रश्न है उल्लेखनीय है कि पौराणिक परिकल्पन के अनुसार विष्णु का आवास जल है जब कि वेदों में जल को वरुण का आवास बतलाया गया है। ऐसी स्थिति में यह कह सकते हैं कि इन्द्र की भाँति वरुण के गुणों को पुराणों में विष्णु में स्थानान्तरित कर वैष्णव धर्म को गति को प्रखर और प्रगाढ बनाने का प्रयास किया था। प्रसंगत: इस बात का उल्लेख भी किया जा सकता है, पुराण बहुधा शिव के आवास के निमित्त पर्वत का वर्णन करते हैं, इसी लिए शंकर को पौराणिक वर्णनों में गिरिश शब्द प्रदान किया गया है जिस का तात्पर्य होता है गिरि पर शयन करने वाला। पौराणिक विष्णु के चार हाथ होते हैं। वे गरुड पर आरूढ़ रहते हैं।[1] चतुर्बाहु विष्णु सम्बन्धी उदाहरणों की पुष्टि पुरातात्त्विक साक्ष्यों से भी होती है। उदाहरणार्थ उदयगिरि के द्वारफलक पर चारबाहु वाले देवता की मूर्ति मिलती है, जिसका तादात्म्य विष्णु से किया गया है। इसके नीचे के भाग में गुप्त अभिलेख भी है जिसमें गुप्त सम्वत् 82 (अर्थात 401 ई0) का उल्लेख हुआ है।[2]

<u>वैष्णव भक्ति मार्ग में पौराणिक विष्णु वेदों में निरूपित देवताओं की अपेक्षा श्रेष्ठ हैं</u> -- ऋग्वेद में विष्णु सम्बन्धी सूक्तों की संख्या कम है। सम्पूर्ण ऋग्वेद में प्राय: सौ विभिन्न स्थलों में विष्णु का उल्लेख मिलता है। इन्द्र, अग्नि,

---

1-विष्णु पु0,3/17/35

2- कार्पस इन्सक्रिप्सनम् इण्डिकेरम्,3 पृ0 21,द्रष्टव्य,
सिद्धेश्वरी नारायण राय, पौराणिक धर्म एवं समाज पृ0 17

वरुण आदि देवताओं से सम्बद्ध मंत्रों की अपेक्षा विष्णु की मंत्र संख्या कम होने पर भी विष्णु एक महत्वपूर्ण देवता परिलक्षित होते हैं। वैदिक देवताओं में इन्द्र सभी देवताओं में प्रधान हैं। इन्द्र की प्रेरणा से विष्णु भी सोमपान करते हैं तथा असुरों के धन का अपहरण करते हैं।[1] ऋग्वेद में विष्णु को इन्द्र का योग्य सखा कहा गया है।[2] पुराण में इन्द्र के स्थान में विष्णु ही सुप्रतिष्ठित होते हैं तथा वैष्णव पुराणों में परमेश्वर रूप में पूजित होते हैं। विष्णु पुराण के अनुसार स्वयं इन्द्र ने सौ यज्ञों के द्वारा विष्णु को संतुष्ट कर ईश्वरत्व की प्राप्ति की।[3] भागवत में भक्ति साधना का परिचय प्राप्त होता है। भक्त सदा भावसेवा के परमानन्द में रत रहने की प्रार्थना करता है- हे "विष्णु" अकिंचन भक्त की उच्चतम प्रार्थना तुम्हारे ही चरणों की सेवा है मैं वही चाहता हूं उस के सिवा अन्य वर की प्रार्थना नहीं करता।[4]

वैष्णव भक्ति के प्रकार- विष्णु पुराण में भक्ति के प्रकार का उल्लेख तो स्पष्ट रूप में नहीं मिलता है, परन्तु न्यूनतम रूप में प्रत्येक भक्ति का वर्णन

1- मैकडानल, वैदिक माइथालोजी, पृ० 41, कीथ, दि रिलिजन ऐण्ड फिलासफी आफ दि वेद एण्ड उपनिषद्स, पृ० 109।

अस्येदु मातुः सवनेषु सद्यो महः पितुं पपिवांचार्वन्ना।

मुषाय द्विष्णुः पचतं सहीयान्विध्यान्विध्याद्वराहं तिरोअद्रिमस्ता

2- द्रष्टव्य, पृष्ठांक, 137

3- द्रष्टव्य, पृष्ठांक, 146

4- न कामयेऽन्यं तव पादसेवना यकिंचन प्रार्थ्यं तमाद् वरं विभो। भागवत पु०, 10/51/56

पाया जाता है। भागवत पुराण में एक स्थल पर वर्णन आया है कि हिरण्य कशिपु ने अपने पुत्र प्रह्लाद से उस के द्वारा पठित कतिपय श्लोकों को आवृत्ति करने के लिए कहा। प्रह्लाद ने अपने प्रश्नोत्तर में नवधा भक्ति का प्रतिपादन किया है जो इस प्रकार है- (1) श्रवण (2) कीर्तन (3) स्मरण (4) पादसेवन (5) अर्चन (6) वन्दन (7) दास्य (8) सख्य (9) आत्मनिवेदन[1]।

श्रवण - भगवान के नाम चरित एवं गुणादि के श्रवण को श्रवण भक्ति कहा गया है।[2] विष्णु के विषय में श्रवण करना ही नवधा भक्ति का सोपान है जिसके द्वारा हमें आगे बढ़ना है। विष्णु शब्द "विश्" धातु से उत्पन्न हुआ है। अत: इस शब्द का अर्थ सर्वव्यापक है। विष्णु पुराण में एक स्थल पर उल्लेख है कि पुराण श्रवण से मनुष्य समस्त पापों से छूट जाता है। बारह वर्ष तक कार्तिक मास में पुष्कर क्षेत्र में स्नान करने से जो फल होता है वह सब पुराण श्रवण मात्र से मिल जाता है।[3]

पुराण में जिस प्रकार भगवान् के चरित्र श्रवण का महत्व वर्णित है उसी प्रकार भागवत भक्तों के चरित्र श्रवण महिमा का भी वर्णन प्राप्त होता है।

1- श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यः आत्मनिवेदनम् ।।
इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा ।
क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम् ।।
भागवत पु0, 7/5/23-24

2- श्रवणं नाम चरित गुणादीनां श्रुतिर्भवेत ।
कल्याण साधनाङ्क., पृ0 109

3- विष्णु पु0, 1/2/36-39

विष्णु पुराण के एक स्थल पर कहा गया है कि प्रह्लाद चरित श्रवण से मनुष्य का पाप शीघ्र नष्ट हो जाता है जिस प्रकार विष्णु ने प्रह्लाद को सम्पूर्ण आपत्तियों से रक्षा को उसी प्रकार उस को भो वे सर्वदा रक्षा करते हैं जो उनका चरित्र श्रवण करता है।[1] भागवत पुराण में एक स्थल पर कहा गया है कि भागवत के स्वाध्याय और श्रवण से ब्राह्मणों को विद्या, क्षत्रिय लोग शत्रुओं पर विजय प्राप्त करते हैं, वैश्यों को धन तथा शूद्र स्वस्थ्य और नोरोग बने रहते हैं।[2] भागवत पुराण में एक दूसरे स्थल पर पृथु ने भगवान् से कहा है कि, भगवान मुझे मोक्ष पद की इच्छा नहीं है मेरी यह प्रार्थना है कि आप मुझे दश हजार कान दे दीजिये जिससे मैं आप के लीला गुणों को सुनता ही रहूँ।[3] एक अन्य स्थल पर ब्रह्माजी कहते हैं कि मेरे स्वामो- जो लोग वेद रूप वायु से लाई हुई आप के चरण रूप कमल कोश की गन्ध को अपने कर्ण के पुटों से ग्रहण करते हैं उन भक्त जनों के हृदय कमल से आप कभो दूर नहीं होते क्यों कि वे परा भक्ति रूप डोरी से आप के पादपद्मों को बाँध लेते हैं।[4] अन्यत्र स्वयं भगवान् ने कहा है, भागवत धर्मों का

1- प्रह्लादं सकलापत्सु, तथा रक्षितवान्हरिः ।
तथा रक्षति यस्तस्य शृणोति चरितं सदा ।। विष्णु पु0, 1/20/39

2- विद्या प्रकाशो विप्राणां राज्ञां शत्रुजयो विशाम् ।
धनं स्वास्थ्यं च शूद्राणां श्रीमद्भागवताद्भवेत्   भागवत पु0 3/16

3- न कामये नाथ पदप्यहं क्वचिन्
न यत्र युष्मच्चरणाम्बुजासवः ।
महत्तमान्तर्हृदयान्मुखच्युतो
विधत्स्व कर्णायुतमेष मे वरः ।।   वही, 4/20/24

4- ये तु त्वदीयचरणाम्बुजकोशगन्धं जिघ्रान्ति कर्ण विवरैः
श्रुतिवातनीतम् ।
भक्तया गृहीतचरणः परया च तेषां नापैसि नाथ
हृदयाम्बुरुहात्स्वपुंसाम् ।।

भागवत पु0, 3/9/5

अनुष्ठान करने वाले भक्त का चित्त अत्यन्त शुद्ध होकर मेरे गुणों के श्रवण मात्र से अनायास ही मुझ में लग जाता है।[1] हरिवंश में एक स्थल पर कहा गया है कि अठारह पुराणों के श्रवण से जो फल प्राप्त होता है उसे विष्णु भक्त केवल हरिवंश सुन कर प्राप्त कर लेता है।[2]

कीर्तन- नाम लीला गुण आदि के उच्चस्वर से उच्चारण करने का नाम कीर्तन भक्ति है।[3] कीर्तन के महिमा वर्णन में साक्षात् भगवान् ध्रुव से कहते हैं कि, जो लोग समाहित चित्त से प्रातः और सायंकाल में तेरा गुण कीर्तन करेंगे वे महान पुण्य को प्राप्त होंगे।[4] जो मनुष्य ध्रुव के दिव्य लोक को प्राप्ति सम्बन्धी इस प्रसंग का कीर्तन करता है वह सब पापों से मुक्त होर स्वर्ग लोक में पूजित होता है।[5] अन्यत्र कहा गया है कि जिन के नाम का विवश होकर कीर्तन करने से भी मनुष्य समस्त पापों से इस प्रकार मुक्त हो जाता है जैसे सिंह से भयभीत वृक।[6] भागवत पुराण में एक स्थल पर सूत जी ऋषियों से कहते हैं कि एकाग्र मन से

1- मद्धर्मणो गुणैरेतैः परिसंशुद्ध आशयः ।
पुरुषस्यांजसाभ्येति श्रुतमात्र गुणं हि माम् ।।
भागवत पु0, 3/29/19

2- अष्टादशं पुराणानां श्रवण पाद यत फलं भवेत ।
तद् फलं सुवाप्नोति वैष्णवो नात्र संशयः।।
हरि0, 3/135/3

3- नाम लीला गुणादीना मुच्चैभीषा तु कीर्तिनम् ।
कल्याण साधनांक, पृ0 109

4- ये च त्वां मानवाः प्रातः सायं च सुसमाहिताः ।
कीर्तयिष्यन्ति तेषां च महत्पुण्यं भविष्यति ।।
विष्णु पु0, 1/12/95

5- यश्चैतत्कीर्त्तयेन्नित्यं ध्रुवस्यारोहणं दिवि ।
सर्वपाप विनिर्मुक्तः स्वर्गलोके महीयते ।
वही, 1/12/102

6- अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्तिते सर्वपातकैः।

भगवान का नित्य निरन्तर श्रवण कीर्तन करना चाहिये। जिस का प्रत्येक श्लोक भगवान् के सुयश सूचक नामों से युक्त है वह समस्त पापों का नाश कर देती है, क्यों कि सत्पुरुष ऐसी ही वाणी का श्रवण गान और कीर्तन किया करते हैं।[1] परीक्षित मनुष्य को सब समय और सभी परिस्थितियों में भगवान् श्री हरि का ही श्रवण कीर्तन करना चाहिये।[2] नाम कीर्तन आदि उपायों से भगवान के चरणों में भक्ति भाव प्राप्त कर लेना ही सब से बड़ा कर्तव्य और परमधर्म है।[3] अन्यत्र कहा गया है कि देवराज ! ब्राह्मण, पिता, गौ, माता, आचार्य आदि की हत्या करने वाले महापापी, कुत्ते का मांस खाने वाले चाण्डाल और कसाई भी भगवान् के नाम कीर्तन मात्र से शुद्ध हो जाते हैं।[4] वैसे तो कलियुग में दोष ही दोष है, परन्तु इसमें एक बहुत बड़ा गुण है। वह गुण यही है कि कलियुग में केवल भगवान श्रीकृष्ण का संकीर्तन करने मात्र से ही सारी आसक्तियाँ छूट जाती हैं।[5] सतयुग में भगवान् का ध्यान करने से त्रेता में बड़े-बड़े यज्ञों द्वारा उनकी आराधना करने से और द्वापर में विधिपूर्वक उनकी पूजा

1- तद्वाग्विसर्गो जनताघविप्लवो यस्मिन् प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि ।
नामान्यनन्तस्य यशोऽङ्कितानि यत् शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः ।।
भागवत पु०, 1/5/11

2- यस्मात् सर्वात्मना राजन् हरिः सर्वत्र सर्वदा।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यो भगवान्नृणाम् ।।
वही, 2/2/36

3- एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसां धर्मः परः स्मृतः ।
भक्ति योगो भगवति तन्नाम ग्रहणादिभिः ।।
वही, 6/3/22

4- ब्रह्महा पितृहा गोघ्नो मातृहाऽऽचार्यहाघवान्।
श्वादः पुल्कसको वापि शुद्ध्येरन् यस्य कीर्तनात् ।।
वही, 6/13/8

5- कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः ।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत ।।
वही, 12/3/51

सेवा से जो फल मिलता है वह कलयुग में केवल भगवान् का कीर्तन करने से प्राप्त हो जाता है।[1]

हरिवंश में कीर्तन के महत्व को बतलाते हुये भगवान् ने कहा, मेरे नामों का निरंतर कीर्तन करने से तुम्हारा अन्तःकरण शुद्ध हो गया। इस लिये मैं हृदय से तुम्हारे ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ।[2] पुनः एक स्थल पर वैशम्पायन जी ने कहा है- विप्रवरों, ये ही तुम्हारे गुरु हैं ये संसार बन्धन का विस्तार करने वाली मूल अविद्या का नाश कर डालेंगी। अतएव तुम सब श्री हरि का जो ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव त्रिविध शरीर धारण करते हैं, सदा स्मरण एवं कीर्तन किया करो।[3]

स्मरण- जिस किसी प्रकार से मन के साथ हरि का सम्बन्ध हो जाता है वह स्मरण भक्ति है।[4] विष्णु पुराण में विवरण मिलता है कि जिस मनुष्य के चित्त में पाप कर्म के अनन्तर पश्चाताप होता है उसके लिये तो हरि स्मरण ही एक मात्र प्रायश्चित है। प्रातः मध्यान्ह सायं एवं रात्रि के समय भगवान् के नाम स्मरण से समस्त पापों का क्षय हो जाता है और मनुष्य नारायण को

1- कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः ।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात् ।।
भागवत पु0, 12/3/52

2- अस्मत्कीर्तनाच्छश्वच्छुद्धं हि करणं तव ।
अतीव मनसा प्रीत इत्युक्त्वा भगवान् हरिः ।।
हरि0, 3/83/14

3- एष संसार विभ्रमं विनाशयति वो गुरुः ।
स्मरध्वं सततं विष्णुं पठध्वं त्रिशरीरिणाम्
हरि0, 3/89/12

4- यथा कथं चिन्मनसा सम्बन्धः स्मृतिरुच्यते ।
कल्याण साधनाङ्क॰पृ0 110

प्राप्त कर लेता है।[1] विष्णु के स्मरण से समस्त पाप राशि के भस्म हो जाने से पुरूष मोक्ष पद प्राप्त कर लेता है स्वर्ग लाभ तो उसके लिये विघ्न रूप है।[2] अक्रूर अपनी गोकुल यात्रा के समय सोचते हुये कहते हैं कि जिन के स्मरण मात्र से पुरूष सर्वथा कल्याण पात्र हो जाता है मैं सर्वदा उन अजन्मा हरि की शरण में प्राप्त होता हूँ।[3] स्मरण अथवा ध्यान के विषय में कृष्ण का कथन है कि जो समस्त कर्मों को मुझमें समर्पित कर तथा मुझमें तल्लीन होकर अनन्य योग से ध्यान के द्वारा मेरी उपासना करता है, उन मुझ में चित्त लगाने वालों का मैं मृत्यु रूप संसार सागर में कल्याणकारी हो जाता हूँ।[4] भागवत पुराण में एक स्थल पर श्रीकृष्ण जी उद्धव से कहते हैं कि जो पुरूष निरन्तर विषय चिन्तन किया करता है, उस का चित्त मुझ में तल्लीन हो जाता है।[5] जो योगी इस प्रकार तीव्र

1- कृते पापेऽनुतापो वैयस्य पुंसः प्रजायते ।
प्रायश्चित्तं तु तस्यैकं हरिसंस्मरणं परम् ।।
प्रातर्निशि तथा सन्ध्यामध्यान्हादिषु संस्मरन् ।
नारायणमवाप्नोति सद्यः पापक्षयान्नरः ।।

विष्णु पु0, 2/6/38-39

2- विष्णु संस्मरणात्क्षीण समस्त क्लेश संजयः ।
मुक्तिं प्रयाति स्वर्गाप्तिस्तस्यविघ्नोऽनुमीयते ।।

विष्णु पु0, 2/6/40

3- स्मृते सकलकल्याणभाजनं यत्र जायते ।
पुरूषस्तमजं नित्यं व्रजामिशरणं हरिम् ।।

वही, 5/17/17

4- अनन्येव योगेन मांध्यायन्त उपासते । तेषामहं
समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् । गीता, 12/6

5- विषयान् ध्यायतश्चित्तं विषयेषु विषज्जते ।
मामनुस्मरतश्चित्तं मय्येव प्रविलीयते ।।

भागवत पु0, 11/14/27

ध्यान योग के द्वारा मुझमें ही अपने चित्त का संयम करता है उसके चित्त में वस्तु की अनेकता, तत्सम्बन्धी ज्ञान और उनकी प्राप्ति के लिये होने वाले कर्मों का भ्रम शीघ्र ही निवृत्त हो जाता है।[1]

हरिवंश में स्मरण अथवा ध्यान का वर्णन इस प्रकार है-
विप्रवरों। तुम सदा ऐसा ही जानों। सत्व गुण का आश्रय लेने वाले तुम जैसे भक्तों को सदा एक मात्र श्री हरि का ही चिन्तन करना चाहिये।[2] संसार में सर्वव्यापी नारायण से बढ़कर दूसरा कोई देवतानही है। ब्राह्मणों। तुम सदा ओम् का जप और भगवान् केशव का ध्यान किया करो।[3] इसमें संशय नहीं है। इस प्रकार ध्यान करने पर साक्षात् श्री हरि तुम लोगों पर प्रसन्न होंगे।[4]

पाद सेवन - भगवान की पाद सेवा तथा उनके पादपद्मों का भजन ही पाद सेवन भक्ति है। पराशर मुनि का कथन है कि अपने माता पिता की सेवा करने से ध्रुव के मन वैभव और प्रभाव की वृद्धि हुयी और देवासुरों के आचार्य शुक्र ने ध्रुव का यशोगान किया। विष्णु पुराण के एक स्थल पर भगवान् वराह

1- ध्यानेनेत्थं सुतीव्रेण युंजतो योगिनो मनः ।
संयास्यत्याशु निर्वाणं द्रव्यज्ञानक्रियाभ्रमः ।।
वही, 11/14/46

2- एवमेव विजानीत नात्रकार्या विचारणा ।
हरिरेकः सदाध्येयो भवद्भिः सत्त्वमास्थितैः।।
हरि0, 3/89/8

3- ततो निःश्रेयसप्राप्तिर्भविष्यति न संशयः
एवं ध्यायतो हरिः साक्षात् प्रसन्नो वोभविष्यति ।
वही, 3/89/10

4- विष्णु पु0, 1/12/17-99

के स्तवन में कथन है कि हे भूय स्द डाढों वाले प्रभो आप के चरणों में चारों वेद हैं। अन्य स्थल पर कहा गया है कि मेरू पर लक्ष्मी विष्णु एवं सूर्य आदि देवताओं के सुन्दर मन्दिर हैं जिन को सेवा श्रेष्ठ किन्नर आदि जातियां करती हैं।[1] विष्णु पुराण में साक्षात भगवान के पाद सेवन का प्रसंग स्पष्ट रूप से नहीं आया है। किन्तु देव मन्दिरों की सेवा का स्पष्ट वर्णन है जिसे पाद सेवन के अंतर्गत माना जा सकता है।

भागवत पुराण में भी पादसेवन भक्ति का प्रसंग आया है। पादसेवन भक्ति एक तो भगवान् की साक्षात् पाद सेवा है, दूसरा भगवान् के पादपद्मों का भजन । इसमें प्रथम प्रकार की पाद सेवा बड़ी दुर्लभ है। ब्रह्मा जी भगवान से प्रार्थना करते हैं, नाथ इस जन्म में अथवा भविष्य में जहां कर्म के अनुसार प्राप्त होने वाले पशु पक्षी आदि किसी भी तिर्यक योनि के जन्म में मुझे वह सौभाग्य प्राप्त हो जिसे मैं भी आप के भक्तजनों में से एक होकर आप के चरणों की सेवा करूं।[2] पुन: ब्रह्मा जी भगवान् के साक्षात् पाद सेवन की प्राप्ति को अति दुर्लभ समझकर भगवान् के प्रिय ब्रजवासियों के चरण रज की प्राप्ति के लिए प्रार्थना की है।[3] पाद सेवन की अभिलाषा में गोपाङ्गनायें भगवान से प्रार्थना

1- पादेषु वेदास्तव यूपदंष्ट्र दन्तेषु यज्ञश्चितयश्च वक्त्रो ।
लक्ष्मी विश्णवग्निसूर्यादिदेवानां मुनिसत्तम ।
तास्वाय तनवर्याणि जुष्टानि वर किन्नरै: ।।
वही, 1/4/32, 2/2/47

2- तदस्तु मे नाथ सभूरिभागो भवेऽत्र वान्यत्र तु वातिरश्चाम् ।
येनाहमेकोऽपि भवज्जनानां भूत्वानिषेवे तव पाद पल्लवम् ।।
भागवत पुराण, 10/14/30

3- तद् भूरि भाग्यमिह जन्म किमाप्यटव्यां
यद् गोकुलेऽपि कतमाङ्घ्रि रजाऽभिषेकम् ।
यज्जीवितं तु निखिलं भगवान् मुकुन्द-
स्त्वद्यापि यत्पदरज: श्रुतिमृग्यमेव ।।
वही, 10/14/34

करती हैं कि जिन लक्ष्मी की कृपा प्राप्त करने के लिए ब्रह्मादि देवगण तप आदि द्वारा प्रयास करते हैं, लक्ष्मी जी आप के वक्षःस्थल में निवास पाकर आप के सुशोभित चरणों के रज की अभिलाषा करती हैं उसी प्रकार हम भी आप की चरण रज को प्राप्त हुई हैं। भगवान की साक्षात् पादसेवन भक्ति के अंतर्गत भजन रूप पादसेवन भक्ति आती है। भागवत पुराण में एक स्थल पर कहा गया है कि अच्युत भगवान् के चरणों की सेवा करने वाले भक्त को भगवद्भक्ति विषयक ज्ञान ये सब एक साथ ही प्राप्त हो जाते हैं और उस के बाद वह अत्यन्त कुशलता को प्राप्त हो जाता है।[2] श्री सनत्कुमार पृथु महाराज से कहते हैं कि जिस भगवान के चरण कमल पत्र रूप अङ्गुलियों की कान्ति की छटा का स्मरण करके संत महात्मा अहङ्कार रूप हृदयाग्नि को जो कर्मों से गठित है इस प्रकार छिन्न भिन्न कर डालते हैं कि समस्त इन्द्रियों का प्रत्याहार करके अपने अन्तःकरण निर्विषय करने वाले सन्यासी भी वैसा नहीं कर पाते। तुम उन सर्वाश्रय भगवान् वासुदेव का भजन करो।[3]

1- श्रीर्यत्पदाम्बुजरजश्चकमे तुलस्या
 लब्ध्वापि वक्षसिपदं किल भृत्यजुष्टम् ।
 यस्याः स्ववीक्षणकृतेऽन्यसुरप्रयास-
 स्तद्वद् वयं च तव पादरजः प्रपन्ना ।।
 वही, 10/29/37

2- इत्युताङ्घ्रि भजतोऽनुवृत्या
 भक्तिर्विरक्तिर्भगवत्प्रबोधः ।
 भवन्ति वै भागवतस्य राजं-
 स्ततः परां शान्तिमुपैतिसाक्षात् ।। भागवत पु0, 11/2/43

3- यत्पादपङ्कजपलास विलास भक्त्या
 कर्माशयं ग्रथितमुद्ग्रथयन्ति सन्तः ।
 तद्वन्न रिक्तमतयो यतयोऽपि यद्ध -
 स्रोतोगणास्तमरणंभज वासुदेवम् ।।
 वही, 4/22/39

अर्चन- पूजनार्थ अर्च धातु में "ल्युट" प्रत्यय के योग से अर्चन शब्द की निष्पत्ति हुई है। बाह्य सामग्रियों के द्वारा कल्पित सामग्रियों से भगवान् का श्रद्धापूर्वक पूजन करना अर्चन भक्ति है। अर्चन भक्ति के विषय में विष्णु पुराण में अनेक प्रसंग मिलते हैं। जम्बूद्वीप में यज्ञमय, यज्ञपुरुष भगवान् विष्णु के सदा यज्ञों द्वारा अर्चन पूजन का प्रमाण है। इस के अतिरिक्त अन्य द्वीपों में उनकी और प्रकार से उपासना का वर्णन है।[1] योग युक्त तपस्वी राजा भरत भगवान् की पूजा के लिए केवल पुष्प और कुश का ही संचय करते थे।[2] कालियनाग ने कृष्ण की पूजा के सम्बन्ध में कहा था कि जिन की पूजा ब्रह्मा आदि देवगण नन्दनादि वन के पुष्प और अनुलेपन आदि से करते हैं उन आप का मैं किस प्रकार से अर्चन कर सकता हूँ।[3]

वेद में प्रतिमापूजा का उल्लेख स्पष्टतया नहीं है और पौराणिक काल में स्थिति बदल जाती है। परोक्ष अथवा प्रत्यक्ष रूप में पौराणिक स्थल प्रतिमा निर्माण तथा पूजा के प्रति अवश्य संकेत करते हैं। भागवत पुराण में एक स्थल पर

1- पुरुषैर्यज्ञपुरुषो जम्बूद्वीपे सदेज्यते ।
यज्ञैर्यज्ञमयो विष्णुरन्यद्वीपेषु चान्यथा।
विष्णु पु0 2/3/2।

2- समित्पुष्पकुशादानं चक्रे देवक्रियाकृते ।
नान्यानि चक्रे कर्माणिनिस्सङ्गेन योगतापसः ।।
वही, 2/13/1।

3- वही, 5/7/66-69

भगवान ने अपने पूजा के अधिष्ठान (आश्रय) प्रतिमा स्थण्डिल, अग्नि, सूर्य, जल, हृदय, गौ और ब्राह्मण आदि बताये हैं। प्रतिमा आठ प्रकार की बताई गई है- पाषाणमयी अर्थात् शालग्राम और पाषाणनिर्मित, काष्ठमयी, सुवर्ण आदि धातुमयी, चन्दनादि द्वारा लेपन की हुई, चित्रमयी, मनोमयी और रत्नमयी।[1] भगवान् की पूजा विधि के विषय में भागवत में कई स्थलों पर वर्णन मिलते हैं। भगवान् के अर्चन में श्रद्धा ही मुख्य है। स्वयं भगवान् ने कहा है- श्रद्धा पूर्वक अर्पण किया हुआ जल भी अत्यन्त प्रिय है। श्रद्धा रहित अमूल्य वस्तु भी अर्पण की हुई मेरे लिये संतोषप्रद नहीं हो सकती।[2]

अर्चन भक्ति को भागवत ने परा भक्ति का साधन बतलाया है। निष्काम भक्ति योग द्वारा जो इस प्रकार मेरी पूजा करता है उस को मेरी भक्ति प्राप्त होती है।[3] अपने न्यायार्जित धन से श्रद्धापूर्वक पुरुषोत्तम भगवान् की आराधना करना ही द्विजाति-ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य गृहस्त के लिए परम कल्याण का मार्ग है।[4] हरिवंश में एक स्थल पर कृष्ण ने पर्वत से प्रकट वाणी द्वारा उन गोपों से कहा, यदि तुम लोगों में दया भाव का संचार है तो आज से गौओं के भीतर मेरी पूजा होनी चाहिये।[5]

1- शैली दारुमयी लौही लेप्या लेख्या-चसैकती ।
मनोमयी मणिमयी प्रतिमाष्टविधा स्मृता ।। भागवत पु0 11/27/12

2- श्रद्धयोपाहृतं श्रेष्ठं भक्तेन मम वार्यपि ।।
भूर्यप्यभक्तोपहृतं न मे तोषाय कल्पते । वही, 11/27/17

3- मामेव नैरपेक्ष्येण भक्तियोगेन विन्दति ।
भक्तियोगं स लभते एवं यः पूजयेत माम् ।। वही, 11/27/53

4- अयं स्वस्त्ययनः पन्था द्विजातेर्गृहमेधिनः ।
यच्छ्रद्धयाऽऽप्तवित्तेन शुक्लेनेज्येत पूरुषः ।। वही, 10/84/37

5- स उवाच ततो गोपान् गिरि प्रभवया गिरा ।
अद्यप्रभृति चेज्योऽहं गोषु यद्यस्तु वो दया ।। हरि0, 2/17/27

वन्दन- वन्दन शब्द का तात्पर्य है प्रणाम । भगवान् के श्री चरण में श्रद्धा भक्ति पूर्वक अनन्य भाव से प्रणाम करना वन्दन भक्ति है। विष्णु पुराण में वन्दन भक्ति का वर्णन कई स्थलों पर हुआ है। ध्रुव को तपस्या के प्रसंग में कहा गया है कि श्री अच्युत को किरीट, शङ्ख, चक्र गदा, शार्ङ्ग धनुष और खड्ग धारण किये हुये देखकर उसने पृथ्वी पर शिर रख कर प्रणाम किया।[1] अन्यत्र स्थल पर यमराज कहता है, जो भगवान् के सुरवन्दित चरण-कमलों की परमार्थ बुद्धि से वन्दना करता है, घृत आहुति से प्रज्वलित अग्नि के समान समस्त पाप-बन्धन से मुक्त हुये उस पुरुष को तुम दूर से ही छोड़ कर निकल जाना।[2] गीता में वन्दन भक्ति का प्रतिपादन कई स्थलों पर हुआ है। जब भगवान कृष्ण ने अर्जुन के समक्ष अपने विराट् रूप को प्रकट किया तब अर्जुन आश्चर्य चकित होकर बार-बार भगवान् को प्रणाम किया।[3] भागवत पुराण में प्रणाम करने की विधि स्वयं भगवान् ने इस प्रकार बताई है- अनेक प्रकार के वेदयुक्त, पुराणयुक्त एवं तन्त्रयुक्त और प्राकृत स्तोत्रों से स्तुति करके यह निवेदन करें। हे भगवान, आप प्रसन्न हों और दण्ड की तरह गिर कर पृथ्वी पर इस प्रकार प्रणाम करें- हे प्रभो इस संसार सागर के मृत्यु रूप ग्रहण से मेरी

1- शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गवरासिधर मच्युतम् ।
किरीटिनं समालोक्य जगामशिरसा महीम् ।।
विष्णु पु0, 1/12/45

2- हरिममरार्चिताङ्घ्रिपद्मं
प्रणमति यः परमार्थतो हि मर्त्यः ।
तमपगतसमस्त पापबन्धं
व्रज परिहृत्य यथाग्निमाज्यसिक्तम्
वही,, 3/7/18

3- गीता, 11/14, 39/40

रक्षा कीजिए।[1] एक दूसरे स्थल पर कहा गया है कि भगवान् को प्रणाम करने वालों को फिर जन्म नहीं लेना पड़ता उनको मुक्ति हो जाती है।[2]

दास्य- भगवान् को अपने कर्मों को अर्पण कर देना तथा उन को अनन्य सेवा में अपने को लगा देना ही दास्य भक्ति है।[3] विष्णु पुराण में कहा गया है कि देवगण निरन्तर यही गान करते हैं कि वे पुरूष धन्य हैं जो फल की इच्छा से रहित अपने कर्मों को अर्पण करने से निष्पाप होकर उस अनन्त में लीन हो जाते हैं।[4] इन्द्र आदि देवताओं के साथ ब्रह्मा ने दीन भाव से आज्ञा मागते हुये कहा था, हे सुरनाथ इन्हें अथवा मुझे जो कुछ करना उचित हो उन सब बातों के लिये आज्ञा कीजिये । हे ईश आप ही की आज्ञा का पालन करते हुये हम सम्पूर्ण दोषों से मुक्त हो सकेंगे।[5]

1- स्तवैरुच्चावचैः स्तोत्रैःपौराणैः प्राकृतैरपि ।
स्तुत्वा प्रसीद भगवनिति वन्देत दण्डवत् ।।
शिरो मत्पादयोः कृत्वा बाहुभ्यां च परस्परम् ।
प्रपन्नं पाहि मामीश भीतं मृत्युग्रहार्णवात् ।।

2- तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो
भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम् ।
हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते
जीवेत यो मुक्तिपदेस दायभाक् ।। वही, 10/14/8

3- दास्यं कर्मार्पणं तस्य कैङ्कर्यं मपि सर्वथा।
कल्याण साधनाङ्क, पृ0110

4- गायन्ति देवाः किलगीतकानि
धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे ।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते
भवन्ति भूयः पुरूषाः सुरत्वात् ।।
कर्मण्यसङ्कल्पित तत्फलानि
संन्यस्य विष्णौ परमात्मभूते ।
अवाप्य तां कर्ममहीमनन्ते
तस्मिल्लयं ये त्वमलाः प्रयन्ति ।। विष्णु पु0, 2/3/24-25

5- विष्णु पु0, 5/1/57-58

भागवत पुराण में दास्य (सेवा) भक्ति के सम्बन्ध में स्पष्ट उल्लेख है कि भगवान् की सेवा जो मनुष्य स्वार्थ बुद्धि से करते हैं उन में वह सच्चा दास्य भाव नहीं है वह वाणिज्य व्यापार के समान है।[1] भगवान ने स्वयं दास्य भक्ति के लिये आज्ञा की है- भगवान के मन्दिर का मार्जन, सिंचन, मण्डल आदि की रचना निष्कपट भाव से दास की भाँति करनी चाहिये।[2]

भगवान का दास्य भाव प्राप्त होना बहुत कठिन एवं दुर्लभ है। प्रह्लाद ने भगवान् नृसिंह से प्रार्थना की है- हे भगवान् प्रिय और अप्रिय पदार्थों के संयोग और वियोग से उत्पन्न होने वाले अग्नि से सब योनियों में तपित होकर मैंने जिन औषधियों का प्रयोग किया उनसें शान्ति न मिलकर उलटा दुःख ही मिल रहा है, परन्तु उनको मै दुःख न समझकर भ्रम से सुख समझता हूँ अतएव आप अपना दासयोग औषधि प्रदान कीजिये। जिस से उस ताप का नाश होकर शान्ति प्राप्त हो।[3] गोपियों ने भगवान् से कहा, हे दुःख का नाश

1- यस्त आशिष आशास्ते नसभृत्य: सवैवणिक ।

भागवत पु0, 7/10/4

2- संमार्जनोपलेपाभ्यां सेकमण्डल वर्तनै: ।
गृहशुश्रूषणं मह्यं दासवद् यदमायया ।।

भागवत पु0, 11/11/39

3- यस्मात् प्रियाप्रिय वियोग सयोगजन्म-
शोकाग्निना सकल योनिषुदह्यमान: ।
दु:खौषधं तदपि दु:खमतद्धियाहं
भूमन्भ्रमामि वद मे तव दास्य योगम् ।।

वही, 7/9/17

करने वाले पुरूषोत्तम आप को सेवा करने को आशा लेकर अपने गृहों को त्याग कर आपके चरणों के समीप आई हूं। हमारा हृदय आप को प्रेमाग्नि से तपित हो रहा है अतएव आप अपनी दास्य सेवा देने की कृपा करें।[1]

सख्य- भगवान के अटल विश्वास और उनके साथ मित्रता सहचर्य व्यवहार इन दोनों का नाम सख्य कहा गया है।[2] विष्णु पुराण में सख्य भाव के अनेक उदाहरण मिलते हैं। रामकृष्ण और गोपाल बालकों के सम्बन्ध में कहते हैं कि कभी एक दूसरे को अपनी पीठ पर ले जाते हुये खेलते तथा कभी अन्य गोप बालकों के साथ घूमते रहते थे।[3] कृष्ण की मीठी गतिध्वनि सुनकर गोपियाँ अपने-अपने घरों को छोड़कर जहाँ कृष्ण थे चली जाती थीं।[4] भागवत पुराण में व्रजाङ्गनाओं ने सख्य भक्ति का प्रतिपादन किया है। सख्य भक्ति के विषय में ब्रह्मा जी ने कहा है, अहो नन्दनादि व्रजवासी गोपों के धन्य भाग है जिनके सुहृदय परमानन्द सनातनपूर्ण ब्रह्म आये हैं।[5] वैदिक

1- तन्न प्रसीद वृजिनार्दन तेऽङ्घ्रिमूलं
प्राप्ता विसृज्य वसतीस्त्वदुपासनाशा: ।
त्वत्सुन्दरस्मित निरीक्षण तीव्रकाम-
तप्तात्मनां पुरूष भूषण देहि दास्यम् ।। वही, 10/29/38

2- विश्वासो मित्र वृत्तिश्च सख्यं द्विविधमीरितम् ।
कल्याण साधनाङ्क, पृ0 111

3- क्वचिद्धसन्तौ अन्योन्यं क्रीड मानौ तथा परै:।
गोप पुत्रैस्समं वत्सांश्चार यन्तौ विचेरतु: ।। विष्णु पु0, 5/6/34

4- भागवत पु0, 10/47/17

5- अहो भाग्य महो भाग्यं नन्द गो व्रजौकसाम ।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्ण ब्रह्म सनातनम् ।। वही, 10/14/32

वाङ्‌मय में कहीं-कहीं सख्य भक्ति का प्रसंग मिलता है। ऋग्वेद में एक स्थल पर विश्वदेवता के सन्दर्भ में कहा गया है कि हम देवों के साथ मैत्री करें।[1]

आत्मनिवेदन- अहंकार रहित अपने तन, मन, धन और परिजन सहित अपने आप को तथा सर्वस्व को श्रद्धा और प्रेम पूर्वक भगवान् को समर्पण कर देना आत्मनिवेदन भक्ति है। विष्णु पुराण में एक स्थल पर उल्लेख है कि अपने अनुचर को हाथ में पाश लिये देख कर यमराज ने उस के कान में कहा था- भगवान् मधुसूदन के शरणागत व्यक्तियों को छोड़ देना क्यों कि मै, जो विष्णु भक्त नहीं हैं, ऐसे अन्य पुरुषों का ही स्वामी हूं।[2] भागवत पुराण में एक स्थल पर कहा गया है कि आत्मनिवेदन करने वाले भगवान् के अनन्य भक्त हैं।[3] गीता के अन्त में भगवान् ने अर्जुन को शरणागत होने की आज्ञा दी है- सब धर्मों को त्याग कर तू एक मेरी शरण में आजा । मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूंगा। तू चिन्ता मत कर।[4] भागवत पुराण में उद्धवजी के प्रति भगवान का

1- देवानां सख्यमुप सेदिमा वयं ।

ऋग्वेद, 1/89/2

2- स्वपुरुष मभिवीक्ष्य पास हस्तं यमः किल तस्य कर्णमूले ।
परिहर मधुसूदन प्रपन्नान्प्रभुरहमन्यनृणाम वैष्णवानाम ।।

विष्णु पु0, 3/7/14

3- न पार मेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं न सार मौमं न रसाधिपत्यम्
न योग सिद्धिर पुनर्भवंवामय्यर्पिता त्मेच्छति मद्विनान्यत ।।

भागवत पु0, 1/14/14

4- सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।

गीता, 18/66

कथन है कि तुम एक मात्र मेरी ही अनन्य भाव से शरण में आजा जिससे मेरे द्वारा भय से रहित हो जाओगे।[1] शरणागत भक्त के रक्षक भगवान् स्वयं हो जाते हैं। जो स्त्री, पुत्र, घर, कुटुम्ब सब छोड़कर मेरी शरण में आगये हैं उनकी उपेक्षा मैं किस प्रकार कर सकता हूँ।[2]

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि भक्ति के बीज ऋग्वेद में सन्निहित हैं। सर्वप्रथम ऋग्वेद में ही भक्ति के लिए साक्ष्यभूत उदाहरण मिलते हैं। आचार्य बलदेव उपाध्याय के अनुसार ऋग्वेद के बाद संहिताओं में भी भक्ति बीज रूप में वर्तमान है, यद्यपि प्रधानता उन में कर्मकाण्ड को ही दी गई है। इसी बीज का आगे चलकर उपनिषदों और पुराणों में विकास हुआ है।[3] वेदों की अपेक्षा श्वेताश्वतर जैसे उपनिषदों में भक्ति का रूप अधिक प्रौढ़ रूप में सामने आता है। क्यों कि इन ग्रन्थों में ब्रह्म की प्राप्ति के लिए उस विशेष तत्व पर बल दिया गया है जिसे उपासना कहते हैं तथा जो भक्ति का ही समानार्थक और समस्तरीय है। वैदिक ग्रन्थों में यदि भक्ति का प्राथमिक कलेवर संवारा गया है तो उस का पूर्ण परिपाक होना पौराणिक काल में स्वाभाविक था। जिन देवताओं को वैदिक ग्रन्थों में गौण स्थान प्राप्त था उन में बहुतेरे को प्रधान स्थान मिला। उदाहरणार्थ, ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि।

1- मामेक मेव शरणमात्मा नं सर्व देहिनाम् ।
याहि सर्वात्मभावेन मया स्या ह्यकुतो भयः ।
भागवत पु0, 11/12/15

2- ये दारागार पुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम् ।
हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे ।।
वही, 9/4/65

3- पुराण विमर्श, पृ0 403

पुराण में भक्ति के सूक्ष्म एवं स्थूल रूपों का वर्णन है। भक्ति का सूक्ष्म स्वरूप दार्शनिक तत्वों से ओत-प्रोत है, भक्ति का स्थूल स्वरूप व्यवहारिक है। वैष्णवी भक्ति का स्थूल स्वरूप वैदिक विचारधारा से प्रभावित है। वेद, तथा उपनिषद में भक्ति की कितनी शाखायें थीं इस पर विस्तार के साथ विचार नहीं किया गया है, परन्तु पुराणों में पंचधा तथा नवधा भक्ति का विशेष विस्तृत वर्णन है। भले ही वेद में भक्ति के मूलभूत तत्व विद्यमान हैं परन्तु इसका पूर्णरूपेण विकास पुराणों में ही पाया जाता है, अन्यत्र नहीं । वैदिक भक्ति का विकास एकांगी था, किन्तु पुराणों में उसकी सर्वांगीणता के दर्शन होते हैं। कालान्तर में भक्ति से प्रभावित अनेक धार्मिक सम्प्रदायों ने जन्म लिया, परन्तु भक्ति के उद्भव एवं विकास का मुख्य स्रोत भागवत धर्म या वैष्णव धर्म ही था।

पंचम अध्याय

विष्णु और वासुदेव कृष्ण का तादात्म्य तथा नारायण और विष्णु का एकीकरण

विष्णु और वासुदेव कृष्ण का तादात्म्य-- अनेक विद्वानों ने वासुदेव कृष्ण के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न विचार व्यक्त किये हैं जिसका पुष्टोकरण भारतोय साहित्यिक साक्ष्यों के विवेक पूर्ण अध्ययन से प्रतिभाषित होता है। संहिता, ब्राह्मण तथा प्राचोन उपनिषद् आदि वैदिक साहित्य में वासुदेव के नाम का उल्लेख नहों है। सर्वप्रथम इस नाम का उल्लेख तैत्तिरोय आरण्यक के दशवें प्रपाठक में मिलता है, जहाँ पर यह विष्णु के एक नाम को भाँति व्यवहृत हुआ है।[1] डा0 राजेन्द्रलाल मित्र ने यह विचार व्यक्त किया है कि इस आरण्यक को रचना कुछ काल बाद सम्पन्न हुई और इस में भी वह स्थल "खिल" रूप में आया है।[2] कीथ ने इस आरण्यक का काल ईसाके पूर्व तोसरो शताब्दो में निश्चित किया है जिस से उस समय तक वासुदेव तथा नारायण को एकता का सम्पन्न हो चुकना सिद्ध होता है।[3]

वासुदेव कृष्ण शब्द का दूसरा अंश अर्थात् "कृष्ण" शब्द ऋग्वेद के आठवें मण्डल के एक सूक्त के ऋषि व रचयिता के रूप में आया है। इसी मण्डल में तोसरे व चौथे मंत्रों में ऋषि अपने को स्वयं कृष्ण कहते हुये जान पड़ते हैं। कौशोतकि ब्राह्मण में भो उसी कृष्ण आंगिरस का उल्लेख मिलता है।[5] छान्दोग्य उपनिषद् में ऐसा वर्णन मिलता है कि देवको पुत्र घोर आंगिरस के शिष्य थे।[6]

1- द्रष्टव्य, पृष्टांक,
2- राजेन्द्र लाल मित्र, तैत्तिरीय आरण्यक को भूमिका, पृ0 8
3- राय चौधरी, मैटोरियल्स फार दि स्टडी आँफ दि अर्ली हिस्ट्री आफ दि वैष्णव सेक्ट पृ0 63
4- द्रष्टव्य, पृष्ठांक, 146
5- द्रष्टव्य, पृष्ठांक, 146
6- द्रष्टव्य पृष्ठांक, 146

कौशीतकि[1] ब्राह्मण के अनुसार वे ऋषि सूर्य के उपासक थे। इस सन्दर्भ में डा0 भण्डारकर का यह विचार है कि यदि कृष्ण और घोर दोनों ही आंगिरस थे तो इस से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कृष्ण के आंगिरस होने की परिपाटी ऋग्वेद् काल से लेकर उपनिषद् के रचना काल तक चली आई।[2]

हापकिंस[3] और बार्थ[4] ने वासुदेव कृष्ण के सम्बन्ध में यह मन्तव्य व्यक्त किया है कि वासुदेव कृष्ण मनुष्य नहीं थे वरन् उनकी गणना देवताओं की कोटि में की जाती थी जिसका वैष्णव धर्म के विकास में महान् योगदान था। दोनों विद्वानों ने वासुदेवकृष्ण को सूर्य से सम्बन्धित बतलाया है।[5] हाप्किंस ने वासुदेव कृष्ण को पाण्डव जाति का देवता बतलाया है। बार्थ यह प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं कि वासुदेव कृष्ण निःसन्देह घोर आंगिरस के शिष्य थे जो सूर्य के उपासक थे, परन्तु सौर्य देवता न थे।[6] मैक्निकाल[7] और कीथ ने महाभारत के आधार पर कृष्ण को वानस्पतिक देवता बतलाया है।

1- वही,

2- भण्डारकर, वै0शै0, पृ0, 15-16

3- हाप्किंस, रिलिजन आफ इण्डिया, पृ0 466-488

4- बार्थ, रिलिजन आफ इण्डिया, पृ0 166

5- हाप्किंस, वही, पृ0 388-466

6- बर्थ, वही, पृ0 168

7- मैक्निकाल, इण्डियन थीज्म, पृ0 37-38

8- कीथ, जर्नल आफ रायल एशियाटिक सोसाइटी, 1915, पृ0 41

वासुदेव भक्ति सम्प्रदाय के प्रवर्तक का नाम था।[1] यह जान पड़ता है कि वह संकर्षण प्रद्युम्न और अनिरुद्ध के साथ वर्तमान थो। वैयाकरण पाणिनि के एक सूत्र से यह सिद्ध होता है कि वासुदेव ईसा के पूर्व सातवीं शताब्दी में एक विशेष धर्म अथवा सम्प्रदाय के उपास्य देवता थे जहाँ पर उक्त सम्प्रदाय के अनुयायियों को वासुदेवक कहा गया है।[2] भाष्यकार पतंजलि ने इसे उसी अर्थ में माना है और एक अन्य सूत्र पर भाष्य लिखते समय कहा है कि वासुदेव और बलदेव दोनों वृष्णि नाम हैं और क्रमशः वासुदेव और बलदेव शब्दों से बने हैं।[3] पाणिनि के युग में कृष्ण वासुदेव को भक्ति के विकास को प्राचीन और अर्वाचीन सभी विद्वानों ने स्वीकार किया है। कीथ ने पतंजलि के "संज्ञा चैषा तत्र भवतः" कथन को यथार्थ मानते हुये लिखा है कि निश्चय ही पाणिनि के समय में वासुदेव कृष्ण को विष्णु का अवतार माना जाने लगा था।[4]

महाभारत में एक ऐसी कहानी मिलती है जिस में यादव सात्वत वृष्णि परिवार के कृष्ण के अतिरिक्त एक दूसरे पौण्ड्रक वंशीय वासुदेव नामक राजा की ओर संकेत है जिस ने अपने को स्वयं वासुदेव घोषित किया ।

1- भण्डारकर, वै0शै0, पृ0 13-14

2- वासुदेवार्जुनाभ्यांवुन्‌ 4/3/98, द्रष्टव्य, वासुदेव शरण अग्रवाल, पाणिनि कालीन भारतवर्ष, पृ0 348

3- ऋष्यन्धक वृष्णि कुरुभ्यश्च/4/1/114 पर पतंजलि महाभाष्य ।

4- जनरल ऑफ रायल एशियाटिक सोसाइटी, 1908, पृ0 848

5- महाभारत (कलकत्ता तथा बम्बई संस्करण) 1·6992; 11-584, 1270 सोरेन्सन, ऐन इण्डेक्स टु द नेम्स इन द महाभारत, पृ0 547 पर उद्धृत ।

उक्त कहानी आलोचित विष्णु पुराण में पौण्ड्रक आख्यान के रूप में वर्णित है जो इस प्रकार है- पौण्ड्रक वंशीय वासुदेव नामक एक राजा को अज्ञान-मोहित पुरुष "आप" वासुदेव रूप से पृथ्वी पर अवतीर्ण हुये हैं, ऐसा कह कर स्तुति किया करते थे। अन्त में वह भी सत्य मानने लगा कि मैं वासुदेव रूप से पृथ्वी पर अवतीर्ण हुआ हूँ। इस प्रकार आत्मा विस्मृत हो जाने पर उसने विष्णु भगवान् के समस्त चिन्ह धारण कर लिये और श्रीकृष्ण के पास यह सन्देश भेजा कि मूढ़। अपने वासुदेव नाम को छोड़कर मेरे चक्र आदि सम्पूर्ण चिन्हों को छोड़ दे और यदि तुझे जीवन की इच्छा है तो मेरी शरण में आ। श्रीकृष्ण दूत द्वारा समाचार प्राप्त कर दूत से कहते हैं कि ठीक है; मैं ने तेरे मन्तव्य को भली भांति समझ लिया है। ऐसा कहने पद दूत पुन: पौण्ड्रक राज्य को वापस चला जाता है। इधर कृष्ण जी गरूड पर आसीन होकर उस को राजधानी को ओर प्रस्थान करते हैं। भगवान के आक्रमण का समाचार सुनकर काशी नरेश भी उसका सहायक होकर अपनी सेना के साथ उपस्थित होता है। घोर युद्ध के पश्चात् पौण्ड्रक तथा काशी नरेश को मारकर भगवान् श्रीकृष्ण द्वारका लौट आते हैं और वहाँ स्वर्ग सदृश्य सुख का अनुभव करते हुये रमण करने लगते हैं।[1]

प्रस्तुत आख्यान का वर्णन भागवत पुराण[2] में भी प्राप्त होता है। विष्णु एवं भागवत पुराण में यह आख्यान केवल एक-एक अध्याय में विवृत है जब कि हरिवंश[3] में ग्यारह अध्यायों में इस आख्यान का वर्णन मिलता है।

1- विष्णु पु०, 5/34

2- भागवत पु०, 10/66

3- हरि०, 3/91

विष्णु तथा भागवत पुराण में इस आख्यान का संक्षिप्त में मिलना इनकी पूर्वकालीनता का परिचायक हो सकता है। हरिवंश में इस आख्यान का व्यापक वर्णन मिलना प्रस्तुत ग्रन्थ को उत्तरकालीनता का द्योतक हो सकता है। पूर्व पृष्ठों में इस बात की ओर संकेत किया गया है कि विष्णु पुराण में जो आख्यान संक्षिप्त में वर्णित हैं, भागवत में उन्हें विस्तार तो मिला ही है, हरिवंश में अधिक विस्तार में वर्णित है।

महाभारत में वासुदेव कृष्ण से सम्बन्धित पर्याप्त सामग्री पाई जाती है। इस ग्रन्थ में एक स्थल पर वासुदेव कृष्ण के व्यक्तित्व के विषय में कहा गया है कि वे साधारण मनुष्य, अर्धदेवो एवं परमेश्वर हैं।[1] इसी ग्रन्थ में एक दूसरे स्थल पर वासुदेव शब्द का अर्थ बतलाते हुये कहा गया है कि " मैं वासुदेव " इसलिए कहलाता हूं कि मैं सभी प्राणियों को अपनी माया एवं अलौकिक ज्योति द्वारा आच्छादित किये रहता हूं[2] तथा "सूर्य के रूप में रहकर मैं अपनी किरणों से सम्पूर्ण जगत को आच्छादित कर लेता हूं और सभी प्राणियों का अधिवास होने के कारण भी मेरा नाम वासुदेव है"[3] उसी ग्रन्थ में एक स्थल पर वासुदेव का पुत्र कहा गया है।[4] महाभारत में सत्य और असत्य दो वासुदेवों की चर्चा की गई है। असत्य वासुदेव मथुरा के वृष्णि या सात्व परिवार के यादवों का राजा था।[5] महाभारत शान्ति पर्व में कहा गया है कि सात्वत या भागवत धर्म की शिक्षा सर्वप्रथम वासुदेव कृष्ण ने अर्जुन को दी थी।[6] श्रीमद्भागवत गीता में

1- द्रष्टव्य एच0 भट्टाचार्य, कल्चरल हेरिटेज ऑफ इण्डिया, भाग 2, पृ0, 85

2- वसनात् सर्वभूतानां वसुत्वाद्देवयोनितः। वासुदेवस्ततोवेद्यो इत्यादि, महाभारत, 5/70/30

3- छादयामि जगद्विश्वं भूत्वा सूर्य इवांशुभिः। सर्वभूता धिवासश्च वासुदेवस्ततो ह्यहम् । वही, 12/341/41

4- वही, 3/14/8

5- द्रष्टव्य, रायचौधरी, मैटिरियल्स फारदि स्टडी ऑफ दि हिस्ट्री ऑफ दि वैष्णव सेक्ट, पृ020

श्रीकृष्ण ने स्वयं कहा है " मैं वृष्णियों में वासुदेव हूँ"।[1] महाभारत में भीष्म पर्व के 66वें अध्याय के अंत में भीष्म ने कहा है- अनन्त और दयावान् ईश्वर को हमें वासुदेव ही समझना चाहिये और ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र को उस की पूजा भक्ति भाव से करना चाहिये।[2]

पतंजलि के महाभाष्य, महाभारत एवं आलोचित पुराणों में प्राप्त वासुदेव कृष्ण से सम्बन्धित साक्ष्यों की समीक्षा के पश्चात् यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि इन ग्रन्थों के रचनाकाल तक वासुदेव कृष्ण को देवी सम्मान प्राप्त हो चुका था।

घट जातक में वासुदेव को मथुरा[3] प्रदेश के उत्तरवर्ती भाग में रहने वाले किसी राजवंश की संतान कहा गया है। इसी से मिलता जुलता वर्णन कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी प्राप्त होता है- अपनी इन्द्रियों को संतत रूप में न रखने वाला शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। वातापी हर्ष के मारे फूल कर अगस्त्य ऋषि पर आक्रमण करने के कारण और वृष्णि संघ वाले द्वैपायन के विरुद्ध चेष्टा करने से विनष्ट हो गये।[4] प्रारम्भिक काल में कृष्ण को सत्यत: मथुरा से सम्बन्धित किया गया था। मेगस्थनीज ने भी यह मत प्रतिपादित किया है कि हेरेक्लीज

1- विष्णीनां वासुदेवोस्मि ।
गीता, 10/77

2- रायचौधरी, वही, पृ0 44

3- कावेल, जातक, भाग 4, पृ0 50

4- शामाशास्त्री, द अर्थशास्त्र आफ कौटिल्य, पृ0 12-15

(वासुदेव कृष्ण) को मेथोरा (मथुरा) और क्लेइसोबोरा (कृष्णपुर) जोबारेस (यमुना) प्रदेश में है विशेष सम्मान प्राप्त है।[1] इस उपर्युक्त विचारधारा की पुष्टि पुराणों तथा मथुरा के अभिलेख से भी होती है।[2]

जैन साहित्य में वासुदेव कृष्ण का सम्बन्ध जैन तीर्थंकर अरिष्टनेमि से स्थापित किया गया है।[3] औपपातिक सूत्र में कहा गया है कि आठ ब्राह्मण शिक्षकों में वासुदेव कृष्ण भी एक थे।[4] जैन साहित्यिक साक्ष्यों की समीक्षा से यह स्पष्ट है कि कृष्ण देवकी के पुत्र थे जिन्होंने कंस और जरासन्ध को मार डाला था और स्वयं जरत्कुमार के द्वारा मारे गये थे।[5] इन तथ्यों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वासुदेव कृष्ण एक ऐतिहासिक व्यक्ति थे।

जिन विद्वानों ने वासुदेव कृष्ण के समय[6] के बारे में अपने विचार व्यक्त किये हैं उनमें राय चौधरी[7] तथा पार्जीटर का नाम विशेषतया उल्लेखनीय है।

1- मैक्रिण्डल, एंशिण्ट इण्डिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन क्लासिकल लिटरेचर, पृ0 54

2- एपिग्राफिया इण्डिका, भाग 24, पृ0 208

3- एच॰भट्टाचार्य, हीरोज ऑफ दि जैन लीजेण्ड्स, दि जैन एण्टीक्वेरी, भाग 14, पृ0 15

4- राय चौधरी, वही, पृ0, 7

5- एम0 वैशाखिया, कृष्ण इन द जैन कैनान भारतीय विद्या भाग 7, (1946), पृ0 129

6- वासुदेव कृष्ण की तिथि के संबन्ध में विभिन्न मतों के लिए द्रष्टव्य, राय, प्रोसीडिंग्स ऑफ द इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, भाग 4, पृ0 115

7- एच0सी0 राय चौधरी, पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एंशिण्ट इण्डिया छठवां संस्करण, पृ0, 31-36

उन्होंने शतपथ ब्राह्मण के दसवें पुस्तक तथा बृहदारण्यक उपनिषद् के छठवें अध्याय के आधार पर जनक को जनमेजय से पाँचवीं या छठवीं पीढ़ी के बाद का बतलाया है।[1] दूसरी ओर गुणाढ्य शांखायन, कौशीतकि या शांखायन आरण्यक के अनुसार, उद्दालक आरुणि[2] के समय से दो पीढ़ी बाद का है जो जनक का समकालीन है। इस तरह गुणाढ्य शांखायन को जनमेजय के बाद

1- द्रष्टव्य, राय चौधरी, वही, सातवाँ संस्करण, पृ0 5।

तालिका

जनमेजय	तुराकावषेय
यज्ञवचस	राजस्तम्बायन
कुश्रि	कुश्रि वाजश्रवस
शांडिल्य	उपवेशी
वात्स्य	अरुण
वामकक्षायण	उद्दालक आरुणि ⎫ राजा जनक
महित्थि	याज्ञवल्क्य ⎭
कौत्स	आसुरि
माण्डव्य	आसुरायण
माण्डूकायनी	प्राश्नीपुत्र आसुरिवासिन
संजीवी पुत्र	संजीवी पुत्र

2- सेक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट, भाग 29, पृ0, 40

सातवां या आठवां पीढ़ी का बतलाया जाता है। राय चौधरी पुनः कहते हैं कि हो सकता है कि शांखायन छठवां शताब्दी ई०पू० के लगभग 240 या 270 वर्ष पूर्व अर्थात् 9वीं शताब्दी ई०पू० माना जा सकता है। इस प्रकार परीक्षित के वरिष्ठ समकालीन वासुदेव कृष्ण का समय भी नवीं शताब्दी ई०पू० के आस पास निश्चित हो जाता है। पार्जीटर ने वासुदेवकृष्ण का समय 950 शताब्दी ई०पू० माना है।[2]

पुराणों में भी वासुदेव कृष्ण के सम्बन्ध में पर्याप्त सामग्री पाई जाती है। वासुदेव कृष्ण का एकीकरण वैष्णव धर्म के विकास में बहुत ही सहायक था। पौराणिक वर्णनों के आधार पर यदि देखा जाय तो निश्चय ही दोनों में एकता स्थापित की गई है। वासुदेव शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार से सम्पन्न होती है- एक व्याकरण के आधार पर दूसरे पौराणिक । व्याकरण के अनुसार "वसुदेव" शब्द के आगे अपत्य के अर्थ में अण प्रत्यय के योग से "वासुदेव" शब्द की सिद्धि होने पर इसका शब्दार्थ है वसुदेव का पुत्र । द्वितीय पौराणिक प्रतिपादन के अनुसार "वासुदेव" विष्णु का पर्याय है।[3]

विष्णु पुराण में वासुदेव को विष्णु का नामान्तर बतलाया गया है। इस शब्द की व्युत्पत्ति पर प्रकाश डालते हुये कहा गया है कि विष्णु सर्वत्र हैं और उन्हीं में सभी का वास है इस कारण वे " वासुदेव" शब्द से अभिहित

1- राय चौधरी, वही, पृ०,5।

2- पार्जीटर, एंशिएंट इण्डियान हिस्टारिकल ट्रेडिशन, पृ० 179-83

3- सर्वानन्द पाठक, विष्णु पुराण का भारत, पृ० 216

होते हैं।[1] विष्णु पुराण में एक दूसरे स्थल पर यह वर्णन आया है कि भगवान विष्णु ने पृथ्वी का भार उतारने के लिये देवकी के गर्भ से अवतार लिया।[2] अन्यत्र कहा गया है कि उन परमात्मा में सकल भूत बसते हैं और वे स्वयं भी सब के आत्मारूप से सकल भूतों में विराजमान हैं इसी लिये उन्हें वासुदेव भी कहते हैं।[3] भागवत पुराण में एक स्थल पर भगवान् को सर्वशक्तिमान्, अन्तर्यामी और आराधना के योग्य, समस्त प्राणियों में निवास करने वाला "वासुदेव" कहा गया है।[4] उसी पुराण में अन्यत्र भगवान् को परब्रह्म सत्य के प्रतीक "भगवान् वासुदेव" कहा गया है।[5] भागवत पुराण में नामकरण संदर्भ में गर्गाचार्य जी ने कहा है कि जहाँ विष्णु को रौहिणेय, राम, बल, संकर्षण कृष्ण आदि नामों से विभूषित किया गया है वहीं वसुदेव के घर पैदा होने के कारण लोग उन्हें "वासुदेव" कहते हैं।[6] एक अन्य प्रसंग में श्रीकृष्ण ने स्वयं कहा है "मैंने ब्रह्मा जी की प्रार्थना से यदुवंश में वसुदेव जी के यहाँ अवतार लिया है। अब मैं वसुदेव जी का पुत्र हूँ, इस लिये लोग मुझे वासुदेव कहते हैं।[7] हरिवंश में एक स्थल पर कहा गया है कि यह कृष्ण नाम से जो नन्द गोप का पुत्र बतलाया

1- विष्णु ग्रसिष्णं विश्वस्य······सर्वत्रासौ समस्तं च
   वसत्यत्रेति वैयतः ।
   ततः स वासुदेवेति विद्वद्भिः परिपठ्यते । विष्णु पु०, 1/2/7, 12

2- अवनिभारहरणाय भगवान् नादिमध्यनिधनो
   देवकी गर्भमवततार वासुदेवः ।। विष्णु पु०, 4/15/30

3- सर्वाणि तत्र भूतानि वसन्ति परमात्मनि ।
   भूतेषु च स सर्वात्मा वासुदेवस्ततः स्मृतः ।। वही, 6/5/80

4- नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महीयसे ।
   सर्वभूतनिवासाय वासुदेवाय साक्षिणे ।। भागवत पु०, 8/16/29

5- यत्त तद् ब्रह्म परं सूक्ष्मम शून्यं शून्यकदिपतम् ।
   भगवान् वासुदेवेति यं गृणन्ति हि सात्वताः ।। वही, 9/9/49

6- वही, 8/10/12-14

7- अवतीर्णो यदुकुले गृह आनक दुन्दुभेः ।

जाता है वह वसुदेव से उत्पन्न होने वाला दूसरा पुत्र है, इसलिये वासुदेव नाम से विख्यात होगा।[1] पुन: एक दूसरे स्थल पर कहा गया है कि वसुदेव कुल में पैदा होने के कारण "वासुदेव" नाम से विख्यात[2] हुये।

पुराणों में वासुदेव कृष्ण के अनेक नामों की चर्चा मिलती है। विष्णु पुराण में कृष्ण को यज्ञेय, अच्युत, गोविन्द, माधव, अनन्त, केशव, कृष्ण, विष्णो, हृषिकेश तथा वासुदेव नामों से अभिहित किया गया है।[3] उसी पुराण में परमात्मा स्वरूप ओंकार रूप परब्रह्म को वासुदेव का ही रूप (प्रतीक) बतलाया गया है।[4] विष्णु पुराण में एक दूसरे स्थल पर वासुदेव को सनातन अजन्मा एवं बीजभूत अविनाशी कहा गया है।[5] अन्यत्र उन्हें यज्ञ पुरुष, वासुदेव और वेदान्त वेत्ता विष्णु कहा गया है।[6] भागवत पुराण में एक स्थल पर वासुदेव संज्ञक

1- द्वितीयो वासुदेवाद् वैवासुदेवो भविष्यति ।
सहि ते सहजोमृत्युबन्धिश्च भविष्यति ।।
हरि०, 2/22/60

2- वसुदेवकुले जातो वासुदेवेति शब्दित: ।
गोकुले क्रीडते योऽसौ संकर्षणसहायवान् ।।
वही, 3/82/19

3- यज्ञेशाच्युत गोविन्द माधवानन्त केशव ।
कृष्ण विष्णो हृषीकेश वासुदेव नमोऽस्तुते ।
विष्णु पु० 2/13/9

4- परम ब्रह्मणे तस्मै नित्यमेव नमोनम: ।
यद्रूपं वासुदेवस्य परमात्म स्वरूपिण: ।।
वही, 3/3/28

5- सकलमिदमजस्य यस्य रूपंपरमपदात्मवतस्सनातनस्य ।
तमनिधनमशेष बीजभूतं प्रभुममलं प्रणतास्स्म वासुदेवम् ।।
वही, 3/17/34

6- यज्वभिर्यज्ञ पुरुषो वासुदेवश्च सात्वतै: ।
वेदान्तवेदिभिर्विष्णु: प्रोच्यते यो न तोऽस्मितम् ।।
5/17/15

प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और संकर्षण की स्तुति की गई है।[1] भागवत पुराण में एक दूसरे स्थल पर ओ5प्रकार स्वरूप भगवान् को वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और संकर्षण का रूप बतलाते हुये उनके चतुर्व्यूह का बार-बार ध्यान किया गया है।[2] वेदों का तात्पर्य श्रीकृष्ण में ही है। यज्ञों के उद्देश्य श्रीकृष्ण ही हैं। योग श्रीकृष्ण के लिये ही किये जाते हैं और समस्त कर्मों की परिसमाप्ति भी श्रीकृष्ण में ही है। ज्ञान से ब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्ण की ही प्राप्ति होती है। तपस्या श्रीकृष्ण की प्रसन्नता के लिये ही की जाती है। श्रीकृष्ण के लिये धर्मों का अनुष्ठान होता है और सब गतियाँ श्री कृष्ण में समाजाती हैं।[3]

वैष्णव धर्म से सम्बन्धित विभिन्न पुराणों एवं उपपुराणों की विशद समीक्षा के उपरान्त डा0 हाजरा इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वैष्णव धर्म के अनुयायियों विशेषतया स्मार्त भागवतों ने उक्त ग्रन्थों की रचना वैष्णव धर्म के प्रचार एवं प्रसार के लिये की थी जिनमें कृष्ण का वर्णन प्रचुरता के साथ प्राप्त होता है।[4]

पुराणों के अतिरिक्त निःसन्देह वासुदेव-कृष्ण की एकता वेदोत्तर-वर्ती साहित्य में भी स्थापित की गई है। उदाहरणार्थ, महाभारत के शान्ति - पर्व में कृष्ण का गुणगान करते हुये युधिष्ठिर उन्हें विष्णु के रूप में देखते हैं।[5]

1- नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय धीमहि ।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः सङ्कर्षणाय च।। भागवत पु01/5/37

2- ओम् नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय धीमहि ।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः सङ्कर्षणाय च ।। वही, 6/16/18

3- वासुदेव परावेदा वासुदेव परा मखाः ।
वासुदेवपरा योगा वासुदेवपराःक्रियाः ।।
वासुदेव परं ज्ञानं वासुदेव परं तपः ।
वासुदेव परोधर्मो वासुदेव परागतिः ।। वही, 1/2/28-29

4- हाजरा, स्टडीज, इन उपपुराणाज, भाग । पृ0, 111

5- ______ शान्ति पर्व, अध्याय 43, द्रष्टव्य, भण्डारकर वै0शै0पृ049

विष्णु स्मृति में वासुदेव और विष्णु में एकता स्थापित करते हुये उनका ध्यान करने का आदेश दिया गया है।[1]

वैदिक साहित्य, <u>महाभारत</u>, <u>उपनिषद</u>, <u>ब्राह्मण</u> साहित्य, जैन ग्रन्थ बौद्ध ग्रन्थ एवं पौराणिक साक्ष्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वासुदेव और विष्णु एक ही हैं उपर्युक्त साहित्यिक साक्ष्य वासुदेव कृष्ण और विष्णु को एकता में बहुत ही सहायक सिद्ध हुये हैं, परन्तु इनमें पौराणिक साक्ष्यों का महत्वपूर्ण स्थान है। पुराणों में विष्णु को वासुदेव, कृष्ण, प्रद्युम्न आदि नामों से अभिहित किया गया है। इनमें, वासुदेव-कृष्ण में सन्निहित विष्णु के सभी तत्वों का वर्णन बड़े निखरे रूप में पाया जाता है। पुराण में तो यहाँ तक कहा गया है कि विष्णु को याज्ञिक लोग यज्ञ पुरुष, सात्वतगण "वासुदेव" और वेदान्त वेत्ता विष्णु कहते हैं।[2]

इस प्रकार इन स्रोतों के आधार पर वासुदेव और विष्णु में एकता स्थापित की जा सकती है।

1- भगवन्तं ....चतुर्भुजं ध्यायेत् ध्यायेतपुरुषं विष्णुम् ।

<u>विष्णु स्मृति</u>, 97/10/16

2- द्रष्टव्य, पृष्ठांक,

नारायण और विष्णु का एकीकरण-- नारायण का वैष्णव धर्म के देवताओं में विशिष्ट स्थान है। ये वैष्णव धर्म के त्रिदेवों में से एक हैं। नारायण का वर्णन वैदिक साहित्य के अन्तर्गत अनेक स्थलों पर आया है। ऋग्वेद में एक स्थल पर इस प्रकार कहा गया है- आकाश पृथ्वी तथा देवताओं के पहले वह गर्भाण्ड रूपी वस्तु क्या थी जो जल के ऊपर ठहरी थी और जिस में सभी देवताओं का अस्तित्व था। जल के ऊपर वही गर्भाण्ड ठहरा हुआ था जिस में सभी देवता वर्तमान् थे और जो सभी का आधार स्वरूप है वह विभिन्न वस्तु अजन्मा की नाभि पर ठहरी थी जिस के ऊपर विद्यमान थे[1]। भण्डारकर महोदय ने स्वयंभू को नारायण का द्योतक माना है। शतपथ ब्राह्मण में एक स्थल पर कहा गया है कि नारायण में ही सभी लोक, देव तथा प्राण की प्रतिष्ठा है[2]।

तैत्तिरीय[3] आरण्यक के अन्तर्गत नारायण की विभूतियों का प्राय: वही वर्णन है जो ऋग्वेद में उपर्युक्त प्रसंग में दिखाई पड़ता है। शतपथ ब्राह्मण में पुन: एक स्थल पर पुरुष नारायण को पंचरात्र सत्र का सर्वश्रेष्ठ बन जाने का वर्णन है[4]। नारायण अथवा पुरुष नारायण, इस प्रकार परमात्मा के समान सर्वोच्च हो जाते हैं और ऋग्वेद[5] के "पुरुषसूक्त के रचयिता नारायण ऋषि को

1- ऋग्वेद, 10/82/5,6

2- सर्वांल्लोकानात्मन्निधिषि सर्वेषु लोकेष्वात्मनमधा-
सर्वान्देवानात्मन्निधिषि: ....सर्वेषु देवेष्वात्मानमधा
सर्वान्प्राणानात्मन्निधिषि.........। श0ब्रा0, 13/3/4/11,
भण्डारकर वही, पृ0 43-44

3- तैत्तिरीय आरण्यक, 10/11

4- शतपथ ब्राह्मण, 13/6/1/1

5- ऋग्वेद, 10/90

यदि अन्य कई अंगों की रचना करने वालों को ही भाँति उक्त सूक्त का विषय पुरुष भी मान लिया जाय तो कहा जा सकता है कि "पुरुष" और नारायण शब्द वहाँ वास्तव में एक ही देवता के लिये प्रयुक्त हुये हैं जैसा कि शतपथ ब्राह्मण के उपर्युक्त पुरुष नारायण शब्द से भी सिद्ध होता है।[1] तैत्तिरीय आरण्यक[2] में इसी परमात्मा स्वरूप नारायण को हरि भी कहा गया है जो शब्द पहले इन्द्र के लिये प्रयुक्त हो रहा था आगे चलकर विष्णु का एक नाम हो गया। नारायण शब्द व्युत्पत्ति सम्बन्धी एक दूसरा साक्ष्य हमें मनुस्मृति से प्राप्त होता है।[3]

नारायण के विषय में महाभारत में महत्वपूर्ण साक्ष्य प्राप्त होता है। जो गीता में अप्राप्य है। यह ग्रन्थ पुरुष सूक्त से सम्बन्धित नारायण को ओर संकेत करता है।[4] विष्णु वासुदेव और कृष्ण से नारायण का पूर्ण सम्बन्ध वहाँ दिखलाई पड़ता है। नारायण के सम्बन्ध में विभिन्न परम्पराओं को स्थापित करते हुये उन का समय भिन्न-भिन्न बतलाया गया है। महाभारत के "नारायणीय पर्व" में एक स्थल पर कहा गया है कि कृतयुग में नारायण ने धर्म के रूप में जन्म लिया।[5]

1- भण्डारकर, वही, पृ0 43

2- तै0 आ0, 12/11/1

3- आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वैनर सूनवः। यायदस्यायनं पूर्वतेन नारायणः। मनु0स्मृति, 1/10

4- महाभारत, 12/350/5, द्रष्टव्य, एम0दास गुप्ता, अर्ली विष्णु एण्ड नारायण वर्शिप, इण्डियन हिस्टारिकलक्विार्टर्ली भाग 7, 1931, पृ0 348

5- महाभारत, 7, 200, 57

यद्यपि नारायण परम देवता से अभिन्न न रहे होंगे, नर और नारायण प्राचीन ऋषि कहे गये हैं। वे प्राचीन ऋषि के रूप में वर्णित हैं (पुराणै ऋषि)[1] तपस्या में लीन उन को प्राचीन महान् ऋषि के नाम से अभिहित किया गया है (पुराणौ ऋषि सप्तमौ)[2]। इस सन्दर्भ में एक स्थल पर इनको परम्परागत प्राचीन देवताओं[3] की कोटि में रखा गया है। राय चौधरी ने इसी विचार धारा से सम्बन्धित अपना विचार व्यक्त करते हुये कहा है कि महाभारत में एक स्थल पर[4] नारायण को प्राचीन देवताओं से भी प्राचीनतम बतलाया गया है (पूर्वेशाम्पि पूर्वजः)।

श्वेतद्वीप की कहानी के कथानक में नारायण को हजारों नेत्रों वाला देवता कहा गया है। जो अपने अन्य उपासकों के साथ निवास करते हुये बतलाये गये हैं, जिनको क्षीरसागर[5] के किसी भी प्राणिमात्र के अस्तित्व का ज्ञान नहीं था इस धार्मिक कथानक के आंतरिक साक्ष्य का यथार्थ मूल्य बहुत स्पष्ट नहीं है। कदाचित इस में यह बात सत्य है कि नारायण परम्परागत प्राचीन साधु हैं।[6]

भण्डारकर का विचार है कि नारायण का चरित्र ऐतिहासिक या दैवी नहीं है वरन् प्राकृतिक है।[7] उनके अनुसार इस विचारधारा का विकास

1- वही, 12/335/6, 12/343/34

2- वही, 3/47/19, 4/66/11, 7/87/74

3- नर-नारायण देव अपूर्व देव वितु श्रुतिः । महाभारत,5,49,14

4- राय चौधरी,वही द्वितीय संस्करण,पृ0 113

5- महाभारत,12/335

6- द्रष्टव्य,एस0के0डी0,बावर हेरिटेज, भाग 1,पृ0 15

7- क0व0, भाग 4,पृ0 43

उत्तर ब्राह्मण काल और आरण्यकों के काल में हुआ।[1] राय चौधरी इसी विचारधारा के अन्तर्गत कहते हैं कि यह देवता परमात्मा का ही विकसित स्वरूप था।[2] शतपथ ब्राह्मण में पुरूष नारायण जो ऋषि कहे गये हैं उनके विषय में तीन बातें मुख्य रूप से कही गयी हैं। प्रथम विश्व की रचना याज्ञिक शक्ति से करते हैं, दूसरे ऋग्वेद के पुरूष सूक्त से सम्बन्धित है तीसरे वे पंचरात्र विधि के अनुष्ठाता हैं। यहाँ तो पुरूष नारायण विश्व के रचयिता कहे गये हैं और महाभारत के नारायणीय भाग में नारायण को आंतरिक विश्व से सम्बन्धित किया गया है (नारायण विश्व विद्म पुराण मृ)।[3] इस से नारायण की विश्व सम्बन्धी स्थिति का पता चलता है।

नारायण की व्युत्पत्ति पर यदि गहराई से विचार किया जाय तो यह प्रतीत होता है कि वे एक प्राचीन ऋषि थे। महाभारत में उन्हें प्राचीन ऋषि कहा गया है।[4] राय चौधरी ने यह मत प्रतिपादित किया है कि नारायण ऋग्वेद के पुरूष सूक्त के सिद्ध पुरूष थे।[5] दूसरे विद्वानों का यह कथन है कि नारायण प्राचीन विचारधारा के नेता थे।[6] निःसन्देह पुरूष सूक्त के सिद्ध पुरूष नारायण एक ऋषि थे। नारायण को प्रजापति ब्रह्मा से सम्बन्धित

1- वही,

2- राय चौधरी, वही, पृ0 115

3- महाभारत, 12/337/83

4- वही, 12/47/10

5- राय चौधरी, अ0हि0वै0, पृ0 112

6- एच0 भट्टाचार्य, कल्चरल हेरिटेज, ऑफ इण्डिया, भाग 4, पृ0 120

किया गया है। यह देखा गया है कि शतपथ ब्राह्मण जिस युग का है उस युग में भी नारायण की कल्पना प्राकृतिक ईश्वर के रूप में की गयी और उसे विश्व के रचयिता के रूप में जाना जाने लगा। मनुस्मृति में जहाँ पर संसार की सृष्टि का वर्णन आया है वहाँ नारायण को ब्रह्मा का रूप बतलाया गया है।[1] सृष्टि विषयक कहानी जो वायु पुराण में दी गयी है कई स्थानों पर दोनों देवताओं को एक ही देवता माना गया है।[2] इसी पुराण में एक दूसरे स्थल[3] पर ब्रह्मा, विष्णु के प्रश्न के उत्तर में कहते हैं कि " वे नारायण संसार के रचयिता हैं"। प्रस्तुत अवतरण यह भी संकेत करता है कि ब्रह्मा की तद्रूपता नारायण के साथ पहले की है, बनिस्पत नारायण की विष्णु के साथ की तद्रूपता के। विष्णु पुराण में कहा गया है कि ब्रह्मा नारायण के ही रूप हैं। जिन्होने मछली, कछुआ, शूकर रूप में अवतार ग्रहण किया।[4] इस तरह इस अंश से ऐसा लगता है कि पुराने मतों की तालिका में आये हुये अवतारों को प्रजापति ब्रह्मा से ही सम्बन्धित किया गया है। ब्रह्माण्ड पुराण तीन स्थलों पर ब्रह्मा को नारायण से सम्बन्धित बतलाया है।[5]

1- मनुस्मृति, 1/10-1

2- वायु० पु०, 3/38, 7/3, डी०आर०पाटिल, कल्चरल हिस्ट्री फ्रामदि वायु पुराण, पृ० 64

3- वायु पु०, 24/21

4- विष्णु पु०, 1/4/7-8

5- ब्रह्माण्ड पु०, 1/4/27, 5/140, 6/57

अन्य साहित्यिक स्रोतों की भाँति पुराणों ने भी नारायण और विष्णु के एकीकरण में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। पुराणों में नारायण और विष्णु का एकीकरण स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। विष्णु पुराण में नारायण शब्द की व्युत्पत्ति पर प्रकाश डालते हुये कहा गया है कि "नार" का अर्थ जल होता है जल ही विष्णु का प्रथम निवास स्थान है। इसलिये विष्णु को नारायण कहते हैं। वे नारायण पर अचिन्त्य तथा दूसरे के उत्पत्ति स्थान हैं। वे ब्रह्म के रूप हैं तथा अनादि हैं।[1] भागवत पुराण में नारायण शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार से बतलाई गई है- विराट् पुरुष "नर" से उत्पन्न होने के कारण जल का नाम "नार" पड़ा और उस अपने उत्पन्न किये जल में वह एक हजार वर्षों तक निवास किया इसी से उस का नाम नारायण हुआ।[2] हरिवंश[3] में भी इसी से मिलता जुलता वर्णन है।

विष्णु पुराण में एक स्थल पर ब्रह्मा जी ने समस्त अणुओं से भी अणु और पृथ्वी आदि समस्त गुरुओं (भारी पदार्थों) से भी गुरु (भारी) उन निखिल लोक विश्राम पृथ्वी के आधार स्वरूप, अप्रकाश्य, अभेद्य, सर्वरूप सर्वेश्वर,

---

1- नारायणः परोऽचिन्त्यः परेषामपि स प्रभुः ।
ब्रह्मस्वरूपी भगवाननादिः सर्वसम्भवः ।।
आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वैनर सूनवः ।
अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ।।

विष्णु पु0, 1/4/4-6

2- तास्ववात्सीत् स्वसृष्टासु सहस्रपरिवत्सरान् ।
तेन नारायणो नाम यदापः पुरुषोद्भवाः ।।

भागवत पु0 ,2/10/11

3- आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वैनर सूनवः ।
अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ।।

हरि0, 1/1/36, 3/88/44

अनन्त, अज और अव्यय नारायण को स्तुति की है।[1] विष्णु पुराण में एक दूसरे स्थल पर नारायण को समस्त प्राणियों का पालन कर्ता तथा आदि भूत सनातन पुरुष कहा गया है।[2] इसी से मिलता जुलता वर्णन भागवत पुराण[3] में भी पाया जाता है। हरिवंश में विष्णु के ईश्वरत्व के वर्णन में कहा गया है - वे सर्वशक्तिमान् प्रभु अव्यय होने पर भी अपनी मूर्ति को प्रकट किये रहते हैं और वे नारायण अनेकों रूपवाले सब की उत्पत्ति और अव्यय (अविनाशी) हैं।[4] भागवत पुराण में गोपियों ने नारायण को इन्द्रियों को प्राणियों को, चित्त की तथा मन की रक्षा करने वाला बतलाया है।[5] भागवत पुराण में पुनः एक दूसरे स्थल पर कहा गया है- वे परमात्मा सब के हृदय में विराजमान हैं उन का स्वरूप सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है। उन्हीं सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापी भगवान् श्री नारायण को अपने हृदय में स्थापित कर के राजा ययाति ने निष्काम भाव से उनका यजन किया।[6] प्रातः काल सायंकाल, रात्रि में और मध्यान्ह के समय

1- नमामि सर्वं सर्वेशमनन्तमजमव्ययम् ।
लोकधाम धराधारमप्रकाशमभेदिनम् ।।
नारायणमणीयांसमशेषाणामणीयसाम् ।
समस्तानां गरिष्ठं च भूरादीनां गरीयसाम् ।।

विष्णु पु०, 1/9/40-41

2- हृदि नारायणस्तस्य शिशुमारस्य संस्थितः ।
बिभर्ता सर्वभूतानामादिभूतः सनातनः ।।
वही, 2/9/25

3- भागवत पु०, 6/2/3

4- अव्यक्तो व्यक्तलिङ्गस्थो यत्रैव भगवान् प्रभुः ।
नारायणो ह्यनन्तात्मा प्रभवोऽव्यय एव च ।।

हरि०, 1/42/3

5- इन्द्रियाणि हृषीकेशः प्राणान् नारायणोऽवतु ।
श्वेतद्वीपपतिश्चित्तं मनोयोगेश्वरोऽवतु ।।

भागवत पु०, 10/6/24

भगवान् का स्मरण करने से पाप क्षीण हो जाने पर मनुष्य श्री नारायण को प्राप्त कर लेता है।[1] भागवत पुराण में उद्धव जी से भगवान् स्वयं कहते हैं- जो योगी मेरे नारायण स्वरूप में जिसे तुरीय और भगवान् भी कहते हैं मन को लगा देता है, मेरे स्वाभाविक गुण उसमें प्रकट होने लगते हैं और उसे "वशिता" नाम की सिद्धि प्राप्त हो जाती है।[2] वेद नारायण के परायण हैं। देवता भी नारायण के अङ्गों में कल्पित हुये हैं और समस्त यज्ञ भी नारायण की प्रसन्नता के लिये ही हैं। उनसे जिन लोगों की प्राप्ति होती है वे भी नारायण में ही कल्पित हैं।[3] भागवत पुराण में इसी अंश में एक स्थल पर कहा गया है कि सब प्रकार के योग भी नारायण की प्राप्ति के हेतु ही हैं। सारी तपस्यायें नारायण की ओर ही ले जाने वाली हैं। ज्ञान के द्वारा भी नारायण ही जाने जाते हैं। समस्त साध्य और साधनों का पर्यवसान भगवान् नारायण में ही है।[4] हरिवंश में एक स्थल पर कहा गया है कि आप अत्यन्त स्थूल और वृद्ध हैं, जाग्रत

1- प्रातर्निशि तथा सन्ध्यामध्यान्हदिषु संस्मरन् ।
नारायणमवाप्नोति सद्यः पापक्षयान्नरः ।
विष्णु पु0, 2/6/39

2- नारायणे तुरीयाख्ये भगवच्छब्दशब्दिते ।
मनो मय्यादधद् योगी मद्धर्मा वशितामियात् ।।
भागवत पु0, 11/15/16

3- नारायण परावेदा देवा नारायणाङ्गजा: ।
नारायणपरा लोका नारायण परामखा: ।।
वही, 2/5/15

4- नारायण परो योगो नारायण परं तप: ।
नारायण परं ज्ञानं नारायण परा गति: ।।
वही, 2/5/16

अवस्था के अभिमानी विश्व संज्ञक पुरुष हैं, इन्द्र हैं हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) हैं। आप को नाभि में हिरण्य हैं इसी लिये आप हिरण्य नारायण कहलाते हैं, और आप अंतर्यामी नारायण हैं नरों (मनुष्यों) के अयन (आश्रय) हैं आप का वर्ण आदित्य के समान कान्तिमान है। आप सूर्य के समान तेजस्वी हैं। आप म महापुरुष, सुरश्रेष्ठ, आदि देव, पद्मनाभ, कमल पर शयन करने वाले कमल लोचन हैं। आप सम्पूर्ण देव स्वरूप हैं आप के सब ओर मुख और नेत्र हैं आप इस संसार के रक्षक और संहारक हैं।[1] हरिवंश में पुन: एक स्थल पर कहा गया है कि वे श्री नारायण देव सर्व लोकमय हैं। ये ही सर्व देव मय हैं और स्वर्ग के सम्पूर्ण देवता इन्हीं के स्वरूप (अर्थात् विष्णु मय)[2] हैं सब देवता नारायण के ही उपासक हैं। सम्पूर्ण क्रियायें नारायण को ही प्राप्त होती हैं। यज्ञ के परम

1- स्थविष्ठ स्थविर विश्व तुराषाट् हिरण्यगर्भ हिरण्यनाभ हिरण्यनारायण
हिरण्यनारायणान्तर नृणामयन आदित्यवर्ण
आदित्यतेज: महापुरुष सुरोत्तम आदिदेव पद्मनाभ
पद्मेशय पद्माक्ष पद्मगर्भ हिरण्याग्रकेश शुक्ल
विश्वदेव विश्वतोमुख विश्वाक्ष विश्वसम्भव
विश्वभुक्त्वमेव । हरि0, 3/68/6

2- एष लोकमयो देवो लोकाश्चैतन्मयास्त्रय: ।
एष देवमयश्चैव देवाश्चैतन्मया दिवि ।।
वही, 1/49/9

आश्रय नारायण ही हैं तथा श्रुतियों के परम प्रतिपाद्य तत्व वे ही हैं।[1] मोक्ष पराकाष्ठा नारायण ही हैं और यज्ञ भी नारायण की प्रसन्नता के लिये किया जाता है।[2] ज्ञान के उत्कृष्ट रूप नारायण हैं तपस्या द्वारा परम प्राप्य वस्तु नारायण ही हैं। सत्य ही नारायण की प्राप्ति का साधन है तथा परम पद भी नारायण ही हैं नारायण से बढ़कर दूसरा देवता न हुआ है और न होगा।[3] विष्णु स्मृति में विष्णु की प्रार्थना करती हुई पृथ्वी उन्हें नारायण नाम से सम्बोधित करती है।[4]

1- नारायण परादेवा नारायणपरा: क्रिया: ।
 नारायण परो यज्ञो नारायणपर: श्रुति: ।।
 वही, 3/33/36

2- नारायण परो मोक्षो नारायण परागति: ।
 नारायण परो धर्मो नारायण पर: क्रतु: ।।
 वही, 3/33/37

3- नारायणपरं ज्ञानं नारायण परं तप:।
 नारायण परं सत्यं नारायण परं पदम् ।
 नारायणपरो देवो न भूतो न भविष्यति ।।
 हरि0, 3/33/38

4- नारायण। परायण । जगत्परायण । नमोनमइति ।
 विष्णु स्मृति, 98/98-101

षष्ट अध्याय

भागवत धर्म का विकास

भागवतधर्म की उत्पत्ति एवं विकास-- भारतीय संस्कृति धर्मप्रधान रही है। धर्म ही भारतीय जीवन का सर्वोच्च आदर्श माना गया है। धर्म की परम्परा अति प्राचीन काल से इस देश में प्रारम्भ होती है। यहाँ अनेक धर्मों तथा सम्प्रदायों का प्रादुर्भाव हुआ जिसमें हिन्दूधर्म की वैदिक, पौराणिक और शाक्त धारायें तथा बौद्ध और जैन धर्म प्रमुख हैं।[1] भारत के विशाल प्रांगण में अनेक वर्गों के लोग सभ्यता और संस्कृति के विभिन्न स्तरों पर प्राय: सदा ही रहे हैं। उनमें सभी वर्गों के धर्मों की कुछ निजी विशेषताओं का होना स्वाभाविक है। ऋग्वैदिक धर्म में ऋत् का विशेष महत्व था, धर्म के मूलभूत तत्व ऋत् में ही समाहित थे। कालान्तर में ऋत् के नैतिक स्वरूप तथा वैदिक कालीन ब्राह्मण धर्म के सम्मिश्रण से धर्म का वृहत स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। ब्राह्मण कालीन धर्म यज्ञ यागादिक प्रक्रिया से विशेष प्रभावित था किन्तु औपनिषदिक साहित्य में धर्म के आध्यात्मिक पक्ष पर जोर दिया गया है। यज्ञों को अब उतना अधिक महत्व नहीं दिया जाता था। उपनिषदों में यज्ञों की निन्दा प्राप्त होने लगती है।

यज्ञों का कर्मकाण्ड उपनिषदों का ज्ञान मार्ग प्रधानत: विद्वानों और अधिक विचारशील व्यक्तियों तक ही सीमित हो गया। इस के साथ ही एक सार्वजनिक धार्मिक धारा का विकास हुआ जिस में वैदिक, अवैदिक तथा जन साधारण के धार्मिक विश्वासों का समन्वय था। वह पौराणिक धारा थी।[2] पौराणिक परम्परा में भक्ति के विकास की झाँकी-झाँकी दृष्टिगोचर होती है। भक्ति का उद्गम वेद है, तथा इस का सांगोपांग निरूपण तथा भक्ति मार्ग

1- लल्लन जी गोपाल तथा ब्रजनाथ सिंह यादव, भारतीय संस्कृति, पृ060

2- वही, पृ0, 68

के आदर्श को पूर्ण प्रतिष्ठा विष्णु भागवत आदि पुराणों में ही मिलती है। पौराणिक धर्म में वैष्णव, शैव आदि सम्प्रदाय थे। परम्परा के अनुसार वैष्णव धर्म के प्रवर्तक श्री कृष्ण थे। इसका सर्वप्रथम प्रचार मथुरा के आस पास के क्षेत्र में हुआ था। इस धर्म के उपास्य देव श्रीकृष्ण थे और इसका नाम भागवत धर्म था। कालान्तर में वासुदेव कृष्ण का तादात्म्य (एकत्व) वैदिक देवता विष्णु के साथ स्थापित किया गया और भागवत धर्म वैष्णव धर्म कहलाने लगा।

"भावत", "भक्त", "भक्ति" तथा "भागवत", संस्कृत धातु "भज" से निष्पन्न है जिस का पूर्व वैदिक साहित्य में सर्वप्रथम उल्लेख किया गया है तथा इसके विभिन्न अर्थ[1] स्पष्ट किये गये हैं। उदाहरणार्थ, "विभाजित करना" वितरण करना, "नियत करना (या देना), भाग लेना तथा "साझेदार बनना"। परन्तु इस शब्द के अर्थ में विद्वानों में मतवैभिन्न दृष्टिगोचर होता है। ग्रियर्सन के अनुसार "भज" का अर्थ "सेवा करने" से है।[2] सुवीरा जायसवाल के अनुसार "भज" का अर्थ सेवा से नहीं ग्रहण किया जा सकता।[3] इसी प्रकार "भग" शब्द ऋग्वेद में "ऐश्वर्य", "भाग", तथा "शुभ भाग" के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।[4] इसके साथ वत् प्रत्यय जुड़ने से अधिकार भाव का द्योतन होता है, इस शब्द का अर्थ अधिकृत भौतिक द्रव्यों से ग्रहण किया गया है। यथा-"रूपवत" का अर्थ होता है "रूप का स्वामी" या (रूपवान्)[5]

1-द्रष्टव्य, संस्कृत शब्द "भज" मोनियर विलियम, संस्कृत इंगलिश डिक्सनरी ।

2- ग्रियर्सन, एन्साइक्लोपीडिया ऑफ रिलिजन एण्ड एथिक्स, भाग2, पृ0 540

3- सुवीरा जायसवाल, ओरिजिन एण्ड डेवेलपमेण्ट ऑफ वैष्णविज्म, पृ0 38

4- द्रष्टव्य, संस्कृत शब्द भग, मोनियर विलियम संस्कृत इंगलिश डिक्सनरी ।

5- द्रष्टव्य, संस्कृत शब्द वत्, आप्टे, संस्कृत इंगलिश डिक्सनरी

हाप्किंस ने एक ऋग्वैदिक ऋचा[1] उद्धृत की है जिसमें "भागवत" शब्द (भग) के अधिपति के लिये प्रयुक्त है, जिसका दाता भी वही है। वह स्तुति "भग" देवता से सम्बन्धित करके लिखी गई है जिनका वर्णन "भगवान्" के रूप में हुआ है तथा उससे यह याचना की गई है कि वे अपने अनेकानेक उपासकों से "भगवन्तः" अर्थात् धनवान बना दे । इस प्रकार ऋग्वेद में "भगवत" एक सामान्य शब्द जो देवताओं और मनुष्यों दोनों के लिए भौतिक ऐश्वर्य के अधिपति के रूप में प्रयुक्त हुआ है।

उत्तर वैदिक कालीन ग्रन्थों में प्राप्त भागवत और नारायण के स्वरूपों में सामान्य विकास से सम्बन्धित साक्ष्यों के विवेकपूर्ण अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि नारायण के उपासकों में भागवत एवं भक्ति की भावना का उदय हुआ और उनकी पूजा करने वाले भागवत कहे जाने लगे। प्रस्तुत सन्दर्भ में महाभारत के शान्ति पर्व के एक अवतरण का उल्लेख किया जा सकता है- इसमें यह स्पष्ट उल्लेख है कि नारायण विष्णु के रूप हैं वे भगवान् ईश्वर के अष्टांश हैं,[2] परन्तु ऐसा भी उल्लेख है कि केशव विष्णु का ही दूसरा नाम है जो भगवान् के अष्टांश[3] है। इससे यह प्रतीत होता है कि भगवान् परमेश्वर विष्णु नारायण की ही उपाधि थी।

"महाभारत के नारायणीय" खण्ड में परमेश्वर नारायण विष्णु-वासुदेव के उपासकों को सात्वत, भागवत, पंचरात्र और एकान्तिन नाम से अभिहित किया गया है। सात्वत मौलिक रूप से उस वृष्णि जाति का ही दूसरा

1- ऋग्वेद, 10/60/5, हाप्किंस, जर्नल ऑफ रायल एशियाटिक सोसाइटी, 1911; पृ० 736

2- डी०सी० सरकार, दि एज आफ इम्पीरियल यूनिटी, भाग 2 पृ० 447

3- महाभारत, 12,271,59-61

नाम था जिस में वासुदेव कृष्ण पैदा हुये थे। सात्वतों का अपना निजी धर्म था जिसमें परमपुरुष के रूप में वासुदेव कृष्ण की पूजा की जाती थी। कालान्तर में जब उनका सम्प्रदाय दूसरे समुदायों में फैल गया तो उनकी जाति वंश या गोत्र का जाति सम्बन्धी नाम उनके उपासकों के लिए एक सामान्य पदवी हो गई।[1] नारायणीय में एकान्तिक धर्म पर विशेष बल दिया गया है। शुद्ध एवं निष्काम भक्ति द्वारा किसी देवता विशेष की पूजा करने वाले नारायण के उपासकों के द्वारा एकान्तिन नाम से अभिहितकिया गया है। एकान्तिकधर्म में भक्ति को महत्वपूर्ण स्थान मिला, जिस की स्थापना वासुदेव कृष्ण ने की थी। इस के अतिरिक्त वासुदेव कृष्ण भक्तिधर्म के उपदेशक थे।[2] रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर का विचार है कि नारायणीय खण्ड में एकान्तिक धर्म की प्राचीनता को स्थापित करने में जिस प्रकरण प्रणाली का प्रयोग किया गया है उसी प्रकरण प्रणाली का प्रयोग भागवत धर्म की प्राचीनता को स्थापित करने के लिए हुआ है।[3] पद्मतन्त्र[4] भी इस ओर संकेत करता है कि भागवत, सात्वत और एकान्तिक उसी पद्धति का प्रतिनिधित्व करते हैं।

1- विष्णु पुराण वर्णन करता है कि याज्ञिक लोग "यज्ञपुरुष" सात्वत (यादव अथवा भागवतभक्त) गण "वासुदेव" और वेदान्त वेत्ता विष्णु कहते हैं। द्रष्टव्य विष्णु पु0, 5/17/15

2- अहोह्येकान्तिनः सर्वान् प्रीणाति भगवान् हरिः ।
विधिप्रयुक्ताम् पूजान् च गृह्णाति भगवान् स्वयं ।।
येतुदग्धेन्धना लोके पुण्यपाप विवर्जिताः ।
तेषाम् (त्वयामि निर्दिष्टा परंपरया गता गतिः ।।
चतुर्थ्यामि चैव ते गत्याम् गच्छन्ति पुरुषोत्तमम् ।
एकान्तिनस्तु पुरुषा गच्छन्ति परमं पदम ।।
नूनमेकान्त धर्मोयम् श्रेष्ठो नारायण प्रियः । महाभारत, 12, 336, 1-4

3- कoवo, 4, पृo 18-19

4- जर्नल ऑफ रायल एशियाटिक सोसाइटी, 1911, पृ0935

नारायण के उपासकों के लिए पंचरात्र शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख महाभारत के नारायणीय भाग में हुआ है तथा नारायण को पंचरात्रिक कहा गया है।[1] अन्य विद्वानों ने इस शब्द के अर्थ को स्पष्ट करने के लिये वर्तमान् -पंचरात्र साहित्यिक साक्ष्यों का प्रमाण दिया है, परन्तु पंचरात्र शब्द का संहिताओं और अन्य धार्मिक ग्रन्थों में कोई उल्लेख नहीं मिलता जिससे अर्थ विशेष का आभास हो सके। नारदपंचरात्र[2] के अनुसार रात्र का अर्थ ज्ञान है। विशेष रूप से पंचरात्र एक प्रक्रिया है जिस का सम्बन्ध ज्ञान के पाँच प्रकारों से है जिस में तात्विक, यौगिक तथा वैशेषिक प्रक्रियायें उल्लेखनीय हैं। अहिर्बुध्न्य संहिता[3] में पंचरात्र का अर्थ बतलाते हुये कहा गया है कि पर देवता की पाँच प्रकार से उपासना करना ही पंचरात्र है। शतपथ ब्राह्मण[4] के अनुसार पंचरात्र का अर्थ नारायण के सूत्रों के अनुसार पाँच दिनों तक पुरुषमेध यज्ञ करना ही पंचरात्र है।

नारायण परम सत्य है, ऋत है, वेद यज्ञ और तप सभी नारायण से सम्बन्ध रखते हैं। इन्हीं पुरुष नारायण से इस धर्म का आविर्भाव हुआ अत: भागवत धर्म नारायण परक और नारायण प्रिय धर्म कहलाता है।[5] सृष्टि के प्रारम्भिक काल में ब्रह्मा जी ने दक्ष प्रजापति को, दक्ष ने अपने जेष्ठ दौहित्र

1- महाभारत, 12, 325, 4

2- नारद पंचरात्र, 1/1/44

3- अहिर्बुध्न्य संहिता, 11/64/6

4- शतपथ ब्राह्मण, 13, 6, 1, 7

5- नारायण परावेदा यज्ञा नारायणात्मका: ।
तपो नारायण परं नारायण परागति: ।।
नारायण परं सत्यं ऋतं नारायणात्मकम् ।
नारायण परो धर्म: पुनरावृत्ति दुर्लभ: ।।
प्रवृत्ति लक्षणश्चैव धर्मो नारायणात्मक: ।
नूनमेकान्तधर्मोऽयं श्रेष्ठो नारायण प्रिय: ।
महाभारत शान्ति पर्व, अध्याय, 347-348, 81, 82, 83, 84

आदित्य को, आदित्य ने अपने छोटे भाई विवस्वान् को इस धर्म का उपदेश किया। "त्रेता युग के आरम्भ में विवस्वान् ने मनु को यह धर्म दिया। मनु ने इसे लोक धारणार्थ अपने पुत्र इक्ष्वाकु को प्रदान किया और इक्ष्वाकु से आगे {यह} सब लोगों में फैल गया। हे राजन् सृष्टि का विनाश होने पर {यह धर्म} फिर नारायण के पास चला जायगा।"[1] रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर का विचार है कि भागवत धर्म के प्रारम्भिक स्वरूप में वासुदेव और उनके बन्धु की पूजा का कोई विधान नहीं था। भगवान् को हरि नाम से अभिहित किया गया था। वे यज्ञादि के अनुष्ठान में अग्रगण्य माने जाते थे। द्वापर के अंत में कृष्ण आदि की चर्चा भागवत धर्म के प्रचार में नहीं थी। उस समय के भागवत धर्म का उपदेश करने वाले चित्रशिखण्डिन हैं। भागवत धर्म के परवर्ती स्वरूप में जो विकास हुआ, उसका प्रारम्भ करने वाले सम्भवतः भगवान् श्रीकृष्ण थे। उस स्वरूप की प्रतिष्ठा भगवद्गीता में हुई और उसके उपदेशक को नारायण कहा गया।[2]

यह मान्य है कि वासुदेव कृष्ण भागवत धर्म के पारम्परिक संस्थापक थे।[3] श्री कृष्ण की विचारधारा ही कालान्तर में भागवत धर्म के रूप में प्रतिष्ठित हुई।[4]

महाभारत के शान्ति पर्व में नारायणीय भाग के वर्णन की समालोचना करते हुये ग्रियर्सन ने यह विचार व्यक्त किया है कि वासुदेव की उपासना,

---

1- त्रेतायुगा दौ च ततो विवस्वान्म न वैददौ
   मनुश्च लोक भृत्यर्थं सुतायेक्ष्वाकवे ददौ।।
   इक्ष्वाकुणा च कथितो वाप्यलोकानवस्थित: ।
   गमिष्यति क्षयान्ते च पुनर्नारायणं नृप ।।   महाभारत शा0प0, 348/51-52

2- भण्डारकर, वै0शै0, पृ0, 10-11

3- ग्रियर्सन नारायण एण्ड दि भागवतस, इण्डियन एण्टीक्वेरी, 1908, पृ0253

4- आर0सी0 मजूमदार, इवोल्यूशन आफ दि रिलीजन फिलासफिक कल्चर इन इण्डिया, कल्चरल हेरिटेज आफ इण्डिया, भाग 4, पृ0 37

यादवों द्वारा प्रचलित हुई जो मध्यदेश के दक्षिण में आधुनिक राजपूताना तथा गुजरात के उत्तरी भाग में रहते थे।[1] आर०पी० चन्दा[2] को ग्रियर्सन का उपर्युक्त मत मान्य है। रायचौधरी[3] के अनुसार इस सम्प्रदाय की जन्मभूमि यमुना घाटी थी। मेगस्थनीज ने हेरेक्लीज का साम्य वासुदेव कृष्ण से स्थापित किया है जिसकी उपासना शूरसेन जनपद (मथुरा) के निवासी ~~शूरसेन~~ करते थे।[4] ~~जो एक क्षत्रिय जाति थी।~~

विष्णु पुराण में भागवत का तात्पर्य बतलाते हुये कहा गया है कि जो अव्यक्त, अजर, अचिन्त्य, अज, अव्यय, अनिर्देश्य, अरूप और पाणिमादादि शून्य है, परमात्मा का वह स्वरूप ही "भागवत" शब्द का वाच्य है और भागवत शब्द ही उस आद्य और अक्षय स्वरूप का वाचक है। हे द्विज ब्रह्म यद्यपि शब्द का विषय नहीं है तथापित उपासना के लिये उस का "भावत" शब्द से उपचारत: कथन किया जाता है। समस्त कारणों के कारण पर ब्रह्म के लिये ही "भावत" शब्द प्रयोग किया गया है। इस §भावत शब्द § में भकार के दो अर्थ है- पोषण करने वाला तथा गकार के अर्थ कर्म फल प्राप्त करने वाला लय करने वाला और रचयिता है। ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य इन छ: का नाम "भा" है। त्याग करने योग्य गुण आदि को छोड़ कर ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य और तेज आदि सगुण ही "भावत" शब्द के वाच्य है।[5]

1- ग्रियर्सन, वही, पृ0, 252

2- आर०पी० चन्दा, दिइण्डोआर्यनरेसेस, भाग 1, पृ0, 101

3- राय चौधरी, अ0हि0वै0, पृ0 95

4- मैक्रिण्डल, एंशिएंट इण्डिया ऐज डिस्क्राइब्ड बाई मेगस्थनीज एण्ड एरियन पृ0 206

5- विष्णु पु0, 6/5/66-69

भागवत पुराण में मूलत: और अधिकांशत: भागवत धर्म का निरूपण ही है, भागवत पुराण में "भागवत" का विशेष अर्थ बतलाया गया है। भगवान् ने स्वयं कहा है कि प्रिय उद्धव मैंने वेदों और शास्त्रों के रूप में मनुष्यों के धर्म का उपदेश किया । उनके पालन से अन्त: करण शुद्धि आदि गुण और उल्लङ्घन से नरकादि दु:ख प्राप्त होते हैं, परन्तु मेरा जो भक्त उन्हें भी अपने ध्यानादि में विशेष समझ कर त्याग देता है और जो मेरे ही भजन में लगा रहता है वह परम संत है।[1] भागवत पुराण में पुन: एक स्थल पर कहा गया है कि तुम्हारा यह निश्चय बहुत ही सुन्दर है क्यों कि यह भागवत धर्म के सम्बन्ध में है जो समस्त जगत को जीवन दान देने वाला है, पवित्र करने वाला है।[2] यह भागवत धर्म एक ऐसी वस्तु है, जिसे कानों से सुनने, वाणी से उच्चारण करने, चित्त से स्मरण करने, हृदय से स्वीकार करने से मनुष्य उसी क्षण पवित्र हो जाता है।[3] भगवान् ने भोले भाले अज्ञानी पुरूषों को भी सुगमता से साक्षात् अपनी प्राप्ति के लिए जो उपाय स्वयं श्री मुख से बतलाते हैं उन्हें ही "भागवत " धर्म समझो।[4] भागवत पुराण में अन्यत्र कहा गया है कि स्वयं भगवान् ने ही धर्म की मार्यादा का निर्माण किया है। भगवान के द्वारा निर्मित भागवत धर्म परम शुद्ध और अत्यन्त गोपनीय है। इस जगत में जीवों के लिये बस यही सब से बड़ा कर्तव्य परम धर्म है कि वे नाम कीर्तन आदि उपायों से भगवान् के चरणों में भक्तिभाव प्राप्त कर लें ।[5]

1- आज्ञायैवं गुणान् दोषान् मयादिष्टानपि स्वकान् ।
धर्मान् सन्त्यज्य य: सर्वान् मां भजेत स सत्तम: ।।भागवत पु0, 11/11/32

2- ज्ञात्वाज्ञात्वाथ ये वै मां यावान् यश्चास्मि यादृश: ।
भजन्त्यनन्यभावेन ते मे भक्ततमा मता: ।। वही, 11/11/33

3- श्रुतोऽनुपठितोध्यात आदृतो वानुमोदित: ।
सद्य: पुनाति सद्धर्मो देव विश्वद्रुहोऽपिहि ।। वही, 11/2/12

4- ये वै भगवता प्रोक्ता उपाया ह्यात्मलब्धये ।
अञ्ज: पुंसामविदुषां विद्धि भागवतान् हितान्, वही, 11/2/34

5- वही, 6/3/19/22

भागवत पुराण में "भागवत" शब्द अपना विशिष्ट स्थान रखता है। ए०के० बनर्जी के अनुसार भगवान् में अनन्त शक्ति निहित है और ऐसे भी गुणों का प्रतीक है जिनका सम्बन्ध सम्पूर्ण जगत से है उसी को भागवत कहते हैं। ईश्वर सम्पूर्ण मानव जाति के प्रति प्रेम का प्रतीक है जो इस संसार में आभिमत आत्माभिव्युक्ति, आत्मनिश्चय, आत्मचेतन बुद्धि वाला है।[1] वेसनगर[2] में प्राप्त एक अभिलेख में हिलिओदोर ने अपने को देव देव वासुदेव के सम्मान में गरुणध्वज खड़ा करने वाला कहा है हेलिओदोर ने अपने आप को भागवत कहा है। वह दिय का पुत्र, तक्षशिला का निवासी तथा यवन दूत था और तक्षशिला के राजा अंत लिकित के यहाँ से पूर्वीमालवा के राजा भागभद्र के यहाँ दूत के रूप में आया था । इस लेख से प्रतीत होता है कि यह अभिलेख ई०पू० दूसरी शताब्दी के प्रारम्भिक काल का है। उस समय "वासुदेव " को पूजा सर्वेश्वर" के रूप में होती थी और उनके उपासक "भागवत" कहे जाते थे।

राजपूताना[3] के घोसुण्डी नामक स्थल से पाये गये एक अभिलेख में जो कि दुर्भाग्यवश खण्डित अवस्था में है, संकीर्ण एवं वासुदेव के उपासना मण्डप के चारों ओर एक भक्ति के निर्माण का उल्लेख है। अभिलेख के अक्षरों के स्वरूप से प्रतीत होता है कि यह अभिलेख ई० पू० पहली शताब्दी के उत्तरार्ध में उत्कीर्ण हुआ होगा।

1- ए०के० बनर्जी, विष्णु एण्ड दि भागवत पुराण, हिस्ट्री ऑफ फिलासफी ईस्टर्न एण्ड वेस्टर्न, भाग 1, पृ० 123

2- सरकार, सेलेक्ट, इंसक्रिप्शंस, पृ० 90

3- सरकार, वही, पृ० 91

सातवाहन वंश के तृतीय शासक सातकर्णि प्रथम की रानी नायनिका के समय के नानाघाट की विशाल गुफा के अभिलेख सं0 1 में प्रारम्भिक वन्दन में अन्य देवों के नामों के साथ संकर्षण एवं वासुदेव के नाम द्वन्द्व समास में प्राप्त होते हैं। अक्षरों की आकृति से यह अभिलेख ई0 पू0 प्रथम शताब्दी का प्रतीत होता है।

भागवत शब्द जिस भज धातु से निष्पन्न हुआ है उसी से भक्ति और भक्त शब्द बने हैं। भागवत का अर्थ विभिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न बतलाया है, किसी के अनुसार प्रशंसनीय[1], पूर्ण[2], पवित्र[3], तथा किसी के अनुसार कल्याणकारी[4] है। मैक्निकाल का विचार है कि यदि भागवत के मूलरूप को देखा जाय तो यह प्रतीत होता है कि प्राचीन सौर्य देवता"भग" जो आदित्यों में से एक हैं पर आधारित है।[5] यद्यपि "भग" और भागवत में शब्द साम्य होने के कारण दोनों एक प्रतीत होते हैं, परन्तु इस सिद्धान्त के समर्थन में कोई अन्य प्रमाण नहीं मिलते ।[6]

1- ग्रियर्सन, जर्नल ऑफ रायल एशियाटिक सोसाइटी बंगाल, 1910, पृ0 160

2- वी0वी0 सावनी, जर्नल ऑफ रायल एशियाटिक सोसाइटी, 1910, पृ0 863

3- फोटोस्लेडर, जर्नल ऑफ रायल एशियाटिक सोसाइटी, 1911, पृ0 194

4- हापकिंस, जर्नल ऑफ रायल एशियाटिक सोसाइटी, 1911, पृ0 727-38

5- मैक्निकाल, इण्डियन थीज्म, पृ0 32

6- एम0दास0 गुप्ता, इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली, भाग 7, पृ0 98

वासुदेव कृष्ण के बड़े भाई रोहिणी के पुत्र संकर्षण को एक देवता की कोटि में माना जाने लगा।[1] इसकी सूचना चतुर्थ शताब्दी ई0पू0 में विरचित निद्देश से मिलती है जिसमें पूर्वकालीन रीतिरिवाजों का वर्णन है।[2] देव तुल्य पूजे जाने की भावना केवल वासुदेव कृष्ण तक ही सीमित न रही वरन् संकर्षण वासुदेव कृष्ण के दो पुत्र प्रद्युम्न और साम्ब तथा प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध की भी उपासना होने लगी। शक क्षत्रपों के शासन काल में मथुरा भागवत धर्म का प्रधान केन्द्र था। महाक्षत्रप रंजुबुल (। से 15 ई0) के पुत्र, सोडास के समय का मोरा अभिलेख[3] पाँच वृष्णि वीर देवताओं की मूर्तियों के स्थापना का प्रमाण प्रस्तुत करता है। "वीर" ऐसे विशेषणों का प्रयुक्त होना इस शिला लेख में महत्वपूर्ण है। "वीर" शब्द का तात्पर्य बहादुर है। इसी लिए वासुदेव कृष्ण और उनके कुछ सम्बन्धी भी उसी बहादुर देवकोटि में रक्खे गये हैं।[4] जे0एन0 बनर्जी का विचार है कि वीर देव ही वासुदेव धर्म के विकास के प्रमुख कारण थे।[5]

उपर्युक्त साक्ष्यों से यह स्पष्ट है कि वासुदेव कृष्ण प्रमुख व्यक्ति थे, कुछ आदर्श एवं वीर देव होने के कारण उन्हे और उनके सम्बन्धियों को देव तुल्य माना गया, परन्तु वासुदेव कृष्ण का मामला उनके दूसरे सम्बन्धियों से कुछ भिन्न था । वे देव तुल्य माने जाने वालों तथा लड़ने वालों में से प्रमुख थे। वे केवल वीर ही नहीं वरन् धार्मिक गुरु थे। जरथुस्त्र की भाँति वासुदेव कृष्ण ने जिन धार्मिक विचारों का प्रतिपादन किया, वही बाद में भागवत धर्म की आधार शिला बनी।[6]

1- सरकार, सेलेक्ट इंसक्रिप्सन, पृ0 186

2- क0व0, 4, पृ0 3

3- एपिग्राफिया इंडिका, 24, पृ0 209

4- एस0के0 डे0, आवर हैरिटेज, पृ0 19

5- जे0 एन0बनर्जी, कम्प्रेहेन्सिव हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग2, पृ0 384

6- इलियट, हिन्दूइज्म बुद्धिज्म, भाग 2, पृ0156

भागवत धर्म के प्रादुर्भाव से सम्बन्धित कुछ पौराणिक वर्णन पाये जाते हैं। ग्रियर्सन का विचार है कि भागवत धर्म सम्बन्धी जितने भी उपाख्यान हैं उनका परोक्ष अथवा अपरोक्ष रूप में सूर्य से सम्बन्ध है।[1] ग्रियर्सन इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि भागवत धर्म सूर्य उपासना का ही विकसित रूप था।[2] राय चौधरी ने भी इस मत को स्वीकार किया है।[3] इन विद्वानों ने जिन साक्ष्यों की सहायता ली है वे महाभारत को छोड़कर विष्णु पुराण, भक्तिमाल और बाद की पुस्तकों से बाद के हैं। महाभारत से स्पष्ट हो जाता है कि भगवान् ने इस धर्म की शिक्षा सबसे पहले सूर्य को दी, जिन्होंने उसे मनुष्यों तक पहुंचाया।[4] राय चौधरी ने गीता की ओर ध्यान आकृष्ट किया है, जिस के अनुसार वासुदेव कृष्ण ने विवस्वान्(सूर्य) को इस धर्म की शिक्षा दी। इन्होंने मनु को बताया और मनु ने इसका उपदेश इक्ष्वाकु को किया।[5] इससे स्पष्ट हो जाता है कि सर्वप्रथम वासुदेव कृष्ण ने ही भागवत की शिक्षा दूसरों को दी। इस प्रकार सूर्य को तृतीय स्थान प्राप्त होता है। जहाँ तक वासुदेव कृष्ण का सम्बन्ध गरुड़, वर्क[6] और नारायण से है यह बाद के साक्ष्यों पर आधारित है जिससे कोई सही निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। वस्तुत: कोई ऐसा साक्ष्य नहीं है जिससे यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि भागवत धर्म का उद्भव

1- ग्रियर्सन, इण्डियन एण्टीक्वेरी, भाग 8, पृ0 156

2- वही, पृ0 156

3- राय चौधरी, अ0हि0वै0, पृ0 53

4- ग्रियर्सन, वही, पृ0 254

5- इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहम व्ययम ।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ।। गीता, 4/1

6- राय चौधरी, वही, पृ0 53

सूर्योपासना से ही हुआ था गीता एवं वसु उपरिचर की कहानी भी कोई ऐसा साक्ष्य नहीं उपस्थित करते जिससे इस बात की पुष्टि हो सके कि भागवत धर्म की उत्पत्ति सूर्योपासना से ही हुई । यद्यपि राय चौधरी का यह निष्कर्ष तो समीचीन कहा जा सकता है कि भागवत धर्म सूर्योपासना के प्रारम्भिक प्रभाव से युक्त था। क्योंकि विवस्वान् को भी यह शिक्षा किसी से मिली थी। लेकिन उनका यह कथन उचित नहीं प्रतीत होता कि विवस्वान का स्थान शिक्षा पाने वालों में तीसरा है। क्योंकि गीता में अर्जुन की शंका पर कि विवस्वान् का जन्म आप से पहले हुआ था और आप का उनके बहुत बाद। अत: यह कैसे माना जा सकता है कि आपने विवस्वान को मूलत: इस धर्म की शिक्षा दी होगी। भगवान् श्रीकृष्ण स्पष्ट कहते हैं अर्जुन हमारे और तुम्हारे बहुत से जन्म व्यतीत हो चुके हैं जिन्हें मैं तो पूर्णतया जानता हूं पर तुम नहीं जानते।[1] इससे स्पष्ट है कि कृष्ण विवस्वान् को शिक्षा देने की बात अपने वर्तमान् अवतार के सन्दर्भ में नहीं कर रहे थे। उनका तात्पर्य उनके अपने किसी पूर्वजन्म से था जो विवस्वान् के भी पहले हुआ होगा। अत: विवस्वान् का स्थान कृष्ण से तीसरा नहीं बल्कि कृष्ण के वर्तमान् अवतार की स्थिति इस गणनाक्रम में विवस्वान् से तीसरी थी। अत: भागवत धर्म पर सूर्योपासना का कुछ न कुछ प्रभाव तो माना ही जा सकता है। क्योंकि हर वस्तु की उत्पत्ति सूर्य से हुई है। और आंगिरस[2] ने जो सम्भवत: सूर्य के उपासक तथा वासुदेव कृष्ण के गुरू थे कुछ धार्मिक और

1- अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वत: ।
कथमेतद्विजानीयां त्वादौ प्रोक्तवानिति ।।
बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप ।।
गीता, 4/4-5

2- कौशीतकि ब्राह्मण, 30/6, आर0के0 मुकर्जी, हिस्ट्री आफ इण्डियन सिविलाइजेशन, पृ0, 151

नैतिक शिक्षाओं का स्पष्टीकरण बाद में इस पद्धति में किया। वासुदेव कृष्ण का तादात्म्य बाद में विष्णु और नारायण से स्थापित किया गया जो सौर्य देवता थे जिनके एकत्व को विद्वानों ने स्वीकार किया है।[1] महाभारत में एक स्थल पर कहा गया है कि सूर्य की तरह मैं सम्पूर्ण विश्व को किरणों से ढ़क देता हूं और सम्पूर्ण जीवों का रक्षक हूं, इसी लिये मैं वासुदेव कहलाता हूं।[2] महाभारत के नारायणीय भाग में पुन: भागवत धर्म की स्थिति, बलिदान और भक्ति के महत्व पर प्रकाश डाला गया है।[3] इस सन्दर्भ में वसुउपरिचर की कहानी विशेष महत्वपूर्ण है। एक यज्ञ आरण्यकों के नियमों के अनुसार सम्पन्न हुआ था जिस में प्रमुख पुरोहित बृहस्पति थे। उसमें भक्त प्रजापति के दो पुत्र द्वित तथा त्रित और सोलह ऋषि थे। वसुउपरिचर इस में यजमान थे, परन्तु ईश्वर का दर्शन किसी को नहीं हो सका। केवल उपरिचर भगवान् का दर्शन कर सके क्योंकि वे सच्चे भक्त थे।

वैदिक साहित्य, महाभारत, पुराण तथा अन्य साहित्यिक स्रोतों से जो भागवत धर्म की उत्पत्ति एवं विकास के बारे में पर्याप्त सामग्री प्राप्त होती ही है, पुरातात्विक उत्खननों से प्राप्त मुहरों और अभिलेखों से भी इसके विकास से सम्बन्धित अनेक साक्ष्य उपलब्ध हुये हैं। गुप्त काल में भागवत धर्म का विकास चर्मोत्कर्ष पर था। चौथी तथा पाँचवी शताब्दी में शासन करने वाले गुप्त सम्राट्

1- श०ब्रा०, 13/6/1/1, महाभारत 7·200, 57

2- छादयामि जगद् विश्वं भूत्वा सूर्य इवांशुभिः ।
सर्वभूताधिवासश्च वासुदेवस्ततो ह्यहम् ।।

महाभारत, 12/341/41

3- महाभारत, नारायणीय, अध्याय, 335/16

~~समुद्र~~, चन्द्र गुप्त द्वितीय[1], कुमारगुप्त[2] और स्कन्द गुप्त[3] "परम भागवत" की उपाधि से विभूषित थे। इससे यह ज्ञात होता है कि वे भागवत धर्म के अनुयायी थे। गुप्त नरेशों के सिक्कों तथा अभिलेखों में परमभागवत की पदवी बहुधा उल्लिखित है। डा० अल्टेकर ने चन्द्रगुप्त द्वितीय (विक्रमादित्य) की स्वर्ण मुद्राओं के प्रचलन के बारे में लिखा है कि किसी भी अन्य हिन्दू सम्राट ने सम्भवतः इतनी बड़ी संख्या में सुवर्ण मुद्रायें नहीं प्रचलित की थीं।[4] गुप्त सम्राटों की स्वर्ण मुद्राओं एवं रजत मुद्राओं से भागवत धर्म के विकास का पता चलता है। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की अश्वारूढ मुद्राओं पर वर्तुलाकार लेख "परमभागवत महाराजधिराज श्री चन्द्रगुप्तः" अंकित है।[5] ये सिक्के बयाना-निधि में 82, लखनऊ संग्रहालय में 11, कलकत्ता-संग्रहालय में 5 तथा ब्रिटिश संग्रहालय में 12 की संख्या में उपलब्ध हुये हैं। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की पर्यङ्क मुद्रा पर "परमभागवत महाराजा धिराज श्री चन्द्रगुप्तस्य, लेख मिलता है।[6][7] इस वर्ग की मुद्रायें बयाना निधि में तीन तथा कलकत्ता, लखनऊ एवं ब्रिटिश संग्रहालय में एक-एक की संख्या में मिलती हैं। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य पर्यङ्क स्थित राजा-रानी मुद्रा पर भा ·······चन्द्रगुप्त लेख मिलता है।[7] "परम भा से तात्पर्य उसकी उपाधि परम भागवत से है। इस प्रकार की मुद्रायें बयाना निधि में पाई गई हैं। स्वर्ण मुद्राओं की भांति रजत मुद्राओं पर भी "परम भागवत" उपाधि उत्कीर्ण है। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने सबसे पहले रजत मुद्राओं का प्रवर्तन किया था। इन मुद्राओं पर उसने "परम भागवत"उपाधि उत्कीर्ण करवाया था। इस की एक रजत

~~1- अल्टेकर क्वायन्स ऑफ बयाना होर्ड,पृ० 43~~

1- सरकार, सेलेक्ट इंसक्रिप्शंस,पृ० 275

2- का०ई०ई०,भाग 3,सं० 9

3- वही, सं० 12,पंक्ति 23

4- एस०एस० अल्तेकर, गुप्तकालीन मुद्रायें,पृ० 61

5- ए०एस० अल्तेकर, दि क्वायनेज ऑफ दि गुप्ता इम्पायर,पृ०,121-26 विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य,उदयनारायणराय,गुप्त-सम्राट और उनका

मुद्रा पर "परमभागवत महाराजाधिराज श्री चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यः" लेख मिलता है।[1] उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद जनपद में स्थित भीटा नामक स्थान से अनेक मुहरें प्राप्त हुई हैं जिन के कारण वैष्णव धर्म सम्बन्धी अध्ययन के लिए विशेष सामग्री उपलब्ध होती है। यहाँ से प्राप्त एक मुहर पर "ओम् नमो भगवते वासुदेवाय" उल्लिखित[2] है तथा चक्र की आकृति भी बनी है।

गुप्त सम्राटों की मुद्राओं के अतिरिक्त अभिलेखों से भी भागवत धर्म के विकास का पता चलता है। हरियाणा के हिसार जनपद के तुशाम ग्राम में गुप्तकालीन एक शिला लेख[3] प्राप्त हुआ है । जिस में आचार्य यशस्त्रात के पौत्र सोमत्रात के द्वारा वासुदेव विष्णु के मंदिर तथा पूजा सम्बन्धी प्रमाणों का उल्लेख मिलता है। जिसके द्वारा उसके भागवत होने की पुष्टि होती है।[4] पितृ भक्त वंश के नरेश चन्द्रवर्मन की बोबिलो प्लेट[5] में "परमभागवत " उपाधि उत्कीर्ण है। यह सिंहपुर से मिली थी, जिसका समीकरण कुल्स[6] ने श्रृंगपुरम् के पास श्रीकाकुलम् से किया है। प्रस्तुत प्लेट पाँचवीं शती ई० में उत्कीर्ण की गई थी। स्कन्दगुप्त[7] के भीतरी के लेख (जि० गाजीपुर उत्तर प्रदेश) से ज्ञात होता है कि गुप्त सम्राट ने भगवान् शार्ङ्गिण की मूर्ति की स्थापना की थी। शार्ङ्गिण भगवान् वासुदेव हैं। स्कन्द गुप्त द्वारा सौराष्ट्र या काठियावाड़ के राष्ट्रीय पद पर नियुक्त पर्णदत्त के पुत्र चक्रपालित ने 456 ई० में एक विष्णु मन्दिर बनवाया था। इस बात का उल्लेख करने वाले अभिलेख का आरम्भ विष्णु की वन्दना के साथ हुआ था। जिन्होंने वामन अवतार धारण किया था।[8] बघेलखण्ड मैखोह ग्राम के पास मिले

1- एस०एस० अल्तेकर, गुप्त कालीन मुद्रायें, पृ०, 108

2- एस०मार्शल, एक्सकवेशन्स् ऐट भीटा, आर्क्योलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया, एनुअल रिपोर्ट, 1911-12 सील नं० 21 पृ० 47

3- का०इ०इ०, भाग 3, सं० 67 पृ० 3-4

4- वही, पंक्ति ,3-4

5- एपिग्राफिया इण्डिका, 27, सं० 8

6- वही, 4 पृ० 143

7- का०इ०इ०, भाग 3, पृ० 51

8- का०इ०इ०, पृ० 56

495 ई० के एक ताम्रपत्र-अभिलेख में जयनाथ नामक नरेश द्वारा भगवान् विष्णु के मंदिर का जीर्णोद्धार तथा पूजा के लिए भगवान् को एक ग्रामदान उल्लेख है।[1] गुप्तकालीन पाँच अभिलेख मन्दसौर से प्राप्त हुये हैं। इनमें एक शिलालेख नरवर्मन के समय का है जिस की तिथि 404 ई० है। इस शिलालेख में शेष शायी विष्णु की स्तुति एवं पूजा का उल्लेख है।[2] सागर जिला मध्यप्रदेश में एरण के बुध गुप्त कालीन एक अभिलेख में, जिस पर (483 ई०) उत्कीर्ण है, मातृविष्णु तथा उसके अनुज धान्य विष्णु द्वारा भगवान् जनार्दन के सम्मान में ध्वज स्तम्भ खड़ा करने का उल्लेख है। मातृविष्णु को अत्यन्त भगवद्-भक्त कहा गया है।[3]

भारत वर्ष में जैन और बौद्ध धर्म के उत्थान के साथ सामाजिक और धार्मिक जीवन के सुधार का प्रयत्न किया गया । भागवत धर्म इस कार्य में सबसे आगे था। जब कि जैन और बौद्ध धर्म नास्तिक थे जिन्होंने जीवन की पवित्रता पर बल दिया, भागवत धर्म आस्तिक है जिसका प्रादुर्भाव भक्ति के विकास में निहित है। जैन और बौद्ध धर्म की तरह इसमें भी अहिंसा को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है।[4] ग्रियर्सन के अनुसार जैन और बौद्ध धर्मों की तरह ही भागवत धर्म भी क्षत्रियों का एक धार्मिक आन्दोलन था।[5] भागवत धर्म की उत्पत्ति का क्षेत्र जैन और बौद्ध धर्म की उत्पत्ति क्षेत्र से भिन्न था। जब कि बौद्ध और जैन धर्म का विकास नेपाल की तराई और उत्तरी विबहार में हुआ, भागवत धर्म का विकास मध्यदेश के मथुरा क्षेत्र में हुआ ।

1- वही, 12।

2- एपिग्राफिया इण्डिका, 12, सं० 35, पंक्ति ।

3- का०इ०इ०, पृ० 88

4- भागवत, 16/2; एन०के०शास्त्री, कम्परहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, भाग 2, पृ०, 391, पी०एस०शिवस्वामी अर्ल्यिर, इवोल्यूशन ऑफ हिन्दू भारत आइडियाज; पृ० 118

5- ग्रियर्सन, इण्डियन एण्टीक्वेरी, 1908 पृ०, 25, आर०सी० मजूमदार, इम्पीरियल युनिटी, पृ० 36

6- वही, पृ० 25।

सप्तम अध्याय

वैष्णव अवतार

अवतार की कल्पना - पृथ्वी पर जब अधर्म और अत्याचार व्यापक रूप में फैल जाता है तब जगत् में धर्म की प्रतिष्ठा के लिये तथा संसार की रक्षा के लिये भगवान् विष्णु साकार रूप धारण कर इस धराधाम पर अवतरित होते हैं। भगवान् कृष्ण ने अर्जुन से गीता में स्पष्ट ही कहा है- हे अर्जुन ! जब संसार में धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब साधु एवं सज्जन मनुष्यों की रक्षा तथा दुष्टों के दमन के लिये मैं विभिन्न युगों में अवतीर्ण होता हूँ।[1] इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि भिन्न भिन्न युगों में संसार के मनुष्यों की रक्षा के लिये भगवान् विभिन्न अवतारों को धारण करते हैं। महाभारत में इस बात की घोषणा की गई है कि दुष्टों के दमन, सज्जनों की रक्षा तथा धर्म की स्थापना के लिए भगवान् इस पृथ्वी पर अवतार धारण करते हैं।[2]

"तृ" धातु में "अव" उपसर्ग तथा घञ् प्रत्यय लगाकर अवतार शब्द बनता है। इस साधारण अर्थ के अलावा एक विशिष्ट अर्थ भी होता है। किसी महनीय शक्ति सम्पन्न भगवान या देवता का नीचे के लोक में ऊपर से उतरना और मानव या अमानव रूप का धारण करना । पुराणों में आविर्भाव शब्द

1- यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ।।
गीता, 4/7-8

2- महाभारत, वनपर्व, 272/7।

इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।[1] अवतार की सिद्धि की दो दशायें मानी जाती हैं, प्रथम रूप का परिवर्तन। द्वितीय जन्म ग्रहण करना। कार्यवश भगवान् का बिना रूप परिवर्तन किये ही पृथ्वी पर आविर्भाव होता है, किन्तु विशिष्ट परिस्थितियों में होने वाले इन आविर्भावों की गणना विष्णु परम्परागत दस अवतारों में नहीं की जाती। उदाहरणार्थ प्रह्लाद की विपत्ति से उद्धार के लिये विष्णु का अपने ही रूप में प्रकट होना विष्णु पुराण[2] में और गजेन्द्र के उद्धार के लिये विष्णु का स्वरूप में प्रकट होना भागवत पुराण[3] में वर्णित है।

अवतारवाद का सिद्धान्त वैष्णव धर्म के सिद्धान्त पर आधारित है जिसकी उत्पत्ति भागवत नारायण से हुई जिन का तादात्म्य वासुदेव कृष्ण से है, जो मनुष्य अवतार के रूप में पहले से ही विद्यमान थे।[4] ऋग्वेद[5] में विष्णु के "अन्य रूप" का उल्लेख अवतारवाद की कल्पना का बीज रूप में प्रथम उल्लेख कहा जा सकता है। निरूक्त[6] में यह कहा गया है कि कुछ देवता प्राकृतिक और

1- द्रष्टव्य, बलदेव उपाध्याय, पुराणविमर्श, पृ० 163

2- तस्य तच्चेतसो देव: स्तुतिमित्थं प्रकुर्वत: ।
आविर्बभूव भगवान् पीताम्बरधरोहरि:।। विष्णु पु०, 1/20/14

3- तं वीक्ष्य पीडितमज: सहसावतीर्य
सग्राहमाशु सरस: कृपयोज्जहार ।
ग्राहाद् विपाटितमुखादरिणागजेन्द्रं
संपश्यतां हरिरमूमुचदुस्रियाणाम् ।।
भागवत पु०, 8/3/33, द्रष्टव्य, बलदेव उपाध्याय, वही, पृ० 164

4- एन साइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड एथिक्स, भाग 7, पृ० 195

5- ऋग्वेद, 7/100/6

6- निरूक्त, 7/6-7

अप्राकृतिक दोनों रूप धारण करते हैं। गोंदा[1] ने ऋग्वैदिक इन्द्र को कई रूपों में घूमने वाला देवता बतलाया है। श्रीमद्भगवद्गीता जिसमें अवतारवाद से सम्बन्धित आदि तत्त्व मौजूद हैं कहा[2] गया है कि दुष्टों का विनाश करने के लिये और सदाचरियों की रक्षा के लिये एक उद्देश्य[3] से देवताओं का स्वामी अवतार धारण करता है। भगवान् कई जन्म लिये हैं, और जब कभी धर्म[4] का पतन तथा अत्याचारों की वृद्धि होती है भगवान् अवतार धारण करते हैं।

गीता में कहा गया है कि जो कुछ भी यहाँ शक्ति के रूप में, सम्पत्ति के रूप में और प्रभाव के रूप में है, ईश्वर की शक्ति का एक अंश है[5]। इस अर्थ में प्रत्येक शक्तिमय वस्तुयें ईश्वर की पाक्षिक प्रतिबिम्ब हैं। श्री मद्भगवद्गीता और नारायणीय में अवतार शब्द का प्रयोग न करके उसके लिये जनमन,[6] (जन्म) सम्भव,[7] सृजन,[8] और प्रादुर्भाव[9] शब्द प्रयुक्त किये गये हैं। इन शब्दों का प्रयोग अवतार के पर्याय के रूप में किया गया है, और ईश्वर के लिये यह कहा गया है कि वह अपने सूक्ष्म रूप[10] में मानव के शरीर के अन्दर वास करता है। विष्णुधर्मोत्तर[11]

1- गोंदा, एस्पेक्ट्स ऑफ अर्ली वैष्णविज्म, पृ० 124

2- गीता, 4/5

3- द्रष्टव्य, एस०एल० कात्रे, का निबन्ध, "आन दि परपज ऑफ एन अवतार, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी स्टडीज, भाग 10, पृ० 48

4- शंकराचार्य एण्ड रामानुजाचार्य, इक्सप्लेन इट एज वर्णाश्रम धर्म, हिल दि भगवद्गीता ट्रान्सलेशन, पृ०, 138

5- गीता, 10/49

6- वही, 4/5

7- वही, 4/6-8

8- वही, 5/7

के एक अवतरण में अवतार शब्द आया है किन्तु अन्य किसी पर्याय का उल्लेख नहीं है। हरिवंश में अवतार के स्थान पर प्रादुर्भाव[1] शब्द का प्रयोग किया गया है।

अवतार के प्रेरक तत्व- अवतार शब्द पुराणों के प्रधान विषयों में से एक है। अवतार तत्व धार्मिक है, धर्म इस संसार को एक सूत्र में धारण करता है। विष्णु-पुराण में एक स्थल पर श्रीकृष्ण कहते हैं कि मेरा अवतार विश्व में कुमार्गगामी दुष्टों को शमन के लिए हुआ है।[2] अन्यत्र श्री कृष्ण को प्रशंसा में नारद जी ने कहा है कि उनका अवतार धरणी का भार उतारने के लिये हुआ है।[3] पुन: एक दूसरे स्थल पर कहा गया है कि भगवान् के मानव रूप धारण करने का उद्देश्य पृथ्वी का भार हटाना है।[4] भागवत पुराण में एक पर कहा गया है कि ये सब अवतार तो भगवान् के अंशावतार अथवा कलावतार हैं, परन्तु भगवान् कृष्ण तो स्वयं भगवान् (अवतारी) ही हैं। जब लोग दैत्यों के अत्याचार से व्याकुल हो उठते हैं तब युग-युग में अनेक रूप धारण कर के भगवान् उनकी रक्षा करते हैं।[5]

1- प्रादुर्भाव सहस्राणि अतीतानि न संशय: ।
भूयश्चैव भविष्यन्तीत्येवमाह प्रजापति: ।। हरि0 1/41/11

2- एतदर्थं तु लोकेऽस्मिन्नवतार: कृतोमया ।
यदेषामुत्पथस्थानां कार्या शान्तिर्दुरात्मनाम् ।। विष्णु पु0, 5/7/9

3- भारावतार कर्ता त्वं पृथिव्या: पृथिवीधर । वही, 5/16/25

4- भगवन्तमादिपुरुषं पुरुषोत्तममवनिभारा वतारणायांश
मनुष्यरूपधारिणम्..............। वही, 4/13/20

5- एते चांशकला: पुंस: कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ।
इन्द्रारिव्याकुलं लोकं मृडयन्ति युगे युगे । भागवत पु0, 1/3/28

अन्यत्र कहा गया है कि वैसे तो भगवान् सब के एक मात्र प्रभु हैं फिर भी वे गौ, ब्राह्मण देवता, साधु, वेद, धर्म और अर्थ को रक्षा के लिए शरीर धारण किया करते हैं।[1] हरिवंश में एक स्थल पर कहा गया है कि समस्त भूतों के आत्मा भगवान् हरि देवता और मनुष्यों का कल्याण तथा लोकों का अभ्युदय करने के लिये आवश्यकतानुसार बार-बार अवतीर्ण होते हैं।[2] अन्यत्र कहा गया है कि जब-जब धर्म का ह्रास होता है तब-तब प्रभु धर्म को दृढ रूप में स्थापित करने के लिये अवतार ग्रहण करते हैं।[3]

पथभ्रष्टों को सन्मार्ग तथा सदगति प्राप्ति का साधन अवतार है-

विष्णु पुराण में कृष्ण द्वारा दण्डित नागराज ने उन्हें सम्पूर्ण विश्व का रचयिता बतलाया है। संसार की रचना के साथ भगवान उसके रूप और स्वभाव की भी रचना करते हैं। उसका पालन पोषण सर्प जाति में हुआ है। अपनी जाति के स्वभाव के कारण वह कठोर है। नागपत्नियाँ अपने पति का प्राणदान मांगती हुयीं कृष्ण अवतार का उद्देश्य लोकरक्षा बतलाती हैं। नागपत्नियों को इस प्रकार दुःखी देखकर कृष्ण नागराज पर कृपा करते हैं और उसे अपना चरण चिन्ह प्रदान कर गरुण से सुरक्षित करते हैं। सन्मार्ग पर लाने के लिये उसे यमुना के जल से हटकर

1- गोविप्रसुरसाधूनां छन्दसामपि चेश्वरः ।
रक्षामिच्छंस्तनूर्धत्तेधर्मस्यार्थस्य चैव हि ।।
वही, 8/24/5

2- हितार्थं सुरमर्त्यानां लोकानां प्रभवाय च ।
बहुशः सर्वभूतात्मा प्रादुर्भवति कार्यतः ।।
हरि0, 1/41/14

3- यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
धर्म संस्थापनार्थाय तदा सम्भवति प्रभुः ।।
हरि0, 1/41/17

समुद्र के जल में भेज देते हैं।[1] भागवत पुराण में एक स्थल पर कहा गया है कि अव्यक्त, अप्रमेय, गुणहीन तथा गुणात्मक भगवान् की अभिव्यक्ति अवतार-मनुष्यों के परमकल्याण भूत मोक्ष के साधन के लिए हैं।[2] भागवत पुराण में अन्यत्र कहा गया है कि कपिल अवतार का उद्देश्य ही प्रसंख्यान तत्वों का निरूपण तथा आत्मा की उपलब्धि का मार्ग बतलाना था। कर्दम तथा देवहूति के घर कपिल रूप से अवतरण के समय भगवान् ने स्वयं कहा है- इस लोक में मेरा यह जन्म लिङ्ग-शरीर से मुक्त होने की इच्छा वाले मुनियों के लिए आत्मदर्शन में उपयोगी प्रकृति आदि तत्वों का विवेचन करने के लिए हुआ है।[3]

अवतारों की संख्या- अवतारों की संख्या कितनी थी, इसके विषय में महाभारत तथा पुराणों में काफी सामग्री पाई जाती है। अवतारवाद भगवद्गीता की देन है, परन्तु गीता में राम और कृष्ण दो अवतारों का उल्लेख है।

1- सर्पजातिरियं क्रूरा यस्यां जातोऽस्म्यकेशव ।
तत्वभावोऽयमत्रास्ति नापराधो ममाच्युत ।।
जातिरूपस्वभावाश्चसृज्यन्ते सृजता त्वया ।
कोप: स्वल्पोऽपिते नास्तिस्थिति पालनमेवते ।
नात्रस्थेयं त्वया सर्प कदाचिद्यमुनाजले ।
सपुत्र परिवारस्त्वं समुद्रसलिलं व्रज ।।
विष्णु पु०, 5/7/71-72-73-77

2- नृणां नि:श्रेय सार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप ।
अव्ययस्या प्रमेयस्य निर्गुस्य गुणात्मन: ।।
भागवत पु०, 10/29/14

3- एतन्मे जन्म लोकेऽस्मिन्मुमुक्षुणां दुराशयात ।
प्रसंख्यानाय तत्वानां सम्मतायात्म दर्शने ।।
भागवत पु०, 3/24/36

महाभारत[1] के नारायणी खण्ड में अवतार सम्बन्धी दो तालिकायें मिलती हैं। प्रथम में छः और द्वितीय[2] में चार अवतारों का वर्णन है। एक अवतरण[3] में दश अवतारों का संकलन है, किन्तु यह बाद की रचना लगती है। दूसरी तालिका में वराह, नरसिंह, वामन और कृष्ण इन चार अवतारों का वर्णन है। यही चार पहले के आधारभूत अवतार मालूम पड़ते हैं। भागवत पुराण के चार स्कन्धों में भगवान् के अवतारों की गणना का विवरण है। प्रथम[4] स्कन्ध के तीसरे अध्याय में अवतारों की संख्या बाईस दी गई है। इस क्रम में (1) कौमारसर्ग (2) वराह (3) नारद (4) नारायण (5)कपिल (6) दत्तात्रेय (7) यज्ञ (8) ऋषभदेव (9) पृथु (10) मत्स्य (11) कच्छप (12) धन्वन्तरि (13) मोहिनी (14) नरसिंह (15) वामन (16) परशुराम (17) वेदव्यास (18) रामचन्द्र (19) बलराम (20) कृष्ण (21) बुद्ध (22) कल्कि अवतार आते हैं। यहाँ केवल भगवान् के बाईस अवतारों का निर्देश किया गया है, परन्तु भगवान् के चौबीस अवतार प्रसिद्ध हैं। द्वितीय स्कन्ध[5] के सप्तम अध्याय में भी भगवान की इन अवतारों का वर्णन क्रमशः किया गया है। वराह, यज्ञ, कपिल, दत्तात्रेय, चतुःसन, (कौमारसर्ग)

1- महाभारत, 12/326/72

2- वही, 337/36

3- हंस कूर्मश्च मत्स्यश्च प्रादुर्भावा द्विजोत्तम ।
वराहो नरसिंहश्च वामनो राम एव च ।।
रामो दाशरथि श्चैव सात्वतः कल्किरेव च ।।
महाभारत शान्ति0, 339/103-4

4- भागवत पु0, 1/3/5-22

5- वही, 2/7

नारायण, पृथु, ऋषभ, हयशीर्ष [हयग्रीव] मत्स्य, कच्छप, नृसिंह, गजेन्द्र मोक्षदाता, वामन, हंस, धन्वंतरि, परशुराम, रामकृष्ण, व्यास, बुद्ध, कल्कि । इस दूसरी सूची को प्रथम सूची से मिलाने पर अनेक नामों में वैषम्य दिखलाई पड़ता है। द्वितीय सूची में अवतारों की संख्या वही बाईस है। प्रथम सूची के बाईस नामों में हंस तथा हयग्रीव अवतारों को मिला देने से यह संख्या चौबीस हो जाती है। कुछ विद्वान इस की व्युत्पत्ति और ही बतलाते हैं। उनका विचार है कि प्रथम सूची में [बल] राम तथा कृष्ण को छोड़ देने पर शेष बीस बच जाते हैं। शेष चार अवतार श्रीकृष्ण के ही अंश हैं।[1]

<u>भागवत पुराण</u> के दशम् स्कन्ध[2] में इस क्रम से अवतारों का निर्देश है। मत्स्य, हयशीर्ष [हयग्रीव] वराह, नृसिंह, वामन, भृगुपति, परशुराम [रघुवर्म] वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध, बुद्ध और कल्कि । भागवत पुराण एकादश स्कन्ध[3] में निम्नांकित अवतारों का वर्णन किया गया है। नर, नारायण, हंस, दत्तात्रेय, कुमार ऋषभ, हयग्रीव, मत्स्य, वराह, कूर्म, गजेन्द्रमोक्षकर्ता, बालखिल्य के रक्षक, इन्द्र के शापमोचक, देवस्त्रियों के उद्धारक, नृसिंह, वामन, रामसीतापति, कृष्ण, बुद्ध तथाकल्कि। <u>हरिवंश</u>[4] में दश अवतारों का वर्णन है। पौष्करक, वराह, नृसिंह, वामन, दत्तात्रेय, परशुराम, राम, कृष्ण, व्यास और कल्कि ।

1- उपाध्याय, वही, पृ०, 174

2- <u>भागवत</u> पु०, 10/17/22

3- वही, 11/4

4- <u>हरि०</u>, 1/41/26-64

आलोचित विष्णु पुराण में निर्दिष्ट अवतारों की सूची

अवतार का नाम	पुराण	स्थल निर्देश
मत्स्य- प्रलय के समय प्लावन से मनु की नौका को बचाना	विष्णु पुराण	5/17/10
कूर्म- विश्व की रचना	विष्णु पुराण	5/17/10
वराह- रसातल में धँसी पृथ्वी का उद्धार	विष्णु पुराण	5/17/10
वामन- बलि से भिक्षा मांगना तथा तीन पदों से त्रिलोकी का अतिक्रमण तथा बलि को जीतना	विष्णु पुराण	3/1/43
जामदग्न्य - क्षत्रियों का विनाश करना	विष्णु पुराण	4/7/35
राम - रावण का वध	विष्णु पुराण	4/4/87
कृष्ण - कंस का वध	विष्णु पुराण	4/4/87
कल्कि- म्लेच्छ और दस्युओं का विनाश	विष्णु पुराण	4/24/98

आलोचित भागवत पुराण में निर्दिष्ट अवतारों की सूची

अवतार का नाम	पुराण	स्थल निर्देश
मत्स्य	भागवत पुराण	1/3/15
कूर्म	भागवत पुराण	1/3/16
वराह	भागवत पुराण	1/3/7
नृसिंह	भागवत पुराण	1/3/18
वामन	भागवत पुराण	1/3/19
दत्तात्रेय	भागवत पुराण	1/3/4, 2/7/4
मान्धाता	भागवत पुराण	भागवत पुराण 9/6 में वर्णन होने पर भी अवतार कल्पना नहीं।
राम	भागवत पुराण	1/3/22
वेदव्यास	भागवत पुराण	1/3/21
कृष्ण	भागवत पुराण	1/3/23

अवतार का नाम	पुराण	स्थल निर्देश
बुद्ध भागवत	भागवत पुराण	1/3/24
कल्कि	भागवत पुराण	1/3/25
चतु:सन (या कौमार सर्ग)	भागवत पुराण	1/3/6,2/75
नारद	भागवत पुराण	1/3/8
नारायण	भागवत पुराण	1/3/9,2/7/6,8
कपिल	भागवत पुराण	1/3/10,2/7/3,3/22,23
यज्ञ	भागवत पुराण	1/3/12,2/7/3
ऋषभ	भागवत पुराण	1/3/13, 2/7/10,5/3-6
पृथु	भागवत पुराण	1/3/14
धन्वन्तरि	भागवत पुराण	1/3/17
मोहिनी	भागवत पुराण	-
हंस	भागवत पुराण	2/7, प्रथम सूची में नहीं
पौष्करक	भागवत पुराण में नहीं	
हयग्रीव	भागवत पुराण	10/40/17
गजेन्द्रमोक्षकारक	भागवत पुराण में तेरहवां अवतार	2/7/15

अवतार का नाम	पुराण	स्थल निर्देश
परसुराम	भागवत पुराण	1/3/20

आलोचित हरिवंश में निर्दिष्ट अवतारों की सूची

अवतार का नाम	पुराण	स्थल निर्देश
पौष्करक	हरिवंश	1/41/27
वराह	हरिवंश	1/40/1, 1/41/29
नृसिंह	हरिवंश	1/41/39
वामन	हरिवंश	1/41/79
दत्तात्रेय	हरिवंश	1/41/104
परशुराम	हरिवंश	1/41/112
राम	हरिवंश	1/41/121
कृष्ण	हरिवंश	1/41/156
वेदव्यास	हरिवंश	1/41/163
कल्कि	हरिवंश	1/41/164

अवतार सम्बन्धीभावना का विकास और उसपर वैदिक भावना का प्रभाव--- वैदिक वाङ्मय में अवतार सम्बन्धी भावना के निदर्शक साक्ष्य प्राप्त होते हैं। ऋग्वेद के पाँचवे मण्डल में अग्नि को एकता वरुण, मित्र तथा अर्यमन् से स्थापित की गई है।[1] आगेचलकर देवता का सम्बन्ध देवेतरयोनि से स्थापित किया गया। यह प्रवृत्ति ब्राह्मण ग्रन्थों के काल तक विकसित हो चुकी थी जिनमें मत्स्य, कूर्म, वराह तथा नरसिंह प्रजापति तथा वामन विष्णु के रूपान्तर बताये गये हैं।[2] शतपथ ब्राह्मण में यह उल्लेख मिलता है कि प्रजापति ने कूर्म का रूप धारण कर प्रजा की रचना की।[3] ज्यों-ज्यों विष्णु की महत्ता बढ़ने लगी तथा लोक रचना, लोक की रक्षा, लोक संहार की कल्पना विष्णु के व्यक्तित्व में समाविष्ट हुई। अवतार की भावना भी विष्णु से सम्बन्धित की गई।

उपर्युक्त साहित्यिक स्रोतों के अतिरिक्त अन्य साहित्यिक ग्रन्थों में भी अवतारों का वर्णन मिलता है। उदाहरणार्थ शिशुपाल बध के प्रसंग में नारद जी श्री कृष्ण से कहते हैं कि उन्होंने (कृष्ण ने) नृसिंह का रूपधारण कर हिरण्यकशिपु के वक्षःस्थल को नखों से फाड़ डाला।[4] दाशरथिराम के रूप में उन्होंने लंका के पास रावण का बध कर डाला था।[5]

1- ऋग्वेद, 5/3/1-2

2- इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली, भाग 17, पृ0, 370-71

3- द्रष्टव्य पृष्ठांक,

4- सटाछटाभिन्नघनेन बिभ्रता नृसिंह.............तनुं त्वया ....
उरोविदारं प्रतिचस्करे नखैः। शिशुपाल बध, 1, 47, 48

5- ..... दाशरथिर्भवान्....... लंका निकषा हनिष्यति।
वही,

अवतार सम्बन्धी पौराणिक कारण पर औपनिषदिक भावना का भी प्रभाव पड़ा है। विष्णु पुराण में एक स्थल पर कहा गया है कि विष्णु अपनी इच्छा के कारण मनुष्य का रूप धारण करते हैं।[1] इस वर्णन में औपनिषदिक भावना का पुट दिखाई पड़ता है। उदाहरणार्थ वृहदारण्यक उपनिषद में एक स्थल पर कहा गया है कि इन्द्र माया के वशीभूत होकर अनेक रूप धारण करते हैं।[2] परन्तु इस सम्बन्ध में पुराणों के कई स्थल वेदोत्तरवर्ती ग्रन्थों से साम्य रखते हैं। गीता में तो स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि विष्णु का अवतार दुष्कर्मियों के विनाश के लिये होता है।[3] रामायण में भी कहा गया है कि जब विष्णु भगवान् ने राम के रूप में अवतार ग्रहण किया, अन्य देवताओं ने भी उनकी सहायता के लिये पृथ्वी पर अवतार लेने का निश्चय किया।[4]

इस प्रकार हम देखते हैं कि आलोचित पुराणों ने विष्णु के सम्बन्ध में जो विवरण दिया है वह विष्णु की वैदिक स्थिति में परिवर्तन का सूचक है। पूर्व पृष्ठों में इस बात की चर्चा की गई है कि विष्णु से सम्बन्धित वैदिक सूक्त संख्या में कम नहीं है पर, उनकी स्थिति निश्चयतः ऋग्वेद में प्रायः गौण ही है। इसके विपरीत पुराणों में विष्णु प्रधान देवता के रूप में हैं। पौराणिक देवताओं

1- आत्मेच्छया कारण रूप धारिणे । विष्णु पु0, 4/20/52

2- इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते । बृ0उ0, 2/5/19

3- द्रष्टव्य, पृष्ठांक,

4- पुत्र त्वं तु गते विष्णो .... उवाच देवताः
सर्वाः विष्णोः सहायान्बलिनः सृजध्वं कामरूपिणः ।
रामायण बालकाण्ड, 17/1-2

में रूद्र-शिव ही इनके बराबर रखे जा सकते हैं। पुराणों ने विष्णु और शिव में समन्वयात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। निःसन्देह विष्णु से संबन्धित अनेक पौराणिक उद्धरण वैदिक विचारधारा से प्रभावित हैं और उन में नवीन बातों का समावेश कर पुराणों ने परिवर्तन का परिचय दिया है। यह प्रवृत्ति पुराणों तक ही सीमित न रही, अपितु इसका निर्वाह स्मृतियों तथा अन्यसाहित्यिक साक्ष्यों से भी परिलक्षित होता है। इसके अतिरिक्त नारायण तथा वासुदेव कृष्ण का विष्णु से तादात्म्य और अवतारवाद संबंधी भावना के विकास के द्वारा पुराणों ने वैष्णव धर्म के विकसित रूपका परिचय दिया है।

आलोच्य पुराणों में विष्णु की अर्धांगिनी "श्री" "लक्ष्मी" -

"श्री" लक्ष्मी" की उपासना का भारतीय ग्रन्थों में विशद विवेचन किया गया है। पुरुष शक्ति के साथ-साथ नारी शक्ति की भी उपासना प्रचलित थी।[1] सिन्धु[2] सभ्यता में नारी की उपासना प्रकृतिपूजा के रूप में की जाती थी। "लक्ष्मी" तथा "श्री" दोनों शब्द ऋग्वेद में मिलते हैं। "श्री" शब्द तेज,[3] सौन्दर्य,[4] शोभा,[5] कान्ति,[6] विभूति अथवा सम्पदा,[7] कीर्ति[8] तथा तुष्टिकारक[9] के अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। "श्री" शब्द ऋग्वेद में "श्री" (9,109,15), धृत श्री (10,65,2), दर्शत श्री (10,91,2), श्रिये (2,23,18), श्रियो (1,166,10), श्रियं (1,79,1), सुश्रियं (3,3,5), श्रेयां (5,60,4), श्रीणा (10,45,5), श्रियः (2·1,12), अभिश्रियः (10,66), श्रियसे (5, 59, 3), अश्रीर (8,2, 20), अश्रीरा (10,85,30), श्रीयराधि (5,61,12), श्रीणीत (9, 46, 4), श्रीणाना (9,65,26), श्रीणन: (9,109,17) रूपों में प्राप्त है

1- सिन्धु की सभ्यता से भी पहले प्रागैतिहासिक काल में भी मातृदेवी के प्रति प्रचलित आस्था का एक प्रमाण बेलन घाटी से प्राप्त मातृदेवी की हड्डी की बनी हुई प्रतिमा के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। द्रष्टव्य राधाकान्त, वर्मा, भारतीय प्रागैतिहासिक संस्कृतियाँ, पृ0224

2- द्रष्टव्य, सर जॉन मार्शल, मोहनजोदड़ो एण्ड इण्डस सिविलाइजेशन भाग 1, पृ0 49-52

3- ऋग्वेद, 1/166/10; 5/313

4- वही, तनुनाम श्रियं, 1/179/1

5- वही, 2/1/12

6- वही, 1/188/6; 10/1/5

7- वही, 2/8/3

8- वही, 5/53/4

9- वही, 9/46/4; 9/65/26

जिसके विभिन्न अर्थ होते हैं। "श्री" शब्द से श्रेणि तथा श्रेष्ठ शब्द भी बने हैं,[1] जो क्रमशः नायक एवं सर्जोन्य के अर्थ में प्रयुक्त हुये हैं।[2] ऐसा प्रतीत होता है कि "श्री" शब्द का प्राचीन अर्थ तेज छटा, कान्ति था जो व्यवहार में आने पर अनुभूतियों का द्योतक हो गया जिनके द्वारा तेज इत्यादि दृश्य होता है। उदाहरणार्थ, संपदा इत्यादि ।

"लक्ष्मी" शब्द यहाँ संज्ञा के रूप में तो आया है,[3] परन्तु सामान्य अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है। "धारा भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधिवाचि" वाणी में लक्ष्मी का निहित होना यहाँ बताया गया है। इस वाक्य में लक्ष्मी का स्वरूप तो प्रकट होता नहीं, परन्तु यह अवश्य ज्ञात होता है कि यह शब्द ऐश्वर्य का द्योतक था।

ऋग्वेद में धन के अधिष्ठातृ किसी विशेष देवता का उल्लेख नहीं प्राप्त होता है। देवियों का वर्णन तो ऋग्वेद में मिलता है। परन्तु उसमें लक्ष्मी का नाम नहीं आता । उदाहरणार्थ, अदिति,[4] सिनिवाली,[5] इला,[6]

1- वही, 10/95/6

2- वही, 10/179/3

3- वही, 10/71/2

4- ऋग्वेद,3/4/11

5- वही, 2/32/8

6- वही,3/4/8

सरस्वती,[1] इन्द्राणी,[2] वरुणानी,[3] राका[4]। इन्द्राणी को शची भी कहा गया है।[5] देव पत्नियों में इन्द्राणी अग्नायी, अश्विनी, रोदसी, वरुणानी आदि के नाम मिलते हैं।[6] परन्तु "लक्ष्मी" या "श्री" विष्णु की पत्नी के रूप में नहीं मिलती हैं। ऋग्वेद में विष्णु की प्रार्थना है किन्तु उनकी पत्नी की नहीं।[7] ऋग्वेद में इन्द्र को धन का दाता कहा गया है सूक्त "श्री" के अधिष्ठातृ कहे गये हैं।[9] अश्विनों को "प्रियः प्रक्षय, कहा है[10]। सोम को "श्री" का अधिष्ठाता कहा गया है।[11]

"श्री तथा "लक्ष्मी" यजुर्वेद में परम पुरुष की[12] सपत्न्या के रूप में[13] प्रकाशित होती हैं। "श्रीश्चते लक्ष्मीश्चपत्न्यावहो रात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्, {31/22}। इस मंत्र से ऐसा ज्ञात होता है कि इस काल

1- वही, 2/32/8

2- वही,

3- वही,

4- वही, 2/32/4

5- वही, 4/30/17

6- वही, 5/46/8

7- वही,

8- "श्रीणाम उदारोधरुणोरयीणाम्, {ऋग्वेद, 10/45/5

9- वही, 6/48/9

10- वही, 1/139/3

11- वही, 9/16/6

12- वाजसनेयि, 20/5

13 - वही, 12/5

तक "श्री" का अर्थ प्रथम श्री तथा "लक्ष्मी" का अर्थ राजश्री हो चुका था।

सामवेद में "श्री" शब्द विपुल है,[1] परन्तु वहाँ प्रायः मंत्र तो ऋग्वेद के हैं इस कारण उन्हीं अर्थों में "श्री" शब्द का व्यवहार वहाँ भी हुआ है। ऋग्वेद में "श्री" शब्द भूति, सम्पत्ति, वृद्धि, ऐश्वर्य के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। उदाहरणार्थ, पृथ्वी की प्रार्थना करते हुये कहा गया है कि मुझे ऐश्वर्य से प्रतिष्ठित करो। "श्री" शब्द अथर्व वेद में ऋग्वेद की भाँति किसी देवी का द्योतक नहीं ज्ञात होता। श्री शब्द सम्पत्ति के अर्थ में कई स्थानों पर प्रयुक्त हुआ है[2] तथा तेज[3] और सुन्दरता के अर्थ[4] में भी, परन्तु किसी देवी के अर्थ में नहीं।

ऋग्वेद के पाँचवें मंडल के परिशिष्ट के रूप में प्राप्त श्री सूक्त विद्वानों के मतानुसार परवर्ती काल का है। इस में "श्री" तथा "लक्ष्मी" शब्द एक दूसरे के पर्यायवाची मिलते हैं। कदाचित उस समय तक लक्ष्मी को आर्यों ने अपनाना प्रारम्भ कर दिया था। यहाँ "श्री" या "लक्ष्मी" एक देवी के रूप में वर्णित हैं (प्रियदेवीम्)[5] यह देवी कैसी है (हिरण्य वर्णाम्)[6] सोने के रंग वाली है तथा (सुवर्ण-रजत स्रजाम्) सोने तथा चाँदी की स्रज धारण किये

1- सामवेद, 2/1/5

2- अथर्व0, 6/73/1, 9/5/21

3- वही, 12/5/7, 13/16

4- 6/2/14/, 20/143/2

5- श्री सूक्त, 3

6- वही, 1

हुये हैं। स्रज शब्द ऋग्वेद में कई स्थानों पर प्रयुक्त हुआ है।[1] अश्विनों को पुष्कर स्रज कहा है।[2] इस शब्द का तात्पर्य मस्तक पर बाँधने की माला से लगाया गया है। गले में पद्म की माला है (पद्ममालिनीम्) इन का मुख चन्द्रमा की भाँति गोल है आँखें हिरनी की भाँति हैं (हरिणीम्) तथा सुवर्ण के आभूषणों से सुसज्जित हैं, (हिरण्मयीम्)। सद्यः स्नाता होने के कारण शरीर से जल टपक रहा है (आर्द्राम्), मुख पर सन्तोष के भाव हैं (तुष्टाम्), उनका प्रभा-मण्डल चन्द्रमा की भाँति गोल है, उससे किरणें निकल रही हैं (चन्द्रां प्रभासाम्), पद्म पर स्थित है,[3] (पद्मेस्थिताम्) एक हाथ में पद्म है (पद्मिनीम्), दूसरे में बिल्व फल, यह रथारूढ हैं जो सुवर्ण का है (हिरण्य प्राकाराम्) जिस के आगे घोड़े जुते हुये हैं।[4] जिन के दोनों ओर हाथी चिंघाड़ रहे हैं (हस्तिनादप्रमोदिनीम्)।

इस सूक्त में मणिभद्र यक्ष का "लक्ष्मी" से सम्बन्ध ज्ञात होता है (मणिना सह) तथा श्रीमाँ देवी से भी। श्रीमाँ देवी या सिरिमा देवता की मूर्ति भरहुत से प्राप्त हुई है। भरहुत की सिरिमा देवता भी श्री देवी की भाँति बहुत से आभूषणों से सुसज्जित है।[5] शतपथ ब्राह्मण में "श्री" का उल्लेख

1- ऋग्वेद, 4/28/6; 8/48/15

2- 10, 10/34/3

3- श्री सूक्त, 6, विष्णु धर्मोत्तर पुराण, 3/82/7

4- श्री सूक्त 2, (अश्वपूर्वाम् रथमध्याम्)।

5- सिरिमा मूर्ति, ए गाइड टू आर्कियोलाजिकल गैलेरीज आफ दि इण्डियन म्यूजियम, फलक I डी0 द्रष्टव्य राय गोविन्द चन्द्र, प्राचीन भारत में लक्ष्मी प्रतिमा पृ0 24

परम सुन्दरी देवी के रूप में मिलता है।[1] इसके अनुसार जिन देवताओं में श्री है वे अमर हैं तथा ज्योतिर्मय हैं।[2] जिनको श्री की प्राप्ति होती है उनमें तेज, ऐश्वर्य, इत्यादि सदैव बने रहते हैं।[3] ऐतरेय ब्राह्मण में श्री की इच्छा रखने वाले को यथा सहित विल्व वृक्ष का यूप बनाने का निर्देश प्राप्त है।[4] विल्व फल श्रीफल कहा जाता है।[5] कौशीतकि उपनिषद् में "श्री" तथा अन्न शब्द एक साथ प्रयुक्त हुये हैं।[6] अतः ऐसा ज्ञात होता है कि "श्री" शब्द इस काल तक व्यवहार में आने लगा था। तैत्तिरीय उपनिषद् में श्री से गौ, अन्न आदि की प्राप्ति की चर्चा है।[7] सीतोपनिषद् में सीता को, सीता भगवती तथा मूल प्रकृति संज्ञिता, कहा गया है।[8] कृष्णोपनिषद् में कृष्ण और रुक्मिणी को "विष्णु लक्ष्मी रूपोवाहिताः, कहा गया है।[9] देव्युपनिषद् में लक्ष्मी को दक्ष की पुत्री बतलाया गया है।[10]

"श्री" और "लक्ष्मी" दो विभिन्न देवियों का वर्णन ब्राह्मण और उपनिषद् काल में मिलता है।[11] "श्री" का देवता के रूप में सर्वप्रथम उल्लेख ऋग्वेद के श्री सूक्त में मिलता है जिसका विस्तृत विवेचन पूर्व पृष्ठों में

1- शतपथ ब्राह्मण, 11/4/3/1; 11/4/3/4

2- वही, 2/1/49

3- वही, 10/1/4/14

4- ऐतरेय ब्राह्मण, 2/1/6

5- श्री सूक्त, 61

6- कौशीतकि उपनिषद्, 1/5

7- तैत्तिरीय उपनिषद्, 1/4

8- सीतोपनिषद्, 14/

9- कृष्णोपनिषद्, 16

10- देव्युपनिषद्, 81

11- गोन्दा, एस्पेक्ट्स ऑफ अर्ली विष्णुइज्म, पृ०, 214

किया गया है।[1] श्री सूक्त, में "श्री" और "लक्ष्मी" में विभिन्न नहीं प्रकट किया गया है। देवियों के दोनों नामों से रक्षा के लिए ईश्वर की स्तुति की गई है।[2] परन्तु वाजसनेयि संहिता में उन्हें पुरुष की धर्मपत्नी बतलाया गया है।[3] बाद में तैत्तिरीय आरण्यक पुरुष की दो स्त्रियों ह्री और श्री का वर्णन करता है।[4] महाभारत में एक स्थल पर दो देवियों का वर्णन मिलता है जो इन्द्र के महल में निवास करती थीं जिन को महेन्द्राणी कहा गया है।[5] भरत विरचित नाट्यशास्त्र,[6] "श्री" और "लक्ष्मी" तथा अन्य दूसरी देवियों जो देवी माताओं के रूप में हैं, जिनकी स्तुति सफलता के लिये की जाती है, का वर्णन करता है। महाभारत के शान्तिपर्व में "श्री" को लक्ष्मी कहा गया है।[7]

"लक्ष्मी " और "श्री" शब्द का क्या तात्पर्य है यह विद्वानों के लिये विवाद का विषय है। गोन्दा का विचार है कि लक्ष्मी का तात्पर्य चिन्ह, शकुन, सौभाग्य तथा सफलता से है।[8] उन्होंने पुन: यह विचार व्यक्त किया है कि उत्तरवैदिक काल में लक्ष्मी जिस का तात्पर्य सौभाग्य है, वैदिक ग्रन्थों में लक्ष्मी का मूल अर्थ चिन्ह के रूप में विकसित हो गया।[9] अनेक जर्मन विद्वानों का विचार है कि "श्री" बहुत फल देने वाली देवी थी।[10] वैदिक साहि

1-द्रष्टव्य, पृष्टांक 246

2- ऋग्वेद श्री सूक्त, 16/

3- वाजसनेयि संहिता, 31/22

4- तैत्तिरीय आरण्यक, 3/13/2

5- 11/7/28

6- नाट्यशास्त्र, 3/88

7- महाभारत, 12/225/8

8- गोन्दा, एस्पेक्ट्स ऑफ अर्ली विष्णुइज्म, पृ0 215

9- वही, पृ0 217

10- वही, पृ0 212

के अतिरिक्त बौद्ध ~~बौद्ध~~ ग्रन्थ में भी "श्री" से सम्बन्धित अनेक साक्ष्य प्राप्त होते हैं। बौद्ध ग्रन्थ में "श्री" को नागराज सागर की पुत्री बतलाया गया है।[1] इससे यह प्रतीत होता है कि "श्री" का सम्बन्ध नागों से था। महाभारत के अनुसार "श्री" असुरों से सम्बन्धित थीं बाद में जब आर्यों ने अनार्यों के देवताओं को अपनाया उन में "श्री" को भी वह प्रतिष्ठा मिली जो अन्य देवताओं को प्राप्य थी। "श्री" आर्य देवता इन्द्र के अधिक सन्निकट थीं।[2]

"श्री" "लक्ष्मी" की उत्पत्ति से सम्बन्धित अनेक आख्यान उपलब्ध होते हैं। शतपथ ब्राह्मण में यह उल्लेख मिलता है कि "लक्ष्मी" प्रजापति की पुत्री थीं।[3] ऐसा ही वर्णन महाभारत में भी पाया जाता है। महाभारत में "श्री" "लक्ष्मी" को ब्रह्मा की पुत्री और आकाश में उड़ने वाले दो अश्वों धन और विधान की माता कहा गया है[4] एक दूसरे स्थल पर कहा गया है कि दक्ष की दस पुत्रियों में एक लक्ष्मी भी थीं जिन का पाणिग्रहण संस्कार धर्म के साथ सम्पन्न हुआ था।[5] प्रस्तुत आख्यान विष्णु पुराण[6] तथा विष्णु धर्मोत्तर[7] में भी पाया जाता है। इस में ऐसा वर्णन मिलता है कि धर्म को उसके पाणिग्रहण संस्कार में चौदह कन्यायें प्राप्त हुई थीं जिनमें एक "श्री" भी थीं जिनसे दर्प नामक पुत्र का जन्म हुआ था। "श्री" के जन्म से सम्बन्धित बड़ा

1- सद्धर्म पुण्डरीक, 11/48-51

2- महाभारत, 12/218

3- श0ब्रा0, 11/ 4/3/1

4- महाभारत, 1/60/50

5- वही, 1/60/13

6- विष्णु पु0, 1/7/23

7- विष्णु धर्मोत्तर, 1/107/90-94

सुन्दर साक्ष्य महाभारत के आदि पर्व में प्राप्त होता है। "श्री" धवल वस्त्र धारण किये हुये चन्द्रमा, सोम, कौस्तुभ मणि और धन्वन्तरि जो हाथ में अमृत का पात्र लिये हुये थे के साथ क्षीर समुद्र से प्रकट हुयीं।[1] इसी से मिलता जुलता वर्णन विष्णु पुराण में भी प्राप्त होता है। विष्णु पुराण में लक्ष्मी की उत्पत्ति के विषय में कहा गया है कि विकसित कमल पर विराजमान कान्ति-मयी श्री लक्ष्मी देवी हाथों में कमल का पुष्प लिये हुये क्षीर समुद्र से प्रकट हुयीं।[2] भागवत पुराण में एक स्थल पर यह वर्णन मिलता है कि भगवान् की प्रिय लक्ष्मी उनसे उत्पन्न हुयीं।[3] महाभारत के कई प्रकरणों में "श्री" को दूसरे देवताओं से सम्बन्धित बतलाया गया है, परन्तु वे विष्णु के अधिक सन्निकट थीं। इसी ग्रन्थ में एक स्थल पर विष्णु को श्रीपति कहा गया है।[4]

विष्णु पुराण में "लक्ष्मी" विष्णु की पत्नी रूप में प्रतिष्ठित हुयीं। "लक्ष्मी" सब के लिए आदि भूता त्रिगुणमयी और परमेश्वरी हैं। विष्णु पुराण में एक स्थल पर कहा गया है कि विष्णु और "लक्ष्मी" में वही सम्बन्ध है जो अर्थ और वाणी में, न्याय और नीति में, बोध और बुद्धि में, स्रष्टा और सृष्टि में काम और इच्छा में, शंकर और गौरी में, सूर्य और प्रभा में, आकाश और स्वर्गलोक में, समुद्र और तरंग में, इन्द्र और इन्द्राणीमें, यम और

1- महाभारत, 1/16/34-6

2- विष्णु पु०, 1/2/28

3- भागवत पु०, 8/8/8

4- महाभारत, 13/149

धूमोर्णा में, कुबेर और ऋद्धि में, देवसेनापति और देवसेना में, दाफ़ और ज्योति में, दिन और रात्रि में, वर और वधू में, नद और नदी इत्यादि पुरुष और स्त्री बोधक शब्दों में।[1]

भागवत पुराण में पुंसवन व्रत की कथा के संदर्भ में कहा गया है कि माता लक्ष्मी जी भगवान् की अर्द्धांगिनी और महामाया स्वरूपिणी हैं। भगवान के समस्त गुण उन में निवास करते हैं।[2] पुनः एक दूसरे स्थल पर कहा गया है कि माता "लक्ष्मी" जी तीनों गुणों की अभिव्यक्ति है और भगवान उन्हें व्यक्त करने वाले तथा उनके भोक्ता हैं। भगवान् समस्त प्राणियों के आत्मा हैं और "लक्ष्मी" जी शरीर इन्द्रिय और अंतःकरण हैं। माता "लक्ष्मी" नाम और रूप हैं और भगवान् नाम रूप दोनों के प्रकाश तथा आधार हैं।[3] अन्यत्र कहा गया है कि भगवान् ने विनाश रहित लक्ष्मी को अपनी अर्द्धांगिनी बतलाया है।[4] एक दूसरे स्थल पर भगवान् को "लक्ष्मी" का परमाश्रय कहा गया है।[5] वाजसनेयि संहिता में आदित्य की प्रार्थना करते हुये लक्ष्मी को उनकी पत्नी कहा गया है।[6] वेदोत्तरवर्ती ग्रन्थों में अन्यत्र भी लक्ष्मी को विष्णु से सम्बन्धित किया गया है। उदाहरणार्थ, विष्णु स्मृति में पृथ्वी से लक्ष्मी कहती

1- विष्णु पु0, 1/8/18-32, 35

2- विष्णु पत्नि महामाये महापुरुष लक्षणे। भागवत पु0, 6/19/6

3- गुणव्यक्तिरियं देवी व्यंजको गुणभुग्भवान्।
त्वं हि सर्वशरीर्यात्मा श्रीः शरीरेन्द्रियाशया।
नामरूपे भगवती प्रत्ययस्त्वमपाश्रयः॥

वही, 3/19/13

4- श्रियं चात्यन्तिकीं ब्रह्मन् येषां गतिरहं परा॥ वही, 9/4/64

5- वही, 10/58/21

6- श्रीश्चते लक्ष्मीश्च पत्न्या वहोरात्रे।
वाजसनेयि संहिता, 31/22

है कि वे विष्णु के समीप सदा सन्निहित रहती हैं।[1] विष्णु का यह संयोगात्मक स्वरूप पौराणिक उद्धरणों के द्वारा भी स्पष्ट किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, भागवत पुराण में कहा गया है कि बैकुण्ठ में लक्ष्मी जी सुन्दर रूप धारण करके अपनी अनेक विभूतियों के द्वारा भगवान् के चरण कमलों की अनेक प्रकार से सेवा करती हैं। कभी-कभी जब वे भूमि पर बैठकर अपने प्रियतम भगवान् की लीलाओं का गायन करने लगती हैं तब उनके सौन्दर्य और सुरभि से उन्मत्त हो कर भौरें स्वयं उन लक्ष्मी जी का गुणगान करने लगते हैं।[2]

विष्णु पुराण में एक स्थल पर कहा गया है कि जब विष्णु अवतार धारण करते हैं "लक्ष्मी" उनके साथ रहती हैं। परशुराम के रूप में उन्होंने जब अवतार लिया तो वे पृथ्वी हुयीं। इसी तरह राम के साथ सीता के रूप में, कृष्ण के साथ रुक्मिणी के रूप में थीं। जब वे देवरूप में रहते हैं इन का दिव्य रूप रहता है। जब वे मानव रूप धारण करते हैं इनका मानवी रूप रहता है विष्णु के शरीर की तरह अपना शरीर बना लेती हैं। जिस प्रकार विष्णु सर्वव्यापक रहते हैं उसी तरह जगत की जननी "लक्ष्मी भी हैं।" "श्री" "लक्ष्मी" को पुण्या "लक्ष्मी" और ज्येष्ठा को पापी "लक्ष्मी" कहा गया है।[4] रामायण

1- स्थिता सदा हं मधुसूदनेतु । विष्णु स्मृति, 99/22

2- श्रीर्यत्र रूपिण्युरुगाय पादयोः
करोति मानं बहुधाविभूतिभिः
प्रेङ्खं श्रिता या कुसुमाकरानुगै -
र्विगीयमाना प्रियकर्मगायती भागवत पु0, 2/9/13

3- राघवत्वेऽभवत्सीता रुक्मिणी कृष्णजन्मनि ।
अन्येषु चावतारेषु विष्णोरेषानपायिनी ।।
देवत्वे देवदेहेयं मनुष्यत्वे च मानुषी ।
विष्णोर्देहानुरूपां वै करोत्येषात्मनस्तनुम ।। विष्णु पु0, 1/9/44-45

4- अथर्ववेद, 7/154/4

में इसे पद्मश्री कहा गया है।[1] पुन: उन का उल्लेख अलग-अलग देवियों के रूप में सभापर्व में जहाँ ब्रह्मा की सभा में वे दोनों उपस्थित कही गई हैं।[2] कालान्तर में वे दोनों मिलकर एक ही देवी श्री लक्ष्मी बन गयीं।

"श्री" का सम्बन्ध अन्य देवताओं से है। श्री सूक्त में लक्ष्मी विशेषतया अग्नि से सम्बन्धित हैं।[3] नारद पुराण में उसे कुबेर की स्त्री कहा गया है।[4] महाभारत में यह उल्लेख है कि दक्ष की तेरह पुत्रियों में लक्ष्मी भी थी जो धर्म के साथ विवाहित थी।[5] "श्री" का इन्द्र के साथ सम्बन्धित होना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। वे पाँच इन्द्रों की पत्नी थीं जिन्होंने द्रौपदी के रूप में अवतार लिया, जिनके नाम का उल्लेख नहीं हुआ है।[6] ईश्वर कार्तिकेय भी "श्री" लक्ष्मी से सम्बन्धित थे। इस की पुष्टि एक रजत मुद्रा पर अंकित "लक्ष्मी" और कार्तिकेय की प्रतिमा से होती है। यौधेयों की एक रजत मुद्रा के अग्रभाग पर षट्शीश कार्तिकेय हाथ में भाला लिये हुये तथा सिक्के के पृष्ठ भाग पर कमल पर "लक्ष्मी" खड़ी हुई मुद्रा में अंकित की गई हैं।[7] इस श्रेणी के सिक्कों की तिथि द्वितीय शताब्दी ई० का उत्तरार्द्ध निश्चित की गई है।[8] महाभारत की कथाओं में "श्री" लक्ष्मी का नारायण से सम्बन्धित होना उत्तरकालीन प्रतीत होता है। गीता में भगवान् श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि मैं सब का नाश करने वाला और आगे होने वालों की उत्पत्ति का कारण हूँ तथा

1- रामायण, अयोध्या काण्ड, 79/14
2- महाभारत सभापर्व, 11/40
3- श्री सूक्त, 1/13
4- नारद पु०, 84/12
5- महाभारत, 1/66/13
6- वही, 1/197/1
7- एलेन, कैटेलाग, ऑफ दि क्वायन्स ऑफ एंशेण्ट इण्डिया इन दि ब्रिटिश म्यूजियम, पृ० 270
8- एलेन, वही, पृ० 63

स्त्रियों में कीर्ति, श्री, वाक, स्मृति, मेधा, धृति और क्षमा हूँ।[1] एक दूसरे स्थल पर यह कहा गया है कि मैं एकादश रुद्रों में शंकर हूँ और यक्ष तथा राक्षसों में धन का स्वामी कुबेर हूँ और आठ वसुओं में अग्नि हूँ तथा शिखर वाले पर्वतों में सुमेरु पर्वत हूँ।[2] बौधायन धर्मसूत्र में "श्री", सरस्वती तुष्टि और पुष्टि का उल्लेख मिलता है।[3] महाभारत के शान्ति पर्व में श्री को नारायण विष्णु से सम्बन्धित बतलाया गया है, श्री को स्वर्णिम कमल से उत्पन्न धर्म की पत्नी कहा गया है जिन से अर्थ नामक पुत्र का उत्पत्ति हुई थी।[4] रामायण में भी यह उल्लेख मिलता है कि "श्री" विष्णु की भी पत्नी थीं।[5] अमरकोष में विष्णु को श्रीपति तथा "लक्ष्मी" को हरिप्रिया कहा गया है।[6] महाभारत[7] में विष्णु के एक सहस्त्रनामों का वर्णन मिलता है जिन में निम्नलिखित विशेषतया उल्लेखनीय हैं- श्रीमान्, श्रीनिवास, श्री पति, श्री माता अम्बर, श्रीश, श्री निधि, श्रीधर, तथा श्रीकर इत्यादि।

पौराणिक वाङ्मयमें श्री और नारायण के सम्बन्धों को भलीभाँति देखा जा सकता है। विष्णु पुराण[8] तथा विष्णु धर्मोत्तर[9] में ये वर्णन मिलता है

1- मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम् ।
कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधाधृतिःक्षमा ।। गीता, 10/34

2- वही, 10/23

3- बौधायन धर्मसूत्र, 2, 5, 9, 10

4- , 12, 59, 131, 4

5- रामायण, 2/118/20

6- अमरकोष, 1, 1, 18

7- 13, 149

8- देवौ धातृ विधातारौ भृगोः ख्यातिरसूयत ।
श्रियं च देवदेवस्य पत्नी नारायणस्यया ।। विष्णु पु0, 1/8/15

9- विष्णु धर्मोत्तर, 107/72

कि श्री भृगु और ख्याति की दुहिता थी जिनका पाणिग्रहण संस्कार नारायण के साथ सम्पन्न हुआ था । "श्री" द्वारा माधव की पूजा तथा "लक्ष्मी" द्वारा जनार्दन की पूजा का सर्वप्रथम उल्लेख विष्णु धर्मोत्तर में मिलता है[1] और यह भी वर्णन मिलता है कि "लक्ष्मी" विष्णु के वक्षःस्थल में विराजमान रहती थी।[2] पंचरात्र साहित्य के जयाख्य संहिता में विष्णु को कमलाकान्त तथा "लक्ष्मी" वल्लभ कहा गया है।[3]

गुप्तकालीन साहित्यिक साक्ष्यों से भी इसी बात की पुष्टि होती है कि "श्री" विष्णु की पत्नी थीं। कालिदास विरचित रघुवंश में श्री लक्ष्मी को कमल पर बैठी हुई बताया गया है।[4] रावणवध में "श्री"[5] को प्रत्युत्पत्तिणी कहा गया है, वे राम की पत्नी थीं जो विष्णु के अवतार थे। "श्री" लक्ष्मी विष्णु से किस प्रकार सम्बन्धित थीं, इस की जानकारी हमें गुप्तकालीन अभिलेखों से भी प्राप्त होती है। स्कन्द गुप्त के जूनागढ़ अभिलेख में "श्री" को कमल पर विराजमान एवं विष्णु में निवास करने वाली कहा गया है।[6] मिहिर कुल के समय के ग्वालियर शिला लेख में यह उल्लेख मिलता है कि "श्री" विष्णु के वक्षःस्थल में निवास करती थीं।[7] सारनाथ के अभिलेख[8] तथा आदित्यसेन के अफसढ़ अभिलेखों[9] में "श्री" को वासुदेव की पत्नी कहा गया है। अभिलेखों की भांति

1- वही, 3/116

2- वही, 106/29

3- जयाख्य संहिता, 1/43/44

4- रघुवंश, 10,8

5- रावणवध, 2,38

6- फ्लीट, का०इं०इं०, 3, पृ०286सं014 पंक्ति 1

7- वही, सं0 37, पंक्ति 8

8- डी0 सी0 सरकार, सेलेक्टिड इन्स्क्रिप्शन्स, पृ0 419

9- फ्लीट, वही, 3, सं0 79, पंक्ति 4

गुप्त नरेशों ने अपनी मुद्राओं पर भी "लक्ष्मी" की आकृति उत्कीर्ण करवायी थी। ये सिक्के बयाना कोष, लखनऊ संग्रहालय तथा ब्रिटिश संग्रहालय में सुरक्षित रक्खे गये हैं। इस प्रकार की मुद्राओं पर वर्तुलाकार दो प्रकार के लेख प्राप्त होते हैं (1) महाराजाधिराज श्री चन्द्रगुप्तः तथा क्षितिमव जित्य सुचरितैः दिवं जयति विक्रमादित्यः, पृष्ठ भाग पर कमल पर खड़ी बायें हाथ में नालयुक्त कमल तथा दाहिने हाथ में जयमाला दिखाई गई है।[1] गुप्त सम्राटों के यह सिक्के क्षत्र मुद्रा प्रकार के सिक्के हैं। गुप्त नरेशों में चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अश्वारूढ़ प्रकार की मुद्रा का भी प्रचलन किया था। इस प्रकार के सिक्के बयानानिधि में, लखनऊ संग्रहालय एवं कलकत्ता तथा ब्रिटिश संग्रहालय में उपलब्ध हुये हैं। इन मुद्राओं के मुख्य भाग पर सम्राट् अश्वारूढ़ दिखाया गया है तथा वर्तुलाकार लेख "परमभागवत महाराज धिराज श्री चन्द्रगुप्तः अंकित है। पृष्ठ भाग पर लक्ष्मी का चित्र मिलता है। वह एक हाथ में पाश तथा दूसरे हाथ में कमल लिये हुये दिखाई गई है।[2]

विष्णु पुराण में कहा गया है कि "लक्ष्मी" का निवास स्थान कमल है।[3] अन्यत्र विष्णु पुराण में कहा गया है कि जिस समय लक्ष्मी समुद्र से बाहर आयीं उनके हाथ में कमल था।[4] विष्णु पुराण के अनुसार इस अवसर पर हाथी (गज) सुवर्ण मय पात्रों से लक्ष्मी का अभिषेक सम्पन्न कर रहे थे।[5] उपर्युक्त मूर्ति

1- ए०एस० अल्तेकर, गुप्तकालीन मुद्रायें, पृ०, 90

2- ए०एस० अल्तेकर, दि क्वायनेज ऑफ दि गुप्ता एम्पायर, पृ० 121

3- सामस्वरूपी भगवान्द्योतिः कमलालया। विष्णु पु०, 1/8/22

4- श्रीर्देवो पयसस्तस्मादुद्भूताधृतपङ्कजा। वही, 1/9/100

5- दिग्गजा हेमपात्रस्थमादाय विमलं जलम् स्नापयाञ्चक्रिरे देवीं।

वही, 1/9/103

रूपों का स्पष्टीकरण पुरातत्व साक्ष्यों के द्वारा भी हो सकता है। बयाना संग्रह में प्राप्त गुप्त कालीन मुद्रा के ऊपरी भाग पर लक्ष्मी का आकार अंकित किया गया है।[1] मथुरा से प्राप्त "लक्ष्मी" की प्रतिष्ठा कमलों के बीच की गई है।[2] लक्ष्मी का गजाभिषेक पुरातत्व साक्ष्यों द्वारा स्पष्ट होता है। अजन्ता की कला में एक स्थल पर द्वार भाग में "लक्ष्मी" का चित्र प्रदर्शित किया गया है। "लक्ष्मी" का अभिषेक दो गज सूड़ों में घड़ा लेकर सम्पन्न कर रहे हैं।[3]

लक्ष्मी की प्रस्तर की मूर्तियों में उनके शरीर के प्रत्येक अंगों को बड़ी ही सावधानी से प्रदर्शित किया गया है। जब वे समुद्र के बाहर निकलीं वे पद्म पर बैठी हैं, उन के दोनों हाथों में एक-एक कमल का फूल है। गले में पुष्प की माला धारण किये हैं। दूसरी ओर गज सूड़ में घड़ा लेकर लक्ष्मी का अभिषेक कर रहा है।[4] दूसरे चित्र में विभिन्नता पाई जाती है। उनके दाहिने हाथ में कमल का फूल और बायें हाथ में विल्व फल है। वे सुन्दर वस्त्र धारण किये हुये हैं। परन्तु शिल्परत्न का कथन है कि लक्ष्मी का रंग श्वेत है। उनके बायें हाथ में कमल और दाहिने हाथ में विल्व फल है। वह गले में मोती का हार पहने हुये हैं, दो दासियां उनके पास बैठ कर चमर डुला रही हैं। जब लक्ष्मी विष्णु के साथ रहती है उनके दो ही हाथ हैं परन्तु जब वे मन्दिर में पूजी

1- ए०एस० अल्तेकर, गुप्तकालीन मुद्रायें, पृ० 102

2- ए०के० कुमारस्वामी, दि यक्षाज, भाग 2, पृ० 84

3- वही, पृ० 82

4- गोपीनाथ राव, एलीमेण्ट्स ऑफ हिन्दू आइकनोग्रेफी, भाग 1, खण्ड 2, पृ० 372, फलक, 109, चित्र 2

जाता है वे चार हाथ वाली भी जाती हैं। ~~वे चार हाथ वाली भी जाती हैं~~ वे आठ पंखुड़ियों वाले कमल पर बैठी हैं। दाहिने के दो हाथों में बिल्वफल लिये हुये हैं। बायें हाथ में अमृत का घड़ा और एक शंख भी है दो गज अपनी सूड़ों में पानी भरे घट को लेकर उनका अभिषेक कर रहे हैं। उनके सिर पर एक कमल भी है।[1] कोल्हापुर के एक मन्दिर में महालक्ष्मी की एक मूर्ति है। यह तीर्थ यात्रियों का एक महत्वपूर्ण स्थान है। महालक्ष्मी एक छोटी बालिका के रूप में दिखाई गई हैं जो सुन्दर-सुन्दर आभूषणों से समुज्ज्वल हैं। दाहिने हाथ में नीचे चक्र और ऊपर के हाथ में गदा, नीचे के बायें हाथ में बिल्वफल और ऊपर के बायें हाथ में खेटक धारण किये हैं।[2] शुंग नरेश सुज्येष्ठ अथवा ज्येष्ठ मित्र की एक मुद्रा पर एक देवी की आकृति कमल पर खड़ी हुई दाहिने हाथ में एक पुष्प लिये हुये अंकित की गई है। आकृति के दोनों ओर एक एक हाथी खड़े हैं और वे अपनी - अपनी सूंड़ में एक कमल का पुष्प तथा कुम्भ में जल लिए हुये उस पर उड़ेलते हुये प्रदर्शित किये गये हैं। ठीक इसी प्रकार की गजलक्ष्मी की आकृति अयोध्या नरेश वासुदेव, विशाख देव तथा शिव दत्त की मुद्राओं पर पाई जाती हैं। इस सिक्के की तिथि प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व निश्चित की गई है।[3] गोमित्र, ब्रह्म-मित्र तथा घोषदत्त के सिक्कों पर जो मथुरा से प्राप्त हुये थे दाहिने हाथ में कमल का एक पुष्प लिए हुये खड़ी मुद्रा में एक स्त्री की आकृति अंकित की गई है।[4] शुंग काल के भरहुत अभिलेख में श्री लक्ष्मी को सिरिमा देवता कहा गया है।[5]

1- गोपीनाथ राव, वही, पृ0 374, फलक 111, चित्र 1

2- गोपीनाथ राव, वही, पृ0 375, फलक 112

3- डी0सी0सरकार, दि एज ऑफ इम्पीरियल यूनिटी, पृ0 173

4- एलन, वही, पृ0 17

5- बरुआ और सिन्हा, भरहुत अभिलेख, पृ073, 74

गज लक्ष्मी की एक मृण्मूर्ति कौशाम्बी से प्राप्त हुई है जो ईसा की पहली शताब्दी की है[1] यह हाराति के साथ मिली थी और एक मंदिर में स्थापित थी। यह मृण्मूर्ति $2\frac{1}{2}$ फी० की है इस मूर्ति के मस्तक पर एक मुकुट है, जिस में दो गज घटों से इनके मस्तक पर पानी छोड़ रहे हैं। मस्तक पर इन के ललाटिका, कानों में पत्र कुण्डल, गले में माला, मणि बन्धों पर वलय, कमर में करधनी तथा पैरों में नूपुर है। नीचे के अंग में धोती धारण किये हुये है। ऊपर का अंग खुला है। एक हाथ अभय मुद्रा में है तथा दूसरा एक कमल को लिये हुये है।

1- गोवर्द्धन राय शर्मा, हिस्ट्री & प्री हिस्ट्री, आर्कियोलाजी ऑफ दि गंगा वैली & विन्ध्याज, पृ० 48-49

नवम अध्याय

विष्णु का मूर्त्त रूप एवं प्रतिमा पूजा

विष्णु का मूर्तरूप एवं प्रतिमा पूजा---- पुराणों में विष्णु उपासना की जिस परम्परा का सन्निवेश प्राप्त होता है, उस की पृष्ठभूमि में वैदिक प्रेरणा क्रियाशील थी। ऐसी स्थिति में यह विचारणीय हो जाता है कि विष्णु के मूर्त रूप का वर्णन अथवा प्रतिमा उपासना के साक्ष्य वैदिक साहित्य में उपलब्ध होते हैं या नहीं, ऐसी सम्भावित जिज्ञासा के उत्तर में केवल यही कहा जा सकता है कि प्रतिमा पूजा अथवा प्रतिमा निर्माण के लिये जो साक्ष्य अपेक्षित हैं उनका वैदिक साहित्य में अभाव है। फिर भी इतना सन्देह रहित है कि वैदिक ग्रन्थों के प्रार्थना-प्रचुर पृष्ठों में यत्र-तत्र ऐसी वेदियों का उल्लेख मिलता है जिन्हें विधिपूर्वक बनाया जाता था। इन्हीं ग्रन्थों के मंत्रों एवं सूक्तों में देवताओं के विवरण में उनके अंग, अवयव, आयुध एवं वाहनों का उल्लेख भी मिलता है।

प्रतिमा पूजा एवं वैदिक पृष्ठ भूमि --- वैदिक काल में मूर्ति पूजा होती थी या नहीं, इस विषय पर पाश्चात्य विद्वानों ने भिन्न-भिन्न विचार व्यक्त किये हैं। मैक्समूलर का कथन है कि वैदिक काल में मूर्तियों का निर्माण नहीं होता था और वैदिक धर्म में मूर्तियों का कोई स्थान नहीं है। भारत में मूर्तिपूजा गौण रूप में है, और आदर्श देवताओं की प्रारम्भिक पूजा की यह अधमावस्था है।[1] इस के विपरीत डा० बोलिनसन को वैदिक मंत्रों में देवमूर्तियों का स्पष्ट आभास मिलता है। वेदों का उद्देश्य शिल्पशास्त्र लिखने का नहीं है, लिये उनमें मूर्ति विधान के नियमों की आशा करना नितान्त अनुचित है।[2]

1- मैक्समूलर, चिप्स फ्राम अ जर्मन वर्कशाप, भाग 1 पृ0, 38

द्रष्टव्य, जितेन्द्रनाथ बनर्जी, दि डेवेलपमेन्ट आफ हिन्दू आइकनोग्रेफी, पृ043

2- बोलेनसन, म्योर, ओरिजनल संस्कृत टेक्स्ट भाग 5, पृ0 453-54, द्रष्टव्य जितेन्द्रनाथ बनर्जी, वही, पृ0 44

वेद की जिन ऋचाओं में मूर्तियों के विषय में उल्लेख है उनका विवरण इस प्रकार है- ऋग्वेद की एक ऋचा में इन्द्र को (तु ग्रीवो) अर्थात् मोटी गर्दन वाला (वपोदर:) अर्थात् लम्बोदर तथा (सुबाहु) सुन्दर भुजाओं वाला कहा गया है।[1] ऋग्वेद में एक दूसरी ऋचा में इन्द्र का उल्लेख करते हुये कहा गया है कि कौन मेरे इस इन्द्र को दस धेनुओं से खरीदेगा।[2] ऋग्वेद में पुन: एक दूसरी ऋचा में कहा गया है कि हे इन्द्र मै तुझे बड़े मूल्य में भी नहीं दूंगा (बेचूंगा) । कोई सौ दे हजार दे या दस हजार क्यों न दे।[3] यहाँ पर इन्द्र का तात्पर्य इन्द्र प्रतिमा से हो सकता है।

उत्तर वैदिक काल में प्रतिमा पूजा- यजुर्वेद और साम वेद के साक्ष्य-

उत्तर वैदिक काल में भी प्रतिमा पूजा सम्बन्धी महत्वपूर्ण संकेत प्राप्त होते हैं यजुर्वेद की वाजसनेयि संहिता में सूर्य को (हिरण्यपाणि) कहा गया है। ऐसा वर्णन मिलता है कि सूर्य की मूर्ति के हाथ दानव ने तोड़ डाले थे। देवताओं ने उस के स्थान पर सोने के हाथ बनवा दिये थे।[4] सामवेद में मूर्ति का उल्लेख इस प्रकार मिलता है- हम लोग शत्रु संहारक अग्नि का सान्निध्य ग्रहण करते हैं जो अर्क के पुत्र श्रुतवान के रूप में अत्यन्त देदीप्यवान् होते हुये प्रकट हुआ।[5]

1- तु विग्रीवो वपोदर: सुबाहु रन्ध सोमदे । इन्द्रो वत्राणि जिघ्नते ।
ऋग्वेद, 8/17/8

2- क इमं दशभिर्ममेन्द्रं क्रीणाति धेनुभि:। यदा वृत्राणि जङ्घनदथैनं मे पुनर्ददत् ।
वही, 424/10

3- महेवन त्वामद्रिव: पराशुल्काय देयाम्। न सहस्त्राय नायुताय वज्रिवो न शताम्घ । वही, 8/1/5

4- देवो व: सविता हिरण्यपाणि: प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना। वा0सं0, 51, 16

5- सामवेद, 1•9, 5•7•9

वैदिक साहित्य में मिलने वाले उक्त स्थलों एवं उनके उदाहरणों के आधार पर यह तो सहसा नहीं कहा जा सकता कि इनके काल में मूर्ति पूजा अवश्य हो प्रचलित थी अथवा देव मूर्तियों का निर्माण अवश्य हो होता था, तथापि इसमें सन्देह नहीं है कि जनमानस में देव प्रतिमा का परिकल्पन हो चुका था तथा सम्भवत: देव प्रतिमायें बनती थीं। मूर्तियों के विषय में वैदिक उदाहरण साक्षात् एवं सोद्देश्य नहीं हैं, उनका स्वरूप प्रासंगिक है। ऐसी स्थिति में यदि मूर्तियों के विषय में वैदिक उदाहरण साक्षात् एवं सोद्देश्य नहीं है, उनका स्वरूप प्रासंगिक है। ऐसी स्थिति में यदि मूर्तियाँ उस काल में बनती भी होंगी, तो उनके विधि-विधान और शिल्प-क्रिया का स्वरूप क्या था- यह निश्चय के साथ नहीं कहा जा सकता है।

ब्राह्मणों तथा आरण्यकों के स्थलों की समीक्षा-- संहिताओं की भाँति ब्राह्मणों तथा आरण्यकों में मूर्तिपूजा का उल्लेख है। षडविंश ब्राह्मण में देवालयों के हिलने तथा देवमूर्तियों के काँपने, हँसने, रोने तथा टूटने का वर्णन मिलता है।[1] शतपथ ब्राह्मण में रात्रिकाल, देव तथा अन्य मूर्तियों को ईंटों पर खोदने का उल्लेख मिलता है।[2] तैत्तिरीय आरण्यक में एक स्थल पर प्रतिमा

1- देवतायतनानि कम्पन्ते, दैवत प्रतिमाहसन्ति, रुदन्ति, नृत्यन्ति स्फुटन्ति, स्विद्यन्ति, उन्मीलन्ति। षड्विंश ब्राह्मण, 5/10

2- तद्या: परिश्रित:। रात्रिलोकास्ता: रात्रीणामेव सा5उप्ति: क्रियते रात्रीणां प्रतिमा ता:षष्ठीश्च त्रीणि शतानि भवन्ति। शत0ब्रा0, 10/3/2/13

बनाने का उल्लेख है।[1] उसी आरण्यक में एक दूसरे स्थल पर कहा गया है कि काश्यप नामक कलाकार की कृति में सातों सूर्यों की कला का चित्रण है।[2]

सूत्र साहित्य के स्थल- सूत्र साहित्य में भी प्रतिमापूजा परम्परा का उल्लेख मिलता है। मानवगृह्यसूत्र में एक स्थल पर ऐसा निर्देश है कि यदि अर्चा अर्थात् देवप्रतिमा {दारूमयी, प्रस्तरमयी अथवा धातुमयी} जलजाय, फूट जाय, गिर पड़े चूर-चूर हो जाय अथवा हँसने लगे, चलायमान हो चले तो गृहपति को मन्त्रोच्चारणसहित अग्नि में दस आहुति देकर प्रायश्चित करना चाहिये।[3]

मूर्तिपूजा की पाणिनिकालीन स्थिति-- अष्टाध्यायी के एक सूत्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि पाणिनि के काल में मूर्तियों का निर्माण होता था तथा इसे कभी कभी जीविका का साधन भी माना जाता था।[4]

स्मार्त साहित्य और मूर्तिपूजा-- स्मार्त साहित्य में भी मूर्ति पूजा तथा देवालयों के विषय में पर्याप्त वर्णन प्राप्त होता है। मनुस्मृति में पूजा के लिये देव पूजा एक अनिवार्य कर्म के रूप में उपदिष्ट है।[5] मनुस्मृति के अनुसार मूर्ति तोड़ना एक बहुत बड़ा अपराध था और उसके लिये कड़े दण्ड का विधान

1- इन्द्रात् परितन्वं ममे । तै0आ0, आनन्दाश्रम, पृ0, 142-43

2- यत्ते शिल्पं कश्यप रोचनावत । यस्मिन सूर्याः अर्पिता सप्तकसाम । राजेन्द्रलालमित्र, तैत्तिरीय आरण्यक की भूमिका पृ0, 80

3- यद्यर्चा दहेद्वाप्रपतेद्वा भ्रमेद्वा एताभिर्जुहुयात् एति दशा हुतयः । मा0गृ0सू0, 2/15/6

4- जीविकार्थे चापण्ये । पाणिनि सूत्र, 5/3/99

5- देवताभ्यर्चनं चैव समिदाधानमेव च । मनु, 2/176

उल्लिखित है।[1]

रामायण और महाभारत में मूर्ति-- रामायण में एक स्थल पर यह उल्लेख मिलता है कि भगवान् श्री रामचन्द्र जी राज्याभिषेक के पुण्य अवसर पर माता के दर्शन के लिये राजमहल में उपस्थित हुये वहाँ पर उन्होंने अपनी माता को नियम में स्थित तथा समय के अनुसार रेशमी साड़ी पहने देवतागार में लक्ष्मी की प्रार्थना करते देखा तथा देवी कौशल्या ने पुत्र के हित की कामना से प्रातः काल विष्णु की पूजा की।[2] रामायण में लंका काण्ड में मन्दिरों का उल्लेख मिलता है। युद्ध काण्ड में भगवान् रामचन्द्र जी ने रावण का वध करके लौटते समय सीता को सेतुबन्ध रामेश्वर का दर्शन कराया तथा शिव की कृपा से विजय घोषणा की।[3] महाभारत में मूर्तियों के काँपने, हँसने, रक्तवमन करने और गिरने आदि का उल्लेख मिलता है।[4]

आलोचित पुराण और मूर्तिपूजा- यदि वैदिक साहित्य में प्रतिमा निर्माण एवं प्रतिमा पूजा की आधार शिला प्रतिष्ठित है और यदि पुराणेतर वेदोत्तरवर्ती साहित्य में इस के उत्तरोत्तर विकास एवं परिवर्द्धन के प्रमाण प्राप्त होते हैं तो पुराण साहित्य के अध्ययन से प्रतीत होता है कि इससे सम्बन्धित ग्रन्थों के काल में प्रतिमा निर्माण एवं प्रतिमा-उपासना का उदय एवं

1- संक्रमध्वज यष्टीणां प्रतिमानां च भेदकः । मनु0, 9/285

2- तत्रतापृमणमेव मातरं क्षौम वासिनीम् ।
वाग्यतां देवतागारे ददर्शायाचतीं श्रियम् ।। रामा0 अयो0का0, 2/4/30

3- अत्रपूर्वं महादेव प्रसादमकरोद्विभुः ।
एतत्तु दृश्यते तीर्थसागरस्य महात्मनः ।।
सेतुबन्ध इति ख्यातं त्रैलोक्येन च पूजितम् ।
एतत्पवित्रं परमं महापातक नाशनम् ।। वही, लंका काण्ड, 25/20/21

विकास हो चुका था। पहली कोटि के साक्ष्य प्रारम्भिक पुराणों में मिलते हैं तथा दूसरी कोटि के साक्ष्य प्रारम्भिक पुराणों के उत्तरकालीन प्रक्षिप्तांशों में एवं उत्तरकालीन पुराणों में प्राप्त होते हैं।

आलोचित पुराणों में <u>विष्णु पुराण</u> के एक विशेष विवरण में श्राद्धों के सम्बन्ध में उन के विहित प्रभाव (परिणाम) एवं इनके लिये उचित स्थान के सन्दर्भ में सूर्य की पूजा को विशेष महत्त्व दिया गया है। श्राद्धकर्ता के बारे में ऐसा कहा गया है कि वह ब्रह्मा, रुद्र और इन्द्र के साथ सूर्य को आप्यायित कर शुभ कामनाओं को प्राप्त करता है। इसकी प्रक्रिया वस्तु, मनुष्य एवं द्रव्य से की जाती है। परन्तु अन्त में यह भी जोड़ दिया गया है कि यदि मनुष्य इन सभी वस्तुओं का भार सहन करने की स्थिति में नहीं है तो उसे जंगल में जाना चाहिये। सूर्य द्वारा संगठित ग्रहों के राजाओं की ओर बाँह उठाना चाहिये और पूर्वजों के प्रति भक्ति प्रदर्शित करना चाहिये।[1]

वर्तमान प्रसंग में दो आख्यानों पर ध्यान आकर्षित किया जा सकता है- याज्ञवल्क्य और सत्राजित का आख्यान। याज्ञवल्क्य के बारे में <u>विष्णु पुराण</u> में यह कहा गया है कि उन्होंने यजुर्वेद का ज्ञान सूर्य की उपासना के द्वारा प्राप्त किया था। आगे यह भी कहा गया है कि प्रार्थना के बाद सूर्य उसके समक्ष अश्व के रूप में उपस्थित हुये और उससे अपनी (उसकी) इच्छा को व्यक्त करने को कहा।

वर्तमान प्रसंग की समीक्षा की दृष्टि से <u>विष्णु पुराण</u> के उस आख्यान को महत्त्वपूर्ण तथा विवेचनीय मान सकते हैं जहाँ सत्राजित का विवरण प्राप्त है।

****

1-विष्णु पु०, 3/14/29-30

होता है। विष्णु पुराण को पंक्तियों में ऐसा वर्णन मिलता है कि सत्राजित सूर्य के सखा थे और अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिये उनका वरदहस्त प्राप्त करना चाहते थे। एतदर्थ उन्होने सूर्य की उपासना की । सूर्य उनके समक्ष प्रकट अवश्य हुये पर, सत्राजित के लिये उन का स्वरूप दर्शनीय नहीं था, अतएव आराध्य भी नहीं था। उनके वास्तविक स्वरूप के साक्षात्कार के लिये सत्राजित ने उनसे प्रार्थना की सूर्य ने अपने स्वरूप को दर्शनीय बनाने के लिये देदीप्यमान स्यमन्तक मणि को उतार दिया। इसके उपरान्त सूर्य का रूप दर्शनीय बन सका। पुराण स्थल में यह स्पष्ट कहा गया है कि सूर्य देव का कद बहुत ही छोटा था। उनका शरीर चमकते हुये ताँबे के समान दीख रहा था। उनकी आँखें कुछ लाली लिये हुये मालूम पड़ रही थीं। इस प्रकार उनका आकार मानवोचित आकृति के समकक्ष बन सका ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि एक ही पुराण में सूर्य के सन्दर्भ में त्रिविध विवरण प्राप्त होते हैं । एक स्थल पर सूर्य के प्रति केवल भक्ति का निरूपण है। दूसरे स्थल पर यद्यपि सूर्य के आकार {अश्व} का उल्लेख किया गया है तथापि इसे मूर्ति पूजा की ओर उन्मुख जनमानस की प्रकृति के अनुकूल नहीं मान सकते हैं। तीसरे स्थल पर जिस प्रकार के विवरण का समावेश है उस से प्रतीत होता है कि सामान्य जनमानस सूर्य के सन्दर्भ में पुरानी प्रचलित पद्धति से प्रायः विमुख हो

1- विष्णु पु०, 3/4

2- वही, 4/13/11-14

रहा था। सूर्य पूजा प्रणाली प्रचलित पद्धति चक्र के आकार में सूर्य का परिकल्पन करना तथा उसकी उपासना से विमुख हो रही थी।

विष्णु पुराण की पंक्तियों में जिस स्यमन्तक मणि का उल्लेख है उसका तात्पर्य सम्भवतः चक्रआकृति से है और सत्राजित के द्वारा सूर्य के प्रति यह निवेदन है कि स्यमन्तक मणि को उतार कर वे अपने वास्तविक रूप के दर्शनीय बनावें, इस बात का द्योतक है कि पौराणिक लोकधर्म में सूर्य की मूर्ति पूजा की आधारशिला प्रतिष्ठित हो चुकी थी।

प्रसंगतः यह उल्लेखनीय है कि भारत में सूर्य पूजा का विकास अपने इतिहास की एक अवस्था में शाकद्वीपीय मग ब्राह्मणों की उपासना पद्धति से प्रभावित हुये बिना न रह सकी[1]। परन्तु जैसा कि प्रो० जितेन्द्र नाथ बनर्जी तथा अन्य विद्वानों का कथन है, कि सूर्य उपासना का उत्तर कालीन विकास केवल मगीय योगदान के कारण नहीं माना जा सकता है अपितु इसे भारतीय दैशिक पद्धतियों के द्वारा भी ओत-प्रोत मानना संगत और समीचीन कहा जा सकता है।

इस सन्दर्भ में इस बात का उल्लेख किया जा सकता है कि यदि विष्णु पुराण सापेक्ष सौर धर्म में मूर्ति पूजा का शिलान्यास हो चुका था तो वैसी स्थिति में वैष्णव धर्म भी इससे अछूता न रहा होगा। इस का प्रधान कारण यह है कि वस्तुतः पौराणिक सौर धर्म वैष्णव धर्म का ही एक अंग था।

1- भारतीय कला में सौर अंकन के लिए द्रष्टव्य जितेन्द्रनाथ बनर्जी, दि डेवेलपमेण्ट ऑफ हिन्दू आइकनोग्रेफी, पृ०, 429

इस कथन के निदर्शनार्थ विष्ण पुराण के कतिपय स्थलों का उल्लेख किया जा सकता है जिन में सूर्य और विष्णु में तादात्म्य स्थापित करने की चेष्टा की गई है। इस के अतिरिक्त सूर्य को विष्णु का ही रूपान्तर बतलाया गया है। विष्णु पुराण में एक स्थल पर विष्णु को आदित्यों का नायक अथवा अधिपति बताया गया है।[1] आलोचित पुराण ग्रन्थों में हरिवंश के एक अतीव महत्वपूर्ण स्थल का उल्लेख किया जा सकता है। प्रस्तुत वर्णन व्यापक एवं विस्तृत न होने पर भी विवेचित सन्दर्भ के अनुकूल है। इस वर्णन की महत्ता इसलिये मान सकते हैं क्योंकि एक तो इसमें कुछ विशिष्ट देवालयों का प्रसंग आता है, इन देवालयों में देवमूर्तियों की प्रतिष्ठा का वर्णन है और इसी वर्णन में इन देवमूर्तियों की मुद्रा और हाव भाव का निरूपण हुआ है।[2] इस वर्णन की सार्थकता उसी स्थिति में मान सकते हैं जब कि यह स्वीकार कर लिया जाय कि हरिवंश के वैष्णव परक ग्रन्थ होने के कारण ऐसी सम्भावना भी प्रस्तावित की जा सकती है कि विवेचित देव मूर्तियों का तात्पर्य सामान्यतया अथवा विशेषतया वैष्णव मूर्तियों से ही है। इसके अतिरिक्त ऐसी भी सम्भावना कर सकते हैं कि मूर्तिशिल्पी मूर्तियों का निर्माण करते समय इन की भाव भंगिमा भिन्न-भिन्न अवयवों तथा गठन पर विशेष बल देते थे।

विष्णु पुराण- जहाँ तक विष्णु पुराण का सम्बन्ध है प्रस्तुत रचना में विष्णु के मूर्त रूप के स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होते हैं। इस ग्रन्थ के महत्वपूर्ण स्थलों में विष्णु के शरीर के अंगों एवं उनके द्वारा प्रयोग किये जाने वाले आयुधों के प्रसंग बिखरे पड़े हैं। उदाहरण के लिए एक स्थल पर शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण

1- द्रष्टव्य, पृष्ठांक 140

2- देवतान्यपि सर्वाणि दृश्यन्तयायतनेष्वथा। हरि0, 2/45/11

करने वाले कमल नयन भगवान विष्णु की स्तुति की गई है।[1] एक दूसरे स्थल पर कहा गया है कि खिले हुये कमल दल के समान जिसकी निर्मल आँखें हैं जो उज्वल पीताम्बर तथा निर्मल किरीट, केयूर, हार और कटकादि धारण किये हुये हैं तथा जिसकी लम्बी चार भुजायें हैं और जो शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुये हैं, भगवान् का वह दिव्य रूप अत्यन्त वैरानुबन्ध के कारण भ्रमण, भोजन, स्नान, आसन और शयन आदि सम्पूर्ण अवस्थाओं में कभी उसके चित्त से दूर न होता था।[2] पुनः दूसरे स्थल पर ऐसा उल्लेख आया है कि उन्हें खिले हुये कमल दल सी आभावाले चतुर्भुज और वक्षःस्थल में श्रीवत्स चिन्ह सहित उत्पन्न देख वसुदेव जी स्तुति करने लगे।[3] अन्यत्र ब्रह्मयोग के प्रसंग में कहा गया है कि किरीट, हार, केयूर एवं कटक आदि आभूषणों से विभूषित शार्ङ्ग, धनुष, शंख, गदा, खड्ग, चक्र तथा अक्ष माला से युक्त वरद और अभय हाथों वाले रत्नमयी मुद्रिका से शोभायमान भगवान् के रूप का योगी को अपना चित्त एकाग्र करके तन मन भाव से तब तक चिन्तन करना चाहिये जब तक वह धारणा दृढ न हो जाय।[4]

1- नमस्ते पुण्डरीकाक्ष शङ्खचक्रगदाधर । विष्णु पु0, 1/4/12

2- तत्स्वरूपमुत्फुल्ल पद्मदलामलाक्षमत्युज्ज्वलपीतवस्त्र
धार्यमलकिरीटकेयूरहार कटकादिशोभितमुदारचतुर्बाहु
शङ्खचक्रगदाधरमतिप्ररूढवैरानुभावादटनभोजन स्नाना
सनशयनादिष्वशेषावस्थान्तरेषु नान्य त्रोपययावस्य चेतसः। वही, 4/15/13

3- फुल्लेन्दीवर पत्राभं चतुर्बाहुम, दीक्ष्यतम् ।
श्रीवत्सवक्षसं जातं तुष्टावानक दुन्दुभिः ।। वही, 5/3/8

4- किरीटहार केयूर कटकादिविभूषितम् ।।
शार्ङ्गशङ्खगदाखड्गचक्राक्षवलयान्वितम् ।
वरदाभयहस्तं च मुद्रिकारत्नभूषितम् ।
चिन्तमेत्तन्मयो योगी समाधायात्ममानसम् ।
तावद्यावद्दृढीभूता तत्रैव नृपधारणा ।।

विष्णु पु0, 67/84-85-86

पुराण ग्रन्थों की इयत्ता-उत्तरवर्ती पुराण ग्रन्थों के आलोक में -

यहाँ पुन: उल्लेखनीय है कि विष्णु पुराण में विष्णु के मूर्तरूप का वर्णन अवश्य पाया जाता है पर, इस ग्रन्थ में उनकी मूर्ति बनाने के निदर्शक स्थलों का अभाव है। प्रसंग की अनुकूलता की दृष्टि से यहाँ मत्स्य और अग्नि पुराण का उल्लेख किया जा सकता है जिनमें विष्णु की मूर्ति निर्माण के विषय में विस्तृत विवेचन पाया जाता है। मत्स्य पुराण की रचना का काल विष्णु पुराण के रचनाकाल के ही समकक्ष माना जाता है, परन्तु इस में कतिपय स्थल बाद में जोड़े गये जिनके आधार पर उत्तरवर्ती प्रवृत्तियों की रूपरेखा तैयार की जा सकती है। विष्णु पुराण की तुलना में तो निश्चय के साथ अग्निपुराण एक उत्तरकालीन ग्रंन्थ माना जा सकता है। यहाँ विवेचनीय है कि विष्णु पुराण में विष्णु के मूर्तरूप की कल्पना करने के साथ-साथ उनके शारीरिक अंगों तथा उनमें धारण किये हुये आयुधों की मात्र कल्पना की गई है, एतद्विषयक प्रतिमा निर्माण के उल्लेख इस ग्रन्थ में नहीं मिलते। मत्स्यपुराण के एक विशिष्ट प्रसंग में विष्णु की एक ऐसी मूर्ति की चर्चा मिलती है जिस के यथानुकूल अवयवों को शंख, चक्र, कमल एवं गदा से युक्त बताया गया है। इसी प्रकार अग्नि पुराण के एक उल्लेखनीय संदर्भ में

1- विष्णोस्तावत्प्रवक्ष्यामि यादृग्रूपप्रशस्यते ।।
शङ्ख-चक्रधरं शान्तं पद्महस्तं गदाधरम् ।।
मत्स्य पु0, 258/4

विष्णु प्रतिमा के अनुकूल अंगों के साथ उक्त उपकरणों एवं आयुधों की चर्चा की गई है। इसी ग्रन्थ के कुछ अन्य स्थलों पर भी चक्र आदि आयुधों का उल्लेख मिलता है।

इससे प्रतीत होता है कि विष्णु पुराण के रचनाकाल तक विष्णु की प्रतिमा का निर्माण इतना प्रचलित हो चुका था कि पुराण जैसे विषयेतर वाले ग्रन्थों में भी प्रतिमा लक्षणों का यत्रतत्र उल्लेख होने लगा। प्रतिमा-लक्षण के फुटकर उल्लेखों की यही परम्परा आगे चल कर परवर्ती पुराण ग्रन्थों में प्रतिमालक्षण पर लिखे गये स्वतंत्र अध्यायों को जन्म देती है।

पुरातात्त्विक साक्ष्यों के आलोक में- यह स्मरणीय है कि इन रचनाओं में जिस परम्परा एवं प्रथा का संकेत मिलता है, उस का समर्थन पुरातात्त्विक साक्ष्यों से भी होता है। एतदर्थ एक विशेष वैष्णव मूर्ति का उल्लेख कर सकते हैं जिसकी समता पौराणिक परिकल्पन एवं आदर्श से सम्बन्धित वैष्णव मूर्ति के अवयवों से स्थापित की जा सकती है। विष्णु की यह प्रस्तर मूर्ति मथुरा संग्रहालय में रखी गई है। इस में विष्णु पीछे दाहिने हाथ में गदा पीछे बायें हाथ में चक्र आगे बायें हाथ में शंख और आगे दाहिने हाथ में पद्म धारण किये हुए हैं।[2]

1- ततो गदोमाधवोऽरिशङ्खपद्मी नमामितम् ।
चक्रकौमोदकीपाद्मशंखी गोविन्द अर्जितः ।।
मोक्षदः श्री गदी पद्मी शंखी विष्णुश्च चक्रधृक्।
शंखचक्राब्ज गदिनं मधुसूदन मानमे ।।   अग्नि पु0, 48/2-3

2- द्रष्टव्य गोपीनाथ राव, एलीमेण्ट्स ऑफ हिन्दूआइकनोग्रैफी, भाग 1, खण्ड 1, पृ099, स्थानकमूर्ति स्टोन मथुरा म्यूजियम, फलक 2।

इस वैष्णव मूर्ति की महत्ता इस दृष्टि से है कि इस शिल्पविधि में उक्त पौराणिक आदर्श के निर्वाह का दृष्टान्त व्यक्त हो जाता है।

श्रीवत्स[1] - श्रीवत्स का सम्बन्ध वैष्णव चिन्हों से था। इसके अनेक प्रमाण गुप्तकालीन मुहरों से प्राप्त होते हैं। उत्तरी भारत पूर्वी भारत तथा दक्षिणी भारत से प्राप्त होने वाली विष्णु की मध्यकालीन मूर्तियों पर इसके दर्शन होते हैं।

भागवत पुराण के अनुसार- भागवत पुराण में एक स्थल पर ध्यान करने की विधि में कहा गया है कि भगवान का मुख कमल, आनन्द से प्रफुल्ल है, नेत्र कमलदल के समान श्याम हैं। कमल की केशर के समान पीला रेशमी वस्त्र लहरा रहा है। वक्षःस्थल में श्रीवत्स चिन्ह है और गले में कौस्तुभ मणि झिलमिला रही है। वनमाल चरणों तक लटकी हुई है इसके चारों ओर सुगन्ध में मतवाले होकर भौंरे गुञ्जार कर रहे हैं। अंग प्रत्यंग में मूल्यवान हार, कङ्कण, किरीट, भुजबन्ध और नूपुर आदि आभूषण विराजमान हैं। कमर में करधनी की लड़ियाँ उसकी शोभा बढ़ा रही हैं। भक्तों के हृदय कमल ही उनके आसन हैं।[2] भागवत पुराण में अन्यत्र कहा गया है कि छत्र, दण्ड और जल से भरा कमण्डलु लिये हुये

1- (1) (2)

श्रीवत्स, द्रष्टव्य, जितेन्द्रनाथ बनर्जी, डेवेलपमेण्ट ऑफ हिन्दू आइकनोग्रैफी, पृ0, 290, पादटिप्पणी, 2

2- प्रसन्नवदनाम्भोजपद्म गर्भारुणेक्षणम् ।
नीलोत्पलदलश्यामंशङ्खचक्रगदाधरम् ।।
लसत्पङ्कजकिंजल्कपीतकौशेयवाससम् ।
श्रीवत्सवक्षसंभ्राजत्कौस्तुभामुक्तकन्धरम् ।।
मत्तद्विरेफकलया परीतं वनमालया।
परार्ध्यहार वलय किरीटाङ्गदनूपुरम् ।। भागवत पु0, 3/28/12/14-15

वामन् भगवान ने अश्वमेध यज्ञ के मण्डप में प्रवेश किया। वे कमर में मूज की मेखला और गले में यज्ञोपवीत धारण किये हुये थे। बगल में मृगचर्म था और सिर पर जटा थो।[1]

<u>भागवत पुराण के स्थलों की समीक्षा</u>- <u>मत्स्य औ अग्नि के आलोक में</u> - उपर्युक्त वर्णन की भाँति ही <u>मत्स्य पुराण</u> में भी वर्णन मिलता है । त्रिविक्रम प्रतिमा का उल्लेख करते हुये कहा गया है कि जो निखिल ब्रह्माण्ड को लाँघने के लिये भयानक आकृति से युक्त रहते हैं उनके चरणों के समीप ऊपर की और बाहु का निर्माण करना चाहिये। नोचे दाहिनी और छोटी सी छतरी देनी चाहिये । मुख को दीनता व्यक्त करने वाला बनाना चाहिये। उन्हीं के बगल में जल पात्र को लिये हुये बलि का निर्माण होना चाहिये, और उसी स्थल पर बलि को बाधते हुये गरुड़ को दिखाना चाहिये। <u>अग्नि पुराण</u> में मूर्तिपूजा के सन्दर्भ में एक स्थल पर कहा गया हैकि वामन छत्री, दण्ड धारण किये हुये हैं और चार भुजाओं वाले हैं।[2]

<u>पुरातात्त्विक साक्ष्यों के आलोक में</u>- उक्त पौराणिक आदर्श के सन्दर्भ में बादामी में उपलब्ध एक वैष्णव मूर्ति विशेषतया उल्लेखनीय है। इस मूर्ति में दैत्यराज को अपने अनुचरों के साथ वामन को उपहार प्रदान करते हुये दिखाया

1- छत्रं सदण्डं सजलं कमण्डलुं विवेश बिभ्रद्धयमेधवाटम् ।।
मौञ्ज्या मेखलया वीतमुपवीताजिनोत्तरम ।
जटिलं वामनं विप्रं मायामाणवकं हरिम् ।।
<u>भागवत पु0</u>, 8/18/23-24

2- छत्री दण्डी वामनः स्यादथवा स्याच्चतुर्भुजः
<u>अग्नि पु0</u>, 49/5

गया है। त्रिविक्रम का दाहिना पैर एक शाही आकृति लपेटे हुये बनाया गया है। मूर्ति के निचले भाग में विष्णु गण, संगीत और वाद्य सामग्री के साथ मनोरंजन करते हुये दिखलाये गये हैं। आलोचित पुराण में गरूड द्वारा बाधे जाने का उल्लेख है, परन्तु प्रस्तुत मूर्ति में गरूड की आकृति नहीं बनाई गई है जिस से पौराणिक और पुरातात्त्विक विष्णु के मूर्तरूप में असमानता दिखलाई पड़ती है।[1]

हरिवंश के अनुसार- विष्णु एवं भागवत में ही नहीं हरिवंश में भी विष्णु के अंगों एवं उनके द्वारा प्रयोग किये जाने वाले आयुधों का पर्याप्त उल्लेख मिलता है। हरिवंश में एक स्थल पर कहा गया है कि भगवान् के श्री विग्रह का वर्ण मेघ और अंजन के समान था। उनके केश भी मेघ के समान ‖काले‖ थे। उनका शरीर तो काले पर्वत के समान कृष्ण वर्ण था ही, उस से तेज भी कृष्णवर्ण निकल रहा था। वे चमकता हुआ पीताम्बर धारण किये हुये थे और तपे हुये सुवर्ण के आभूषण पहने थे। उस समय वे ऐसे लगते थे, जैसे धूम के समान अन्धकारमय शरीर से आवेष्टित होकर प्रलयकाल की अग्नि प्रकट हो । वे ‖अष्टभुज होने के कारण‖ आठ मांसल बाहुओं से सुशोभित थे । चमकते हुये आभूषणों से युक्त उनका श्रीविग्रह ऐसी शोभा देता था, जैसे बगुलों की पंक्ति से विभूषित मेघ हो। वे सुवर्ण की बनी मूठ वाले आयुधों से सुशोभित तथा चन्द्रमा और सूर्य की किरणों से दमकते हुये पर्वत के समान अचल थे। कटि प्रदेश में हरताल ‖संखिया के खनिज ‖ के सदृश रक्त वर्णीय नीवीबंध शोभायमान हो रहा था। उनका एक हाथ नन्दक नाम के खड्ग से सुशोभित था, वे दूसरे हाथ में सर्पाकार ‖लहरदार‖

1- द्रष्टव्य, जितेन्द्र नाथ बनर्जी, दि डेवेलपमेण्ट ऑफ हिन्दू आइक्नोग्रेफी, पृ0, 419, त्रिविक्रम बादामी, फलक, 23, चित्र 4

वाण धारण किये हुये थे। शक्ति से उनकी विचित्र शोभा हो रही थी। तीसरे हाथ में फूल लिये रहने के कारण वे बहुत ऊँचे दिखाई दे रहे थे। अन्य तीन हाथों में उन्होंने शङ्ख, चक्र और गदा धारण कर रखी थी। एक हाथ में उनके शार्ङ्ग (सींग का बना) धनुष था। भगवान् विष्णु एक पर्वत के समान दीख रहे थे। उनके अंगों में जो श्री है, वे ही वृक्ष स्थानीय थीं।[1]

हरिवंश के स्थलों की समीक्षा - मत्स्य और अग्नि के आलोकमें -

मत्स्य पुराण में विष्णु की चतुर्भुजी तथा आठ भुजाओं से युक्त मूर्तियों का वर्णन करते हुये कहा गया है कि हरि की आठों भुजाओं में दायें क्रम से खड्ग, गदा, वाण और पद्म और वाम क्रम से धनुष, खेटक, शंख और चक्र हो। चतुर्भुजी प्रतिमा में क्रमशः दोनों दाहिने हाथ को गदा और पद्म से तथा दोनों बायें हाथों को शंख और चक्र से युक्त बनाना चाहिये। इस प्रकार चतुर्भुज मूर्ति का निर्माण ऐश्वर्य इच्छुक पुरुष के द्वारा होना चाहिये।[2] अग्नि पुराण में वर्णित है कि विष्णु की अष्टभुजा मूर्ति दिव्य पक्षी गरुड पर विराजमान दाहिने हाथों में असि, गदा,

---

1- बलाहकांजननिभं बलाह कतनूरूपम ।
तेजसा वपुषा चैव कृष्णां कृष्ण मिवाचलम् ।।
दीप्तपीताम्बर धरं तप्तकांचनभूषणम् ।
धूमान्धकार वपुषा युगान्ताग्निमिवोत्थितम् ।।
चतुर्द्विगुणपीनांसं बलाकापङ्क्तिभूषणम् ।
चामीकर कराकारैरायुधैरुपशोभितम् ।।
चन्द्रार्क किरणोद्योतं गिरिकूटं शिलाच्चयम्।
नन्दका नन्दित करं शराशी विषधारिणम्।।
शक्ति चित्रं हलोदग्रं शङ्ख चक्र गदाधरम्।
विष्णु शैलं क्षमामूलं श्रीवृक्षं शार्ङ्ग धन्विनम् ।। हरि0, 1/42/21-22-23-24-25

2- देवस्याष्टभुजस्यास्य यथास्थानं निबोधत । खड्गोगदाशरःपद्मंदिव्यं दक्षिणतोहरेः।
धनुश्च खेटकंचैव शङ्ख चक्रे च वामतः ।। चतुर्भुजस्य वक्ष्यामि यथैवायुधसंस्थितिः ।।
दक्षिणेन गदा पद्मं वासुदेवस्य कारयेत् ।। वामतः शङ्ख चक्रे च कर्तव्ये भूतिमिच्छता।

बाण बायें में धनुष, खेटक, खड्ग तथा शेष दो हाथ वरद मुद्रा में बनाना चाहिये।[1]

पुरातात्त्विक साक्ष्यों के आलोक में - उपर्युक्त पौराणिक आदर्श के आलोक में बादामी से प्राप्त विष्णु की अष्टभुजा मूर्ति का उल्लेख किया जा सकता है। इस मूर्ति में विष्णु के दायें चार हाथों में चक्र,सर,गदा और खड्ग है और बायें तीन हाथों में शंख, खेटक और पद्म है। आगे का बायां हाथ कटिहस्त मुद्रा में है। हमारे आलोचित पुराण हरिवंश में विष्णु के आठ भुजाओं से युक्त मूर्ति रूप के वर्णन में एक हाथ में हल लिये हुये बताया गया है, परन्तु उक्त मूर्ति में जो बादामी से प्राप्त हुई है विष्णु को हाथ में हल लिये हुये नहीं प्रदर्शित किया गया है।

हरिवंश में पुन: एक दूसरे स्थल पर वराह अवतार के प्रसंग में कहा गया है कि उनके श्री अंगों पर पीताम्बर शोभा पा रहा था। नेत्र कुछ-कुछ लाल थे। अंग कान्ति मेघ के समान श्याम थी। सिर पर सहस्त्रों शिखाओं से विकसित जटा का भार वे वहन करते थे। उन का रक्त चन्दन से विभूषित पवित्र वक्ष:स्थल श्रीवत्स की शोभा से संयुक्त था। उसे धारण किये महाबाहु श्रीहरि विद्युत के सहित मेघ के समान सुशोभित होते थे। उस समय उनके गले में सहस्त्र कमलों की माला शोभा पा रही थी। उनकी पत्नी साक्षात लक्ष्मी उनके सम्पूर्ण शरीर को घेर कर खड़ी थीं।[2]

1- द्रष्टव्य ,बनर्जी, वही,पृ0 ,401

2- पीतवासा लोहिताक्ष: कृष्णो जीमूत संनिभ: ।
शिखासहस्त्र विकचं जटाभारं समुद्वहन् ।।
श्रीवत्स कलिलं पण्यं रक्त चन्दनभूषितम ।
वक्षो विभ्रन्महाबाहु: सविद्युदिव तोयद: ।।
पुण्डरीक सहस्त्रास्य मालास्य शुशुभेतदा ।
पत्नी चैव स्वयं लक्ष्मीर्देहमावृत्यतिष्ठति ।।

हरि0,3/33/28-29-30

हरिवंश के स्थलों की समीक्षा-मत्स्य और अग्नि के आलोक में-

मत्स्य पुराण में एक स्थल पर वराह की प्रतिमा बनाने के विषय में कहा गया है कि उनके हाथ में पद्म और गदा हो। भगवान् वराह अपने तेज दांतों से पृथ्वी को पकड़कर दाहिनी कोहनी पर टेके हुये पाताल से ऊपर को ओर शान्ति पूर्वक ले जा रहे हैं, ऐसी कल्पना करना चाहिये। उनका दाहिना पैर कछुये की पीठ पर और बायां पैर शेष के फण पर हो। उनकी दाहिनी भुजा कटि से चिपकी हुई हो विष्णु की मूर्तियां स्तुति मुद्रा में बनाना चाहिये[1]। अग्नि पुराण में एक स्थलपर विष्णु की चतुर्बाहु मूर्ति का उल्लेख है जिसमें वराह को एक हाथ में शेष को धारण किये हुये प्रदर्शित किया गया है[2]।

पुरातात्त्विक साक्ष्यों के आलोक में - उक्त पौराणिक आदर्श का आंशिक समर्थन नागलापुरम् से प्राप्त वराह विष्णु (मूर्ति) से होता है। विष्णु का झुका हुआ बायां पैर आदि शेष के फण पर है ऊपर के दोनों हाथों में शंख, चक्र धारण किये हुये हैं[3]।

1- महावराहं वक्ष्यामिपद्महस्तं गदाधरम् ।।
तीक्ष्णदंष्ट्राग्रघोणास्यं मेदिनी वामकूर्परम् ।।
दंष्ट्राग्रेणोद्धृतां दान्ताधरणीमुत्पलान्विताम् ।।
विस्मयोत्फुल्लवदनामुपरिष्टात्प्रकल्पयेत् ।।
दक्षिणं कटि संस्थन्तु करं तस्याः प्रकल्पयेत् ।। मत्स्य पु० 260/28/29-30

2- चतुर्बाहुर्वराहस्तु शेषः पाणितलेधृतः । अग्नि पु०, 49/18

3- द्रष्टव्य, गोपीनाथ राव, वही, भाग । खण्ड ।, वराह स्टोन, नागलापुरम्, फलक, 39, चित्र ।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि न केवल भारतीय साहित्य ही अपितु भारतीय पुरातत्व का विशाल कोष भी प्रतिमा-निर्माण एवं प्रतिमा पूजा के निदर्शक स्थलों एवं साक्ष्यों से भरा पड़ा है पर, इन की समीक्षा करते समय एक मौलिक एवं महत्वपूर्ण समस्या उपस्थित हो उठती है कि ऐतिहासिक कसौटी पर परीक्षा करने के लिये इन्हें काल क्रम के अनुसार कहां और किस स्तर से सम्बन्धित किया जाय। हमारे वैष्णव पुराण, वैदिक विष्णु के स्वरूप एवं प्रकार के द्वारा प्रभावित हैं। विष्णु के वेदकालीन सामान्य स्वरूप को इन्होंने स्वकाल-विशिष्टधार्मिक परिस्थितियों के अनुकूल सवांरने की चेष्टा की है। विष्णु पुराण ने एक निश्चित सीमा तक विष्णु के जिस मूर्त और स्थूल स्वरूप की परिकल्पित किया है उसे भागवत ने संतोषजनक सीमा तक बढ़ाया है तथा उसे हरिवंश ने कहीं तो उसी रूप में और कहीं-कहीं वस्तुत: प्रतिमा-निर्माण एवं प्रतिमा पूजा के रूप में वर्णित किया है। इन ग्रन्थों के रचना काल में मूर्तिपूजा का प्रचलन नहीं था अथवा एतदर्थ वैष्णव मूर्तियां बनती थीं अथवा नहीं? इस प्रश्न का सहज उत्तर देना सुकर नहीं है। कारण यह है कि पुराण पंचलक्षण की परम्परा से ये ग्रन्थ विशेषतया विष्णु पुराण और भागवत सर्वथा मुक्त नहीं थे। हरिवंश में एतद् विषयक स्थलों का कममिलना प्रासंगिकता अथवा अप्रासंगिकता का परिचय प्रस्तुत करता है। उत्तरवर्ती पुराण ग्रन्थ पंचलक्षण की परम्परा परिधि से सर्वथा मुक्त थे अतएव अग्नि पुराण में इस विषय से

सम्बन्धित स्थलों का मिलना स्वाभाविक ही है। मत्स्य पुराण के स्थलों का निर्देश यह स्पष्ट कर देता है कि यह ग्रन्थ उत्तरवर्ती मान्यताओं से सम्बन्धित स्थलों के समावेश से मुक्त नहीं रहा है। इन उत्तरवर्ती ग्रन्थों की समीक्षा से यह भी स्पष्ट है कि इन में वैष्णव मूर्ति के निर्माण और उपासना के तत्व पूर्ववर्ती परम्पराओं के द्वारा प्रभावित है, और उन की वास्तविकता के औचित्य- अनौचित्य की सम्यक झांकी पुरातात्विक शोधों द्वारा प्रकाशित साक्ष्यों से अनेकशः मिल जाती है।

दशम अध्याय

वैष्णव-व्रत और तीर्थ

विश्व का सम्पूर्ण मानव समाज एवं प्राचीन संस्कृतियों का कोई भी समुदाय तथा सम्प्रदाय उत्सवों और व्रतों से रहित नहीं है। अपने-अपने ढंग के सभी उत्सव मनाते हैं और व्रत करते हैं।[1] व्रतों में प्रत्येक मनुष्य का उपकार एवं कल्याण निहित है। भारतीय समाज में प्रारम्भ से ही व्रतों को विशेष महत्ता रही है। भारतीय आस्था के अनुसार व्रतों के प्रभाव से मनुष्यों की आत्मा शुद्ध होती है। संकल्पशक्ति व्रतों से बढ़ती है। बुद्धि विचार चतुराई एवं ज्ञान तन्तु का विकास होता है। हृदय में सच्चिदानन्द परमात्मा के प्रति भक्ति, श्रद्धा और तल्लीनता का संचार होता है।[2]

भारतीय परम्परा में व्रतों की महत्ता इतनी बद्धमूल रही है कि न केवल इस का विवरण अपितु शाब्दिक व्याख्या करने की भी चेष्टा की गई है। इस प्रसंग में यह बताया गया है कि "वृञ्" धातु से "उणादि" "च्" प्रत्यय होकर व्रत शब्द बनता है। निरूक्तकार ने इस का विवरण, वृणोतिपद से माना है। जो कर्म कर्ता को वृत्त करे वह व्रत है। दूसरा विवरण उन्होंने "वारयति" पद से दिया है।[3]

व्रतों का उल्लेख वैदिक ग्रन्थों से ही मिलने लगता है। <u>शुक्ल यजुर्वेद</u> में एक स्थल पर व्रतकार भगवान् से प्रार्थना करता है कि " हे व्रतों के स्वामी सब से बड़े परमात्मा मै व्रत करूँगा" ऐसी मेरी आकांक्षा है। मैं उस व्रत को पूर्ण कर सकूँ,

---

1- द्रष्टव्य, विश्वनाथ, शर्मा, <u>व्रतराज</u>, प्रस्तावना, पृ0 ।

2- द्रष्टव्य, हनुमान जी शर्मा का निबन्ध, "व्रत", पर्व और त्यौहार" कल्याण, हिन्दू संस्कृति अंक, 1951, पृ0 628

3- द्रष्टव्य, विश्वनाथ शर्मा, वही पृ0 ।

यह मुझे शक्ति प्रदान कीजिये"[1] अथर्ववेद में व्रत के विषय में कहा गया है कि हे। मेखले तु चारों ओर पहनी जाती है और सब ओर से ग्रहण की जाती है, मन्त्रद्रष्टा और वेद ज्ञानी पुरुषों को आयुध, पापों के नाश करने का साधन, कामादि शत्रुओं के नाश करने का हथियार है। अतः वही ब्रह्मचर्य आदि के व्रत के पूर्व में ही ब्रह्मचारी शरीर को व्यापती हुई तु वीर पुरुष भामिनी हो।[2]

वेदोत्तरवर्ती ग्रन्थों में व्रतों का अपेक्षाकृत अधिक उल्लेख किया जाना स्वभाविक ही था। श्रौत सूत्रों[3] में व्रत का अर्थ व्यक्ति के आचरण हेतु उचित व्यवस्था, से ग्रहण किया गया है, परन्तु गृह्य सूत्रों[4] में व्रत का तात्पर्य उपवास के लिये पाया जाता है। मनुस्मृति में एक स्थान पर कहा गया है कि धर्म के बहाने पाप करके व्रत नहीं करना चाहिये व्रत के द्वारा पाप कर्म प्राच्छादन करके और स्त्री तथा शूद्रों का दम्भ करके जो ब्राह्मण इस संसार में रहते हैं वे इस लोक में और मरकर परलोक में भी ब्रह्मवादी व्यक्तियों द्वारा निन्दित हुआ करते हैं। छल के द्वारा जो भी कोई व्रत किया जाता है वह राक्षसों को चला जाता है।[5] याज्ञवल्क्य स्मृति में स्मृतिकार कृच्छ्र व्रत के महत्व पर प्रकाश

1- अग्ने व्रतपते व्रतंचरिष्यामितच्छ केयं तन्मे
राध्यताम्। इदमह मनृतात्सत्य मुपैमि । शु0य0, 1/5

2- आहुतस्यभिहुत ऋषीणाम स्यायुधम् ।
पूर्वाव्रतस्य प्राश्नती वीरघ्नी भव मेखले । अथर्ववेद, 6, 133, 2

3- आपस्तम्बश्रौत सूत्र, 4/2/5-7, 4/16/11, आश्वलायन श्रौतसूत्र, 2/2/7, 3/13/1-2

4- आश्वलायन गृह्यसूत्र, 3/10/5-7, शांखायन गृह्यसूत्र, 2/11-12
द्रष्टव्य, पी0वी0 काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 4, पृ. 10

5- धर्मस्याय देशन पापं कृत्वा व्रतंचरेत ।
व्रतेन पापं प्रच्छाद्य कुर्वन् स्त्री शूद्रदम्भनम् ।
प्रत्येह चे दृशा विप्रा गृह्यन्ते ब्रह्मवदिभिः ।

डालते हुये कहता है कि जो धर्म को इच्छा से कृच्छ व्रत करता है वह उसी प्रकार प्रचुर विभूति प्राप्त करता है जिस प्रकार बड़े यज्ञों का कर्ता उनके फल पाता है।[1] याज्ञवल्क्य स्मृति में एक दूसरे स्थल पर कहा गया है कि जिन पापों के प्रायश्चित का विधान नहीं किया गया है उनकी शुद्धि चन्द्रायण व्रत से होती है जो धर्म के लिये यह व्रत करता है वह चन्द्रलोक को चला जाता है।[2]

व्रतों को जो प्रतिष्ठा वैदिक साहित्य में मिली तथा जिसे स्मृतिकारों ने एक विशालतर कलेवर प्रदान किया, पुराणकारों ने केवल उस का समादर ही नहीं किया अपितु उसे जनमानस के अधिक निकट तथा लोकाचार एवं सामाजिक प्रभावों के अनुकूल बनाने का भी प्रयास किया । पुराणों में अनेकों प्रान्तों के विधान का उल्लेख है। विष्णु पुराण में एक स्थल पर याज्ञ वल्क्य ने कहा है कि भगवान् ये सब ब्राह्मण निस्तेज हैं इन्हें कष्ट देने की क्या आवश्यकता है? मैं अकेला स्वतः इस व्रत का अनुष्ठान करूँगा।[3] भागवत पुराण भी इसी कानों का निर्देश करता है। भागवत पुराण में एक स्थल पर याज्ञवल्क्य ने कहा है कि हे भगवान् ये "चरकाध्वर्यु, ब्रह्मण तो बहुत थोड़ी शक्ति रखते हैं इनके व्रत पालन से लाभ ही कितना है मैं आपके प्रायश्चित्त के लिए बहुत ही कठिन तपस्या

1- कृच्छ कृद्धर्मकामस्तु महतीं श्रियमाप्नुयात । तथा
गुरुकृतुफलं प्राप्नोति सुसमाहितः ।। याज्ञ० स्मृ०, 3/327

2- अनादिष्टेषु पापेषु शुद्धिश्चान्द्रायणेन च ।
धर्मार्थं यश्चरे देतच्चन्द्रस्यैतिसलोकताम् ।   वही, 3/326

3- अथाह याज्ञवल्क्यस्तु किमेभिर्भगवन्द्विजैः ।
क्लेशितैरल्पतेजोभिश्चरिष्येऽहमिदंव्रतम ।।

विष्णु पु००, 3/5/7

करूँगा।[1] हरिवंश में याज्ञवल्क्य सम्बन्धी कथा का उल्लेख किसी स्थल पर नहीं हुआ है परन्तु व्रतों और उनके विधानों की चर्चा हुयी है।

आलोचित पुराण के अतिरिक्त व्रतों का उल्लेख अन्य पुराणों में मिलता है। उनके दो वर्ग किये जाते हैं- ﴾1﴿ वे पुराण जो प्रारम्भिक तो हैं परन्तु इन में स्थलों का संयोजन बाद में भी होता रहा ।
﴾2﴿ वे पुराण जिनकी रचना बाद में हुई और जिन में पूर्वकालीन परम्पराओं के सन्निवेश के साथ-साथ अधिकतर उत्तरकालीन मान्यताओं का समाहार प्राप्त होता है। पहले वर्ग के पुराणों में मत्स्य पुराण विशेषतया उल्लेखनीय है। इस पुराण में व्रतों की संख्या तथा उनका विकास अधिक दिखलाई पड़ता है। उदाहरणार्थ, आदित्यशयन व्रत, कृष्णाष्टमी व्रत, सौभाग्यशयन व्रत, सप्तमी व्रत, अशून्यशयनव्रत आदि। डा० हाजरा तथा अन्य विद्वानों के अनुसार प्रारम्भिक पुराण में सब से अधिक उत्तरकालीन स्थलों का संयोजन इसी पुराण में हुआ है। इस ग्रन्थ में तीर्थों का निरूपण तो मिलता ही है इस के अतिरिक्त इसमें उपतीर्थों तथा उपतीर्थों में आचरणीय व्रत का भी वर्णन मिलता है परन्तु यह व्रत उत्तरकालीन सामान्य एवं प्रचलित व्रतों से भिन्न है।[2]

1- याज्ञवल्क्यस्य तच्छिष्य आहाहो भगवन् क्रियताम् ।
चरिते नास्य सारांश चरिष्येऽहंसुदुश्चरम् ।।

भागवत पु०, 6/12/62

2- द्रष्टव्य हाजरा, पुराणिक रेकर्ड्स् पृ०, 41

विष्णु पुराण, भागवत पुराण तथा हरिवंश में निर्दिष्ट व्रतों और उनकी विधियों का वर्णन- विष्णु पुराण में एक स्थल पर कहा गया है कि द्विजातियों को प्रारम्भ में व्रत का पालन करते हुये वेद का अध्ययन करना पड़ता है और फिर स्वधर्म आचरण से उपार्जितधन के द्वारा विधिपूर्वक यज्ञ करने पड़ते हैं।[1] भागवत पुराण में पुंसवन व्रत का उल्लेख है। इसकी विधि के विषय में बतलाया गया है कि पुंसवन व्रत प्रत्येक कामनाओं को पूर्ण करने वाला है। जो स्त्री इस व्रत को करे वह अपने पति देव की आज्ञा लेकर मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपद से इस का प्रारम्भ करे।[2] प्रतिदिन प्रातःकाल नित्य क्रिया से निवृत होकर स्नानादि करके श्वेत वस्त्र और आभूषण धारण करले, और लक्ष्मी नारायण की पूजा करें।[3] एकाग्र चित्त से ओ3म्नमो भगवते महापुरुषाय महानुभावाय महाविभूतिपतये सह महसवि-भूतिभिर्बलिमुपहराणि। ओंकार स्वरूपा महानुभाव समस्त महाविभूतियों को मैं नमस्कार करती हूँ।[4] जो नैवेद्य बँच जाय उस से ओ3म् नमो भगवते महापुरुषाय महाविभूतिपतये स्वाहा। यह मन्त्र बोल कर अग्नि में बारह आहुतियां दें।[5] इसके बाद भक्ति भाव से बड़ी नम्रता से भगवान् को साष्टाङ्ग दण्डवत करें।[6]

1- व्रतचर्या परैर्ग्राह्यावेदाःपूर्वं द्विजातिभिः।
ततस्स्वधर्मसम्प्राप्तैर्यष्टव्यं विधिवद्धनैः।। विष्णु. पु0, 6/6/19

2- शुक्ले मार्गशिरेपक्षे यो षिद्भर्तुरनुज्ञया।
आरभेत व्रतमिदं सार्वकामिकमादितः।। भागवत पु0, 6/19/2

3- स्नात्वा शुक्लदती शुक्ले वसीतालङ्कृताम्बरे।
पूजयेत्प्रातराशात्प्राग्भगवन्तं श्रियासः।। वही, 6/19/3

4- ओम् नमो महापुरुषाय ----------समाहितउपाहरेत्। वही, 6/19/7

5- हविः शेषं तु जुहुयादनले द्वादशाहुतीः।
ओम् नमो भगवते महापुरुषाय महाविभूतिपतयेस्वाहेति। वही, 6/19/8

6- प्रणमेदण्डवद्भक्तिप्रह्वे ण चेतसा। वही, 6/19/10

यह भगवान विष्णु का व्रत है इसको नियम से प्रारम्भ करके बीच में कभी नहीं छोड़ना चाहिये भगवान् के इस पुंसवन व्रत का जो मनुष्य विधि पूर्वक अनुष्ठान करता है, उसे यहां उस को मनचाही वस्तु मिल जाती है। स्त्री इस व्रत का पालन करके सौभाग्य, सम्पत्ति, सन्तान, यश और गृह प्राप्त करती है तथा उस का पति चिरायु हो जाता है।[1] भागवत पुराण में एक स्थल पर पयोव्रत की विधि का वर्णन करते हुये कहा गया है कि फाल्गुन के शुक्ल पक्ष में बारह दिन तक केवल दूध पी कर रहे और परम भक्ति से भगवान् कमलनयन की पूजा करे। अमावस्या के दिन यदि मिल सके तो सूअर की खोदी हुई मिट्टी से अपना शरीर मल कर नदी में स्नान करे। उस समय यह मन्त्र पढ़ना चाहिये:- हे देवि! प्राणियों को स्थान देने की इच्छा से वराह भगवान् ने रसातल से तुम्हारा उद्धार किया था। तुम्हे मेरा नमस्कार है। तुम मेरे पापों को नष्ट कर दो। इसके बाद अपने नित्य और नैमित्तिक नियमों को पूरा करके एकाग्रचित्त से मूर्ति, वेदी, सूर्य, जल, अग्नि और गुरूदेव के रूप में भगवान् की पूजा करे। गन्ध माला आदि से पूजा करके भगवान् को दूध से स्नान करावे। उसके बाद वस्त्र यज्ञोपवीत, आभूषण पाद्य, आचमन, गन्ध धूप आदि के द्वारा द्वादशाक्षर मन्त्र से भगवान् की पूजा करे। यदि सामर्थ्य हो तो दूध में पकाये हुये तथा घी और गुड़ मिले हुये शालि के चावल का नैवेद्य लगावे और उसी का द्वादशाक्षर मन्त्र से हवन करे। उस नैवेद्य को भगवान् के भक्तों में बांट दे या स्वयं पा ले। आचमन और पूजा के बाद

1- एतच्चरित्वा विधिवद्व्रतंविभो -

एभीप्सितार्थं लभते पुमानिह ।

स्त्री त्वेतदास्थाय लभेत सौभा

श्रियं प्रजां जीवपतिंयशो गृहम् ।।

भागवत पु0, 6/19/25

ताम्बूल निवेदन करे । फाल्गुन शुक्ल प्रतिपद से लेकर त्रयोदशी पर्यन्त ब्रह्मचर्य से रहे, पृथ्वी पर शयन करे और तीनों समय स्नान करे। झूठ न बोले । त्रयोदशी के दिन विधि जानने वाले ब्राह्मणों के द्वारा शास्त्रोक्त विधि से भगवान् विष्णु को पंचामृत स्नान करावे। इसके बाद ज्ञान सम्पन्न आचार्य और ऋत्विजों को वस्त्र आभूषण और गौ आदि देकर सन्तुष्ट करना चाहिये। प्रतिपदा से लेकर त्रयो - दशी तक प्रतिदिन भगवत्कथाओं से भगवान् को पूजा करावे। यह व्रत भगवान् को सन्तुष्ट करने वाला है, इस लिए इसका नाम है सर्वज्ञ और "सर्वव्रत"। यह भगवान् की श्रेष्ठ आराधना है। इस का नाम है "पयोव्रत"। इस से भगवान् प्रसन्न होंगे और अभिलाषा पूर्ण करेंगे[1]।

भागवत पुराण की भाँति हरिवंश में भी कई व्रतों की विधियों का वर्णन है। उमा अरुन्धती से कहती हैं कि तुम्हें अपनी बुद्धि से इस बात को समझ लेना चाहिये कि पुण्यव्रत की विधि सनातन है तुझे महादेव जी की कृपा से उसका दर्शन हुआ है[2]। पुण्यक विधि के विषय में हरिवंश में उल्लेख है कि जो स्त्री इस व्रत को करे वह अपने पैरों को स्वतः धोवे । यदि व्रत के समय में आँख से आँसू गिर गया, यदि रोष और कलह किया गया तो वह स्त्रियों को व्रत के पुण्य से भ्रष्ट कर देता है[3]। उपवास तथा व्रत में श्वेत वस्त्र धारण करना चाहिये

1- भागवत पु0, 8/16

2- सनातनः पुण्यविधिरिति बुद्ध्या वगम्यताम् ।
महादेव प्रसादेन मया दृष्टस्त्वरुन्धति ।। हरि0, 2/78/2

3- स्वयं प्रक्षालनं वापि पादयोर न शङ्कितम् ।
अश्रुप्रपातो रोषश्च कलहश्च कृतः सति ।
उपवासाद् व्रताद् वापि सद्यो भ्रंशयति स्त्रियः, वही, 2/78/25

और साड़ी के भीतर एक दूसरा वस्त्र भी डाल लेना चाहिये।[1] इस व्रत में नारी के लिए काष्ठ का दतौन करना , सिर के ऊपर से स्नान अथवा अङ्गों में उबटन लगवाना वर्जित है। इस प्रकार की शुद्धि के लिये मृत्तिका के ही उपयोग का विधान है।[2] हरिवंश में कृष्णाष्टमी व्रत का उल्लेख करते हुये कहा गया है कि जो पतिव्रता नारी कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि को अपना एक समय का भोजन ब्राह्मण को देकर स्वयं उपवास पूर्वक व्यतीत करती है अथवा उस दिन फल फूल खा कर रहती है श्वेत वस्त्र धारण कर के सदाचार के पालन पूर्वक गुरूजनों तथा देवतावों को पूजा करती है और इस प्रकार एक वर्ष तक इसी नियम का पालन करके अन्त में सुरही गाय के बाल की रस्सी से बनाया हुवा चामर ध्वज तथा दक्षिणा सहित मिष्ठान्न[2] यथा शक्ति ब्राह्मण को देती है उस पति भक्ता नारी के केश कटि प्रदेश के नीचे तक लटककर लहराया करते हैं और उन के आगे के भाग घुंघराले हो जाते हैं।[3] व्रतराज नामक ग्रन्थ में कृष्णाष्टमी नामक व्रत का वर्णन करते हुये ग्रन्थकार ने कहा है कि इस व्रत के प्रभाव से भगवान् लक्ष्मी के पति हुये। जो स्त्री व्रत रहे उसे काष्ठ के दातुन से दन्तधावन करके विधिपूर्वक

1- शुक्लमेव सदा वासः प्रशस्तं चन्द्रसम्भवे ।
   अन्तर्वासोऽपरं चैव उपवासे व्रते तथा ।।   वही, 2/78/26

2- दन्तकाष्ठं शिरः स्नानमुद्वर्तन मथापि वा ।
   विवर्जितं मृदासर्वं सौचार्थे तु विधीयते ।।   हरि0, 2/78/29

3- कृष्णाष्टमी या क्षिपति स्याद्वा फल फलासिनी ।
   ब्राह्मणायैकमशनं स्वं दत्वोर्ध्वदैवता ।।
   शुक्लवस्त्रा शुभाचारा गुरूदैवत पूजका ।
   एवं संवत्सरं कृत्वा ततो दद्यात् द्विजातये ।
   गौवालरज्जुकृतं चामरं च ध्वजं तथा ।
   दक्षिणापूर्णं मिष्ठान्नंशक्त्या चापि शुचिव्रते,
   उर्मिमन्तः स्वरालाग्राः श्रोणिदेशावलम्बिनः ।
   तस्या भवन्ति केशास्तु भक्तिमत्या हि भर्तरि । वही, 2/80/2-3-4-5

स्नान और तर्पण करके घर आकर शंकर भगवान् का पूजन करे। गोमुत्र का विधिपूर्वक प्राशन करके रात को उपवास रहे। इस प्रकार एक वर्ष के बाद भक्ति के साथ उद्यापन करना चाहिये। लिंग तो भद्र मण्डप बनाकर सभी देवताओं का पूजन करना चाहिये । सोने की मूर्ति तथा चाँदी का वृषभ बनवाना चाहिये। फिर भीगे हुये तिल को एक सौ आठ आहुति दे। " ओऽम् त्रयम्बकम् भजामहे"। यह मन्त्र पढ़ना चाहिये। जो इस व्रत के प्रभाव को कहता है या सुनता है वह उस लोक को चला जाता है जहाँ शिव जी विराजते हैं।[1] हरिवंश में द्वादशी व्रत का उल्लेख आया है। इस व्रत के सम्बन्ध में कहा गया है कि जो स्त्री अपने दोनों हाथों को सुन्दर रूप से युक्त देखना चाहती है वह द्वादशी तिथि को सब प्रकार के अन्नादि शाकों द्वारा आहार करके व्यतीत करे। इस प्रकार

1- कृत्वावैश्यं मा पन्ना: सौभाग्यं देववल्लभा: ।।
व्रत स्यास्य प्रभावेण लक्ष्म्या: पतिर भूदरि: ।।4।।
अश्वत्थस्य च काष्ठेन कृत्वा वै दन्तधावनम् ।।
स्नानं कृत्वा तु विधिवत्तर्पणं चैवनारद ।।।4।।
आगत्यभवनं चैव पूजयेच्छंकरं प्रभुम् ।।
गोमुत्रं प्राश्य विधि वदुपवासी भवेन्निशि:।।।5 ।।
उद्यापनं च वर्षान्ते प्रकुर्याद्भक्ति तत्पर: ।।
विरच्य लिंगतो भद्रं पूजयेत्सर्व देवता: ।।29।।
सुवर्ण प्रतिमां तत्र वृषभं रजतस्य च ।।
प्रभाते च पुन: पूज्य अग्नि:स्थापन माचरेत ।।3। ।।
हुनेदष्टशतें चैवत्तिल द्रव्यं धृताप्लुतम ।।32।।
त्रयम्बकेण च मन्त्रेण गौर्याश्चैव पृथक्पृथक ।। 33 ।।
प्रतयास्य प्रभावं य: पठेद्वा श्रृणुयादीप ।।
सयाप्ति परमं स्थानं यत्रदेवो महेश्वर: ।। 41 ।।
द्रष्टव्य, विश्वनाथ शर्मा, वही, पृ0 318-19

एक वर्ष व्यतीत होने पर सुवर्णमय कमल पर दो खिले हुये कमल के फूल रख कर उन सब का सुन्दर एवं सुयोग्य ब्राह्मण को दान करे।[1]

व्रतार्क सटीक में द्वादशी व्रत की विधि के विषय में व्रतार्क के टीकाकार ने लिखा है कि इस महीने में जब पुण्य नक्षत्र हो उसी रात्रि में संयमपूर्वक विष्णु का ध्यान करके सफेद गऊ का गोबर तथा तिल मिला कर एक सौ आठ आहुति दे। उपवास में तत्पर हो द्वादशी को आशा देखे। नदी या तड़ाग में स्नान कर के विष्णु की मूर्ति बनाना चाहिये। तिल पात्र के ऊपर निश्रित नैवेद्य से पूजा करे। नमः परम शान्ताय विरूपाक्ष नमोऽस्तुते । इस मन्त्र से अर्घ दे । इस प्रकार विष्णु की पूजा करके समाहित हो होम करे। महादेव जी कहते हैं कि जो कोई पुरूष या स्त्री इस व्रत को करता हैउसके गोत्र और कीर्ति की वृद्धि होती है और मोक्ष पद प्राप्त होता है।[2]

हरिवंश में एक स्थल पर आया है कि जो पतिव्रता स्त्री गुणवान पुत्रों की इच्छा रखती है वह प्रत्येक सप्तमी को सदा एक समय भोजन करके व्यतीत करे। तत्पश्चात् वर्ष पूर्ण होने पर ब्राह्मण को दक्षिणा सहित एक सुवर्ण मय वृक्ष का दान करे इससे वह शुभ गुणसम्पन्न बान्धवों से युक्त होती है।[3] व्रत चन्द्रिका

1- हस्ताविच्छति या नारी रूप युवती सुमध्यमें ।
   द्वादशीं सा क्षिपत्वेवं शाकैः सर्वैरनिन्दितैः ।।
   संवत्सरे ततः प्राप्ते रोक्मे पद्मे पद्मे ददातु सा।
   ब्राह्मणायाभिरूपाय तथा पद्मद्वयं शुभम् ।। हरि0 2/80/35-36

2- द्रष्टव्य, महेशदत्त त्रिपाठी, व्रतार्क सटीक,पृ0 37।

3- बान्धवान् सगुणानिच्छेदेक भक्तेन नित्यदा ।
   सप्तमीं सप्तमीं नित्यं क्षपेत् स्त्री पतिदेवता ।।
   ततः संवत्सरे पूर्णे वृक्षं दद्याद्धिरण्मयम् ।
   सदक्षिणं ब्राह्मणाय शुभबन्धुमती भवेत् ।। हरि0,2/81/1-2

में भी सप्तमी व्रत का वर्णन है। आदित्य पुराण में सूर्य ने स्वयं कहा है "कि जो मनुष्य बारह मास की प्रत्येक सप्तमी को मेरा व्रत तथा पूजन करके माघ शुक्ल सप्तमी को समाप्त करता है और उस दिन स्नानादि कर सफेद पुष्पों की माला धारण कराकर विष्णु से मुझ को क्षीर का भोग लगाता है तथा हवन कराकर पायस से ब्राह्मण भोजन कराता है उसके घर में पुत्र रूप में मैं स्वयं जन्म लेता हूं, मेरे समान तेजस्वी और आरोग्य पुत्र उत्पन्न होता है।[1]

हरिवंश में एक स्थल पर पूर्णिमा व्रत के सम्बन्ध में वर्णित है कि जो पतिव्रता नारी अपने संपूर्ण शरीर को अत्यन्त मनोहर बनाना चाहती हो, वह रजोदर्शन के अवसर पर तीन रात उपवास करे। वह कार्तिक, आषाढ माघ तथा आश्विन की पूर्णिमा को माता, पिता, अतिथि और देवता का आदर सत्कार एवं पूजन करे। वह पतिव्रता ब्राह्मणों को प्रतिदिन नमक और घी दान करे, नित्य घर में झाड़ू लगावे । यशस्विनी! वह किसी एक शाक का ही भक्षण करे । भामिनि! वह देवताओं के लिए उपहार दे और असत्य न बोले[2] । पूर्णिमा व्रत

1- श्रवण लाल शर्मा, व्रतोत्सव चन्द्रिका पृ0,305

2- सर्वमेव तथा गात्रमिच्छत्यतिमनोहरम् ।
त्रिरात्रं पुष्पकाले सा करोतु पतिदेवता।।
कौमुद्या मघवा षाढ्यां माघ्या वाश्वयुजेतथा।
मातरं पितरं चैव मन्यतेऽतिथिदेवतम् ।।
धृतं च नित्यं विप्रेभ्यो ददातु लवणं तथा ।।
सम्मार्जनं गृहे चैव करोतु पतिदेवता ।।
पर्यश्नातु सा कंचिदपि शाकं यशस्विनि ।
बलिं सृजत्वसत्यं च परित्यजतु भामिनि ।।

हरि0,2/80/48-49-50-52

का उल्लेख व्रतराज में भी हुआ है। व्रतराज में उसे गोपद्म नामक व्रत से अभिहित किया गया है। इस नाम का उल्लेख आलोचित पुराण में नहीं आया है। तपाये हुये सोने की सी चमक वाले गदा पद्म लिये हुये महाकाय चतुर्भुज गरुड के ऊपर विराजमान देव यक्ष, गन्धर्व, किन्नर मुनिगण इनसे सुशोभित हुये भगवान् का ध्यान करके यजन करना चाहिये[1]।

ग्रन्थ में आश्विन की पूर्णिमा व्रत के विषय में कहा गया है कि यह व्रत करने वाला सम्पूर्ण उत्तम लोक को प्राप्त होता है। क्वार महीने की पूर्णिमा कौमुदी कहलाती है उसी में महालक्ष्मी और ऐरावत पर आरूढ़ इन्द्र की आराधना करके उपवास कर भक्ति पूर्वक तिल तैल से दीपक जलावे। विभव के सदृश्य राजमार्ग, देवगृह, आदि में दीपक जलावे। तत्पश्चात् स्नान कर इन्द्र की पूजा करके दुग्ध, घृत, शक्कर, खीर से ब्राह्मणों को भोजन कराके वस्त्र दक्षिणा से सवस्त्र ब्राह्मणों की पूजा करे। यथाशक्ति सोने के दीप का दान करे। इस प्रकार विधि करके पारण करे। इस व्रत के प्रभाव से कल्प भर अप्सराओं सहित स्वर्ग में वास करता है इस संसार में आयु, आरोग्य, पुत्र पौत्र, सम्पत्ति

1- आषाढ़पौर्णमास्यां गोपदव्रतम ।। चतुर्भुजं महाकायं जाम्बूनदसम प्रभम् ।
शंख चक्र कदा पद्मरमागरुड शोभितम् सेवितं मुनिभिर्देवैर्यक्षगान्धर्वकिन्नरैः ।
एवं विधि हरिं ध्यात्वा ततो यजनमारभेत ।व्रतराज पृ. 605

को प्राप्त हो कुलश्रेष्ठ गण का स्वामी होता है।[1] हरिवंश पुराण में उमाव्रत के विषय में कहा गया है कि स्त्रियों के लिए यही सब से उत्तम व्रत है, अतः इस का आचरण अवश्य करे। इस व्रत के लिए विहित यह दान देकर नारी सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त कर लेती है। व्रत के अन्त में सदाभोज्य पदार्थों का दान करना चाहिये। स्त्रियों को अभीष्ट वस्तुओं का भी, जो देश काल के अनुरूप हों, दान करना उचित है। व्रत के जो उपकरण द्रव्य हैं उनका बराबर विभाग कर के प्रत्येक ब्राह्मण को उसे देना चाहिये तथा ब्राह्मणों का इच्छा के अनुसार उन्हें दक्षिणा सहित अन्न का दान करना चाहिये। इस व्रत में खीर का दान करने की भी विधान है। प्राणियों की हिंसा इस व्रत में वर्जित है। यह पुराण में निश्चित रूप से कहा गया श्रुति का सिद्धान्त है।[2] हरिवंश में एक स्थल पर गंगा व्रत के पालन का उल्लेख मिलता है। इस व्रत की महत्ता के विषय में कहा गया है कि गंगा व्रत का पालन करने वाली धर्मज्ञ नारी पितृकुल, मातामह कुल, और पतिकुल को सात-सात- पीढ़ियों का उद्धार कर देती है। गंगाव्रत में

1- द्रष्टव्य , महेशदत्त त्रिपाठी, वही, पृ0 534

2- एतदेवोत्तमं स्त्रीणां व्रतं तस्मात् समाचरेत् ।
सर्वकामानवाप्नोति दत्त्वैवैतदनिन्दिते ।।
व्रतकस्यावसानेऽथदेयं भोज्यं च नित्यदा।
स्त्रीणां कामाः प्रदेयाश्च सदृशाः कालदेशयोः।।
एकैकस्य प्रदातव्यं व्रतकं वरवर्णिनि ।
छन्दतो ब्राह्मणानां तु देयमन्नं सदक्षिणाम् ।।
पायसं तत्र दातव्यं व्रते वै नान्यदिष्यते ।
नात्र प्राणिवधः कार्यः पुराणे नियता श्रुतिः ।।

हरि0, 2/79/36-38-39-40

एक सहस्त्र घड़ों का दान करना चाहिये। यह समस्त कामनाओं का पूरक व्रत दुःख से तारने और मनोरथों की पूर्ति करने वाला है।[1] हरिवंश में यामरथ नामक व्रत का भी वर्णन मिलता है। यमराज की पत्नी ने इस शुभ व्रत का अनुष्ठान किया था। यह व्रत हेमन्त ऋतु में खुले आकाश के नीचे करना चाहिये। व्रत को पूर्ण करके ब्राह्मण से स्वस्तिवाचन कराये तथा उसे मधु और काला तिल से मिश्रित खीर खिलाये।[2]

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि विष्णु पुराण में व्रतों का सन्दर्भमात्र मिलता है। उन के विकास के निदर्शनार्थ स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलते हैं। व्रतों के लिए स्पष्ट उल्लेख एवं इनके विधि-विधानों का न मिलना इस बात का प्रमाण है कि विष्णु पुराण, पौराणिक वाङ्मय की एक प्रारम्भिक रचना है। भागवत पुराण में विष्णु पुराण की अपेक्षा व्रतों का विकसित स्वरूप पाया जाता है। उदाहरणार्थ, "पुंसवन व्रत"। हरिवंश में विष्णु तथा भागवत की अपेक्षा व्रतों की संख्या भी अधिक है और पूर्ण विकसित रूप में वर्णित है। व्रतों में नवीनता लाने के लिये कुछ मन्त्रों को व्रतों के साथ सम्बन्धित किया गया। उदाहरणार्थ- भागवत पुराण में पुंसवन व्रत की विधि में "ओ5म् नमो भगवते महापुरुषाय महाविभूति पतये स्वाहा" मन्त्र बोलकर अग्नि में आहुति देने का विधान है। व्रतराज नाम ग्रन्थ में भी " ओ5म् त्र्यम्बकम भजामहे, मंत्र को पढ़ने

1- सप्त सप्त च सप्ताथ कुलानि हरिवल्लभे ।
स्त्री तारयति धर्मज्ञा गङ्गा व्रतचारिणी ।।
देयं कुम्भ सहस्त्रं तु गङ्गाया व्रत के शुभे ।
तारणं पारणं चैव तद् व्रतं सार्वकामिकम् ।। वही 2/81/28-29

2- यमभार्या चकाराथ व्रतं या मरथं शुभम् ।
हेमन्ते तद् तु कर्तव्यमाकाशे हरिवल्लभे ।
एवं कृत्वा ततो विप्रं मधुना स्वस्ति वाचयेत्,
तिलैरपि तथा कृष्णैः पायसेन तु भोजयेत् ।। हरि0, 2/81 230-35

आलोचित पुराण में निर्दिष्ट व्रतों की सूची

व्रत का विवरण	पुराण विष्णु पुराण सन्दर्भमात्र
उमा व्रत	हरि०, 2/79/36
कृष्णचतुर्दशीव्रत	हरि०,2/80/6
कृष्णाष्टमी व्रत	हरि०,2/78/29
गंगा व्रत	हरि०,2/81/28
दशमी व्रत	हरि०,2/80/30
द्वादशी व्रत	हरि०,2/80/35
द्वितीया व्रत	हरि०,21/16/13
नवमी व्रत	हरि०,2/80/11
प्रतिपदाव्रत	हरि०,2/80/9
पुंसवनव्रत	भागवत पु०, 6/19/25
पुण्यकव्रत	हरि०,2/77/2

व्रत का विवरण	पुराण
पूर्णिमा व्रत	हरि0, 2/80/48
पयोव्रत	भागवत पु0, 8/16
पंचमीव्रत	हरि0,2/80/33
षष्ठी व्रत	हरि0,2/80/44
शुक्लाष्टमीव्रत	हरि0,2/80/24
सप्तमीव्रत	हरि0,2/80/1
त्रयोदशी व्रत	हरि0,2/80/37
यामरथव्रत	हरि0,2/81/30

का उल्लेख है। व्रतार्क सटोक नामक ग्रन्थ में "नम: परम शान्ताय विरूपाक्ष नमोऽस्तुते । सर्व संकष्ट नाशाय गृहा गार्घ नमोस्तुते", मंत्र से अर्घ देने का विधान है।

पुराणों में साम्प्र दायिक भावना का पुट पाया जाता है। पुराण किन्ही न किन्ही देवताओं से सम्बन्धित है। उदाहरणार्थ, शिव से सम्बन्धित शैव पुराण, विष्णु से सम्बन्धित भागवत तथा शक्ति से सम्बन्धित देवी भागवत। इन्हीं पुराणों से शैव, वैष्णव एवं शाक्त सम्प्रदायों का प्रादुर्भाव हुआ। पुराणों की ही भाँति उपपुराणों में भी व्रत तथा पूजा में नवीनता लाने के लिये विभिन्न सम्प्रदायों ने भिन्न -भिन्न साम्प्रदायिक मंत्रों का प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ वैष्णव सम्प्रदाय में व्यवहृत होने वाले निम्नलिखित मंत्र है-
" ओऽम् नमो नारायणाय", "ओऽम् नमो भगवते वासुदेवाय,[1] " ओऽम् नमो रामाय"।[2]

1- द्रष्टव्य ,राजेन्द्र चन्द्र हाजरा, स्टडीज इन उपपुराणाज, भाग 2, पृ0 228

2- वही,पृ0 272

तीर्थ की वैदिक पृष्ठभूमि --- इसमें सन्देह के लिये लवलेश अवकाश नहीं है कि भारतीय संस्कृति धर्म प्रधान है। इसके कलेवर निर्माण में साहित्य और धर्म का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। वैदिक धर्म में यज्ञों की प्रचुरता थी। यज्ञ का प्रारम्भिक रूप जटिल न था पुरोहितों द्वारा देवताओं की स्तुति किये जाने वाले मन्त्र पढ़े जाते थे और हवि के रूप में विविध धान्य अथवा गोरस में निर्मित अन्न पशु-अथवा सोम-रस अर्पित किये जाते थे। क्रमश: अनेक यज्ञों में ऋत्विक के कार्य का चतुर्धा विभाजन दृष्ट होता है। होतानाम का ऋत्विक ऋक्संहिता की ऋचाओं का पाठ करता था। अध्वर्युकर्म का भार सम्हालता था और याजुर्वेद से सम्बद्ध होता था। उद्गाता सामगान करता था और ब्रह्मा समस्त यज्ञ-कर्म का अध्यक्ष होता था। श्रौत यज्ञों को हविर्यज्ञ और सोम इन दो विभागों में बाँटा गया है।[1] तीर्थ वैदिक धर्म की परिधि में शनै:-शनै: प्रवेश पाती रहे थे वैदिक ग्रन्थों में तीर्थ विषयक स्थल कम मिलते हैं। ऋग्वेद में एक स्थल पर "तीर्थ" शब्द मार्ग के अर्थ में वर्णित है।[2] एक दूसरे स्थल पर "तीर्थ" शब्द समुद्र के तट के अर्थ में आया है।[3] कुछ स्थानों पर इस का तात्पर्य नदी का सुतारू [उथला] स्थान है।[4] ऋग्वेद की सुवस्त्वा अतिधनुवानि,

---

1- विशेष विवरण के लिये द्रष्टव्य, जी०सी० पाण्डे, ओरिजिन्स ऑफ बुद्धिज्म, पृ० 274-77, काणे, हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र, जिल्द 2, भाग 2, पृ० 976

2- तीर्थे नारय: पौंस्यानितस्थु: । ऋग्वेद, 1/19/6

3- अरित्रं वां दिवस्पृथु तीर्थे सिन्धूनां रथ: ।
वही, 1/46/8

4- सुतीर्थं भर्वतो यथानु नो नेषथा सुगम् ।
वही, 8/47/11

की व्याख्या में निरूक्त का यह कथन है कि सुवास्तु नदी का वाचक है और तुग्वन "तीर्थ" को कहते हैं।[1] ऋग्वेद के खिल भाग में जो स्पष्टत: ऋग्वेद की अपेक्षा एक परवर्ती रचना है, वर्णित है कि सित {गंगा} असित {यमुना} इन दो नदियों का जहाँ पर संगम है वहाँ पर स्नान करने वाले मनुष्य स्वर्ग लोक को गमन करते हैं और जो लोग वहाँ पर शरीर का विसर्जन करते हैं वे अमृतत्व को प्राप्त करते हैं।[2] ऋग्वेद में तीर्थ शब्द पवित्र स्थान के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है।[3] अथर्व वेद में कहा गया है कि जिस प्रकार तरण तारण करने के साधन नाव आदि से बड़ी -बड़ी बेगवान् नदियाँ तरी जाती हैं उसी प्रकार भवसागर से पार उतरने के साधनभूत अध्यात्म यज्ञ, तप आदि तीर्थों और तपस्वी आदि जंगम तीर्थों द्वारा बड़ी-बड़ी भारी विपत्तियों को भी लोग तैर जाते हैं।[4] तैत्तिरीय संहिता में वर्णित है कि यजमान तीर्थ में स्नान करने से प्रत्यक्ष ही दक्षिणा और तप को प्राप्त करता है।[5] तैत्तिरीय संहिता[6] तथा वाजसनेयि संहिता[7] में रूद्रों को तीर्थों में विचरण करने वाला कहा गया है। शांख्यायन ब्राह्मण में कहा गया है कि रात और दिन समुद्र हैं जो सब को समाहित

1- सुवास्त्वा अधितुग्वनि ।
वही, 8/19/37 पर निरूक्त, 4/15

2- सितासिते सरिते यत्र संगते तत्राप्लुतासो दिवमुत्पतन्ति ।
ये वै तन्वं विसृजन्ति धीरास्ते जनासो अमृत्वं भजन्ते ।। ऋग्वेद खिल, 10/75/1

3-तीर्थेन दस्मापु यन्त्युमा: । वही, 10/31/3

4- अथर्ववेद, 18/4/7

5- अप्सु स्नाति साक्षादेव दीक्षा तपसी अवरून्धे तीर्थे स्नाति ।
तैत्तिरीय संहिता, 6/1/1/1-2

6- वही, 4/5/11/1-2

7- वा0सं0, 16/16

कर लेते हैं और संध्यायें समुद्र के अथाह तीर्थ हैं।[1] तीर्थ उस मार्ग को कहते हैं जो याज्ञिक स्थल से आने जाने के लिये "उत्कट, एवं "चात्वाल" के बीच पड़ता है।[2] शतपथ ब्राह्मण में एक स्थल पर "तीर्थ" शब्द सीढ़ियों के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।[3]

उपर्युक्त वैदिक संहिताओं एवं ब्राह्मण ग्रन्थों में वर्णित तीर्थ शब्द अनेकार्थ द्योतक है। इन में "तीर्थ" शब्द कहीं मार्ग, पवित्र स्नान, तो कहीं सीढ़ियों के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। यह स्पष्ट है कि तीर्थ का तात्पर्य जिस स्थल से था वह स्थल विशेष पवित्र माना जाता था। "तीर्थ" शब्द में पवित्रता का समाहार था, यह दृष्ट होता है, और इसके उत्तरवर्ती ग्रन्थ महाभारत, पुराण आदि में "तीर्थ" शब्द का मौलिक सम्बन्ध वैदिक ग्रन्थों में प्रयुक्त "तीर्थ" शब्द से माना जा सकता है। किन्तु "तीर्थ" शब्द का जो विस्तार पुराणादि ग्रन्थों में मिलता है वह वेदोत्तरवर्ती काल की प्रक्रिया मालूम पड़ती है। इस प्रकार उक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि "तीर्थ" शब्द ऋग्वेद काल से नदी के तट या समीप-स्थ क्षेत्र, पवित्र स्थल या किसी जल अथवा समुद्र के तटीय स्थान के अर्थ में आया है। पवित्र स्थल के अर्थ में प्रयुक्त "तीर्थ" शब्द को जो विस्तार पुराणों में प्राप्य है वह वैदिक वाङ्मय में नहीं दिखाई देता है।

1- शां० ब्रा०, 2/9

2- वही, 18/9

3- श०ब्रा०, 12/2/1/5, 12/2/1/1

वैदिक युग में याज्ञिक अनुष्ठानों को इतना महत्त्व दिया गया था कि इन में तीर्थ यात्रा का विकसित होना सम्भव नहीं था।[1] वैदिक धर्म के उन्नायकों ने अधिक बल यज्ञ पर दिया था। यज्ञ में ही उस युग के धर्म का सब कुछ निहित था। तीर्थ यात्रा गौण रूप में थी। यज्ञों में अनेक उपकरण तथा बहुविध सामग्री की आवश्यकता रहती थी। यज्ञकरने में वही व्यक्ति समर्थ थे जो अर्थ सम्पन्न थे। दरिद्र व्यक्ति के लिये यज्ञ का खर्च सहन करना सम्भव नहीं था। पौराणिक विधान में इस का ठीक उल्टा दिखाई पड़ता है। पौराणिकों ने तीर्थ यात्रा को ही अधिक महत्वपूर्ण बताया है। इस से यही व्यक्त होता है कि पौराणिक धर्म में प्रमुख स्थान तीर्थ यात्रा को मिला था। याज्ञिक क्रियायें इस में समाविष्ट थीं। जहाँ एक ओर वेद विरोधी धर्मों ने जनसमुदाय को अप्रिय लगने वाली याज्ञिक क्रियाओं का खण्डन किया था, उसका उद्देश्य था न केवल याज्ञिक विधियों को मिटाना बल्कि वैदिक धर्म को हटाना। वहीं दूसरी ओर पौराणिकों का लक्ष्य था जनमानस को प्रिय लगने वाले धार्मिक क्रिया कलापों तथा याज्ञिक विधानों में सामंजस्य स्थापित करना[2]।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि पौराणिकों ने यज्ञों का निराकरण करने की चेष्टा नहीं की बल्कि इन का मन्तव्य था लोक धर्म का आचरण करने वाले लोगों को वैदिक धर्म के प्रति श्रद्धालु बनाना जिसके लिये उनके हृदय

1- द्रष्टव्य, काणे, हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र, चतुर्थ भाग, पृष्ठ, 554

2- द्रष्टव्य, सिद्धेश्वरीनारायण राय, पौराणिक धर्म एवं समाज, पृष्ठ 406

में यज्ञों की स्मृति को बनाये रखना आवश्यक था। पुराणों में ऐसे भी उल्लेख मिलते हैं जिनसे ज्ञातव्य है कि पौराणिक धर्म यज्ञों के प्रति श्रद्धालु ही नहीं वरन- इसके द्वारा यज्ञों की व्यवहार शीलता पर भी बल दिया गया है। पुराण सरल संस्कृत भाषा में लिपिबद्ध किये गये हैं जिनमें विवृत धार्मिक विचारों का आचरण जनमानस सरलता से कर सके। लोकमानस आज भी पौराणिक धर्म को श्रद्धा की दृष्टि से देख रहा है तथा प्रस्तुत आचरित धर्म विकास के पथ पर अग्रसर है।

महाभारत तथा पौराणिक साहित्य में तीर्थ महत्ता एवं उसके तात्पर्य सम्बन्धी वर्णन वैदिक वाङ्मय में प्रयुक्त तीर्थ महत्ता एवं उसके अर्थ सम्बन्धी वर्णनों की अपेक्षा अधिक स्पष्ट एवं विकसित रूप में दिखाई पड़ते हैं। महाभारत में एक स्थल पर देव यज्ञों और तीर्थ यात्राओं की तुलनात्मक समीक्षा प्रस्तुत करते हुये कहा गया है कि यज्ञों में बहुत से पात्रों, यन्त्रों संभार संचयन, पुरोहितों का सहयोग पत्नी की उपस्थिति आदि की आवश्यकता होती है। अत: उसका सम्पादन केवल राजकुमारों या धनी लोगों द्वारा ही सम्भव है निर्धनों, विधुरों, असहायों तथा मित्रहीनों द्वारा उनका संपादन सम्भव नहीं। तीर्थयात्रा द्वारा जो पुण्य प्राप्त होता है, वे अग्निष्टोम जैसे यज्ञों द्वारा जिनमें पुरोहितों को अधिक दक्षिणा देनी पड़ती है प्राप्त नहीं हो सकते ।

अतः तीर्थयात्रा यज्ञों से उत्तम है।[1] आलोचित विष्णु पुराण, भागवत तथा हरिवंश में तीर्थ महत्ता विषयक स्थल अधिक संख्या में तो नहीं पाये जाते किन्तु इनमें तीर्थों की संख्या भी कम नहीं है। हरिवंश में विष्णु पुराण से भी अधिक संख्या में तीर्थ पाये जाते हैं। भागवत पुराण में विष्णु पुराण एवं हरिवंश से भी अधिक संख्या में तीर्थों का उल्लेख मिलता है। पूर्व पृष्ठों में इस बात की ओर संकेत किया जा चुका है कि विष्णु पुराण में आख्यानों का स्वरूप संक्षिप्त है उन्हें भागवत तथा हरिवंश में विस्तार मिला है। विष्णु पुराण में तीर्थ महत्ता विषयक स्थल तथा तीर्थों का अधिक संख्या में न मिलना इसकी उत्तरकालीनता का परिचायक है। उपर्युक्त तीनों पुराणों में तीर्थ महत्ता तथा तीर्थ यात्रा सम्बन्धी अन्य बातों के द्योतक स्थलों का वर्णन विस्तार में नहीं मिलता है।

विष्णु पुराण में एक स्थल पर कहा गया है कि गंगा, शतद्रु, यमुना विपाशा, सरस्वती और नैमिषारण्य स्थित गोमती में स्नान करके पितरों का आदर पूर्वक अर्चन करने से मनुष्य समस्त पापों को नष्ट कर देता है।[2]

1- ऋषिभिः क्रतवः प्रोक्ता देवेष्विवयथाक्रमम् ।
फलं चैव यथातथ्यं प्रेत्य चेह च सर्वशः ।
न ते शक्या दरिद्रेण यज्ञाः प्राप्तुं महीपते ।
बहूपकरणा यज्ञा नानासम्भार विस्तराः ।
प्राप्यन्ते पार्थिवैरेतैः समृद्धैर्वानिरैः क्वचित् ।
नार्थन्यूनैर्नविगणैरेकात्मभिरसाधनैः ।
योदरिद्रैरपि विधिः शक्यः प्राप्तुं नरेश्वर ।
तुल्यो यज्ञफलैः पुण्यैस्तं निबोध युधांवर ।
ऋषीणां परमं गुह्यमिदं भरत सत्तम ।
तीर्थाभिगमनं पुण्यं यज्ञैरपि विशिष्यते ।

एक दूसरे स्थल पर पितृगण यह इच्छा व्यक्त करते हैं कि वर्षाकाल में मघा नक्षत्र में तृप्त होकर फिर माघ की अमावस्या को अपने पौत्रादि द्वारा दी गयी पुण्य तीर्थों की जलांजलि से हम कब तृप्ति लाभ करेंगे।[1] अन्यत्र नारायण के निवासस्थान बदरिकाश्रम क्षेत्र को पवित्र तथा सबसे पावन स्थान कहा गया है।[2] प्रयाग, पुष्कर कुरुक्षेत्र तथा समुद्रतट पर रहकर उपवास करने से फल की प्राप्ति होती है।[3] भागवत पुराण में तीर्थ की महत्ता का प्रतिपादन करते हुये बलरामजी की तीर्थ-यात्रा के विषय में कहा गया है कि उन्होंने विष्णु भगवान के क्षेत्र ऋषभपर्वत दक्षिण मथुरा तथा बड़े-बड़े पापों को नष्ट करने वाले सेतुबन्ध की यात्रा की[4]। पुष्कर कुरुक्षेत्र, गया, प्रयाग, पुलहाश्रम, नैमिषारण्य, फाल्गुन क्षेत्र, सेतुबन्ध, प्रभास, द्वारका, काशी, मथुरा, पम्पासर, विन्दुसरोवर, बदरिकाश्रम, अलकानन्द भगवान् सीताराम जी के आश्रम, अयोध्या तथा चित्रकूटादि अत्यन्त पवित्र माने गये हैं। कल्याणकारी मनुष्य को बार बार इन क्षेत्रों का सेवन करना चाहिये और इन स्थानों पर जो पुण्य कर्म किये जाते हैं मनुष्यों को उनका हजार फल मिलता है।[5] आलोचित हरिवंश में एक स्थल पर श्रीकृष्ण और यादव सेना का पुण्यवर्धक पुष्कर तीर्थ में पदार्पण करने का उल्लेख है।[6] मत्स्य पुराण में कहा गया

1- गायन्ति चैतत्पितरः कदानु वर्षामघातृप्तिमवाप्यभूयः ।
माघसितान्ते शुभतीर्थतोयैर्यास्याम तृप्तिं तनयादिदत्तैः ।।
वही, 3/14/19

2- वही, 5/37/34

3- वही, 6/8/29

4- ऋषभाद्रिं हरेः क्षेत्रं दक्षिणां मथुरां तथा ।
सामुद्रं सेतुमगमन्महापातकनाशनम् ।।
भागवत पु०, 10/79/15

5- वही, 7/14/30-33

6- ते दुरत्यर्थं मतुलधर्मन्ते जलदा यथा।
यथाययुर्महाराज पुष्करं पुण्यवर्धनम् ।।

है कि महर्षि तथा देवताओं ने यज्ञ करने पर तो बल दिया है, परन्तु दरिद्र मनुष्य यज्ञ करने में समर्थ नहीं है। यज्ञ में नाना प्रकार के उपकरण तथा सामग्री की आवश्यकता पड़ती है। इसे राजा अथवा धनी व्यक्ति ही सम्पन्न कर सकते हैं। इसी लिये ऋषियों ने तीर्थयात्रा को पुण्ययुक्त एवं यज्ञ की अपेक्षा श्रेष्ठ माना है। दरिद्र भी तीर्थ यात्रा करने में समर्थ है।[1] प्रयाग तीर्थ की यात्रा जो लोग करते हैं उन्हें पग-पग पर अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है।[2] वायु पुराण तथा ब्रह्माण्ड पुराण में वर्णन मिलता है कि सप्तगोवर तथा गोकर्ण नामक तीर्थों में स्नान करने से (ब्रह्माण्ड पुराण के अनुसार दान करने से) अश्वमेध का फल मिलता है।[3] जो मनुष्य काशी में पत्थर के टुकड़ों से पैरों को तोड़ कर प्राण त्याग करता है उसे शिव पद की प्राप्ति होती है।[4] पद्मपुराण आदि खण्ड में वर्णित है कि कलियुग में पाप राशि को नाश करने के लिये तीर्थ यात्रा को छोड़कर दूसरा कोई मार्ग नहीं है। जो तीर्थों में स्नान तथा निवास करता है वह परमधाम निवास करता है।[5] ब्रह्महत्या तथा व्यभिचार से उत्पन्न होने वाले पाप भी तीर्थयात्रा करने से

1- ऋषिभिः क्रतवः प्रोक्ता देवैश्चापि यथा क्रमम् ।
नहि शक्या दरिद्रेण यज्ञाः प्राप्तुं महीपते ।
बहूपकरणा यज्ञानानासंभार विस्तराः।
प्राप्यते पार्थिवैरेतैः समृद्धैर्वानरैः क्वचित् ।
यो दरिद्रैरपि विधिः शक्यः प्राप्तुं नरेश्वर ।
ऋषीणां परमं गुह्यमिदं भरतसत्तम् ।
तीर्थानुगमनं पुण्यं यज्ञेभ्योऽपि विशिष्यते ।
मत्स्य पु०, 112/12/15

2- वही, 108/9

3- सप्तगोदावरे चैव गोकर्णे च तपो वने ।
अश्वमेधफलं तत्र स्नात्वा च लभते नरः । वायु० पु०,77/19
सप्तगोदावरे चैव गोकर्णे च तपोवने ।
अश्वमेध फलं स्नात्वा तत्र दत्वा भवेत्ततः। ब्रह्माण्ड पु०,3/13/19

4- अश्मना चरणौ भित्वा तत्रैव निधनं व्रजेत । मत्स्य पु०,181/23

5- पद्म पु०,आदि०, 40/2

नष्ट हो जाते हैं। इन्द्र को गौतम की धर्मपत्नी के साथ समागम करने का पाप लगा था जिससे मुक्ति के लिये उन्होंने वाराणसी, प्रयाग तथा पुष्कर आदि स्थानों की यात्रा की जहाँ स्नान करने से उनका पाप नष्ट हो गया।[1] वामन पुराण में एक स्थल पर कहा गया है कि जो कुरुक्षेत्र में मर जाते हैं वे पुनः पृथ्वी पर लौटकर नहीं आते हैं।[2]

तीर्थयात्रा के उद्देश्य- विष्णु पुराण में कहा गया है कि द्वारका का दर्शन करने से पापों का नाश हो जाता है।[3] वायु पुराण में आया है- पापकर्म कर लेने पर यदि धीर (दृढ़ संकल्प या बुद्धिमान) श्रद्धावान एवं जितेन्द्रिय व्यक्ति तीर्थयात्रा करने से शुद्ध हो जाता है, तो उसके विषय में कहना ही क्या है।[4] प्रयाग तीर्थ के विषय में मत्स्य पुराण में कहा गया है कि प्रयाग के स्मरण मात्र, नाम संकीर्तन अथवा मृत्तिका के स्पर्श मात्र से मनुष्य सभी पापों से छुटकारा पा जाता है।[5] विष्णुधर्मोत्तर में एक स्थल पर यह वर्णन मिलता है कि जब तीर्थ यात्रा की जाती है तो पापी के पाप कटते हैं, सज्जन की धर्म वृद्धि होती है, सभी वर्गों एवं आश्रमों के लोगों को तीर्थ-फल देता है।[6]

1- वही, भूमि खण्ड, 91/2-10

2- वामन पु0, 33/8/16

3- तदतीव महापुण्यं सर्वपातक नाशनम् । विष्णु पु0, 5/38/11

4- तीर्थान्यनुसरन् धीरः श्रद्धधानो जितेन्द्रियः ।
कृतपापश्च शुद्धयेत किं पुनः शुभकर्मकृत् । वायु पु0, 77/125

5- प्रयागं स्मरणाण्स्य सर्वमायाति संक्षयम् ।
दर्शनात्तस्य तीर्थस्य नाम संकीर्त्तनदपि ।
मृत्तिकालम्भनाद्वाऽपिनरः पापात्प्रमुच्यते । मत्स्य पु0, 104/11-12

6- पापानां पापशमनंधर्मवृद्धिस्तथा सताम् ।
विज्ञेयं सेवितं तीर्थं तस्मातीर्थपरोभवेत् ।।
सर्वेषामेव वर्णानां सर्वाश्रम निवासिनाम् ।
तीर्थफलं प्रदज्ञेयं नात्रकार्या विचारणा ।। विष्णुधर्मोत्तर पु0, 3/273/759

स्वर्ग तथा मोक्ष-लाभ-- स्कन्द पुराण में वर्णित है कि काशी, कांची, माया, अयोध्या, द्वारका, मथुरा और अवन्ति (उज्जैन) ये सात पुरियाँ मोक्ष देने वाली हैं।[1] ब्रह्माण्ड पुराण में कहा गया है कि कनकनन्दी नामक तीर्थ के सेवन मात्र से मनुष्य सशरीर स्वर्ग जाता है।[2] मत्स्य पुराण में वर्णन मिलता है कि अविमुक्त क्षेत्र के सेवन से शंकर का सानिध्य प्राप्त होता है।[3]

उपर्युक्त पौराणिक उद्धरणों से तो तीर्थों की महत्ता का अनुमान लगाया ही जा सकता है, परन्तु अन्य ग्रन्थों के समविषयक स्थल भी इनका समर्थन करते हैं। उदाहरणार्थ, विष्णु स्मृतियोंमें तीर्थों को पापियों के शुद्धीकरण का कारण घोषित किया गया है।[4] महाभारत में वर्णित है कि तीर्थ स्नान के कारण मनुष्य जन्म बन्धन से मुक्त हो जाता है।[5]

1- काशी, कांची च मायाख्या त्वयोध्या द्वारवत्यपि ।
मथुरावन्तिका चैता: सप्तपुर्योऽत्र मोक्षदा: ।।
स्कन्द पु0, काशी, पूर्व, 6/68

2- तत्रस्नात्वा दिवं यान्ति स्वशरीरेण मानवा:। ब्रह्माण्ड पु0, 1/13/114

3- सर्वतीर्थाभिषिक्तश्च स प्रपद्यते माहिम । मत्स्य पु0, 183/18

4- अश्वमेधेन शुद्धेयुर्म महापातकिनस्त्वमें ।
पृथिव्यां सर्वतीर्थानां तथा नुसरणेन च । विष्णु स्मृति, 35/6

5- नवे योनौ प्रजायन्ते स्नाततीर्थे महात्मन: । वनपर्व, 82/31

तीर्थों की संख्या- तीर्थों की संख्या के सम्बन्ध में बड़ा मतभेद पाया जाता है। पद्म पुराण के अनुसार तीर्थों की संख्या तीन करोड़ पचास लाख बतलाई गई है।[1] मत्स्य पुराण में वर्णित है कि तीर्थों की संख्या साठ करोड़ दश हजार है।[2] परन्तु मत्स्य पुराण ने वायु पुराण के उद्धरण देते हुये इनकी संख्या तीन करोड़ पचास लाख बतलाई है।[3] ब्रह्म पुराण में एक स्थल पर विवेचित है कि तीर्थों की संख्या इतनी अधिक है कि सौ वर्षों में भी उनकी कोई गिनने में समर्थ नहीं है।[4] महाभारत में कहा गया है कि पृथ्वी पर नैमिष और अन्तरिक्ष में पुष्कर तीर्थ हैं और दशसहस्त्र कोटि तीर्थ पुष्कर में पाये जाते हैं।[5]

तीर्थों का विभाजन-- ब्रह्म पुराण में तीर्थों को चार श्रेणियों में विभक्त[6] किया गया है (1) देव, (2) आसुर, (3) आर्ष, (4) मानुष । आसुर तीर्थ वह है जिसका संबंध किसी असुर= जैसे गय = से हो। ऋषियों द्वारा प्रतिष्ठापित तीर्थ को आर्ष कहा जाता है। जैसे प्रभाष तथा नैमिषारण्य । मानुष तीर्थ उन्हें

1- तिस: कोटयोऽर्धकोटी:च,तीर्थानां वयुर ब्रवीत ।
दिविभुम्यन्तरिक्षे च तानितेसन्ति जाह्नवी ।।
पद्म पु0.सृष्टि,20/150,पाताल,89/16/23

2- दशतीर्थ सहस्त्राणि षष्टिकोट्यस्तथापरा। मत्स्य पु0, 106/23

3- तिस: कोटयो अर्धकोटीश्च तीर्थानां वायुर ब्रवीत ।
दिवि,भुवि, अन्तरिक्षे च तत्सर्व जाह्नवी स्मृता ।।
मत्स्य पु0,110/7

4- तस्मात,श्रृणुस्व, वक्ष्यामि तीर्थान्याय तानि च ।
विस्तरेण न शक्यन्ते वक्तुं वर्ष शतैरपि ।। ब्रह्म पु0,25/7-8

5- वनपर्व,83/202

6- चतुर्विधानि तीर्थानि स्वर्गे,मर्त्यैरसातले ।
देवानि मुनि शार्दूल आसुराण्यारूषाणि च ।
मानुषाणि त्रिलोकेषु विख्यातानि सुरादिभि:
ब्रह्म पु0,70/6/18

कहा जाता है जिन की प्रतिष्ठा किसी राजा= जैसे अम्बरीष, मनु तथा कुरू ने की हो। इन श्रेणियों में उत्तर: वाद:के: को अपेक्षा पूर्व वर्णित विभाजन श्रेष्ठ है।[1] ब्रह्म पुराण में वर्णन मिलता है कि देव, असुर, आर्ष तथा मानुष तीर्थ क्रमशः कृतयुग, सतयुग, द्वापर, त्रेता तथा कलियुग नामक युगों से संबन्धित हैं।[2]

तीर्थयात्रा के अधिकार-- पद्मपुराण के अनुसार स्त्री के साथ ही पुरूष तीर्थ यात्रा का अधिकारी माना जाता है।[3] भूमिखण्ड में कृकल की कथा वर्णित है। कृकल ने अपनी सती साध्वी स्त्री के बिना ही तीर्थ यात्रा की थी। अत: उसे इस का फल नहीं हुआ। मत्स्य पुराण में वर्णित है कि पति के साथ स्त्री को तीर्थ-स्नान का अधिकार है।[4] अविमुक्त क्षेत्र में शिवोपासना करती हुयीं स्त्रियां परमगति को प्राप्त करती हैं।[5] महाभारत के वनपर्व में कहा गया है कि जो स्त्री या पुरूष एक बार भी पवित्र पुष्कर में स्नान करता है वह जन्म से किये गये पापों से मुक्त हो जाता है।[6] उसी ग्रन्थ में यह भी वर्णित है कि वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र जो तीर्थ में स्नान कर लेते हैं, जन्म बन्धन से मुक्त हो जाते हैं।[7] वामन पुराण में यह उल्लेख है कि ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यासी तीर्थ स्थानों में स्नान करने से अपने कुल की सात पीढ़ियों को तारता है। इस के अतिरिक्त

1- काणे, वही, भाग 4, पृ0 567

2- ब्रह्म पु0, 1/75/31-32

3- भार्या विनाहि योधर्म: स एव विफलो भवेत । पद्मपु0, भूमि खण्ड, 59/32

4- यस्यपुत्रा स्नुषा भार्यापापाय स्नापयेन्तथा । मत्स्य पु0, 106/6

5- स्त्रिय: पतिव्रता याश्च भवभक्ता: समाहिता:।
अविमुक्ते विमुक्तास्ता यास्यन्ति परमांगतिम् ।। वही, 184/35

6- जन्म प्रभृति यत्पापं स्त्रियां ..... पुष्करे स्नातमात्रस्य प्राणस्यति ।
वनपर्व, 82/33-34

7- ब्राह्मणा: क्षत्रिया वैश्या: शूद्रा: वा राजसत्तम ।
न वै यो नो प्रजायन्ते स्नातास्तीर्थे । वही, 82/30/31

चारों वर्णों के लोग तथा स्त्रियां भी तीर्थ यात्रा कर के परमपद को प्राप्त कर सकती हैं।[1]

तीर्थफल के लिये भावना शुद्धि एवं संयम की मुख्यता- महाभारत में एक स्थल पर कहा गया है कि जिस के हाथ पैर, मन, भली भांति संयमित हैं और जो विद्या, तप तथा कीर्ति से सम्पन्न है, जो प्रतिग्रह का त्यागी, तथा लाभ संतुष्ट तथा अहंकार से छूटा हुआ है, जो दम्भरहित, आरम्भरहित लघ्वाहारी जितेन्द्रिय तथा सर्वसंगों से मुक्त है, जो क्रोध रहित निर्मल मति सत्यवादी तथा दृढ़ व्रती है और समस्त प्राणियों को अपने आत्मा के समान देखता है, वह तीर्थ का फल प्राप्त करता है।[2] पापी, संशयात्मा, परलोक में अनास्था रखने वाले ईश्वर की स्थिति में संदेह करने वाले तथा तार्किक, इन पांच प्रकार के लोगों को तीर्थों का फल नहीं मिलता।[3] प्रयाग की महिमा का वर्णन करते हुये मत्स्य पुराण में वर्णित है कि जो तत्व ज्ञानी मनुष्य गंगा यमुना के संगम में सत्यनिष्ठ होकर, अहिंसाव्रती होकर, क्रोध पर

1- ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा।
कुलानि तारयेत् स्नातः सप्त सप्त च सप्त च ।।
ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्याः स्त्रियः शूद्राश्च तत्पराः ।
तीर्थ स्नाताः भक्तियुताः पश्यन्ति परमं पदम् ।। वायु पु0, 36/78/79

2- यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम् ।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफल मश्नुते ।।
परिग्रहादुपावृत्तः सन्तुष्टो येन केन चित् ।
अहंकार निवृत्तश्च सतीर्थफल मश्नुते ।
अकल्ककोनिरारम्भो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः ।
विमुक्तः सर्वपापेभ्यः स तीर्थ फल मश्नुते ।
अक्रोधनश्च राजेन्द्र सत्यशीलो दृढव्रतः।
आत्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थफल मश्नुते । वनपर्व, 82/9-12

विजय प्राप्त कर, तथा गाय और ब्राह्मण के हित में आचरण करते हुये स्नान करता है वह पापों से मुक्त हो जाता है।[1]

तीर्थ में तर्पण- आलोचित भागवत पुराण में एक स्थल पर बलराम जी की तीर्थ यात्रा के सन्दर्भ में कहा गया है कि उन्होंने प्रभास क्षेत्र में स्नान किया और तर्पण तथा ब्राह्मण भोजन के द्वारा देवता, ऋषि, पितर और मनुष्यों को तृप्त किया।[2] भागवत पुराण में एक दूसरे स्थल पर वर्णित है कि बलराम जी सरयू के किनारे चलते-चलते प्रयाग आये और स्नान तथा देवता, ऋषि एवं पितरों का तर्पण करके वहाँ से पुलह आश्रम गये।[3]

तपस्या- वायु और ब्रह्माण्ड पुराणों में आया है कि तीर्थों में जप, हवन एवं तपस्या से अनन्त फल की प्राप्ति होती है।[4] वायु पुराण में एक दूसरे स्थल पर कहा गया है कि अमर कण्टक में अंगिरा ने भीष्म तपस्या की थी।[5] मत्स्य पुराण का कथन है कि यम ने गोकर्ण तीर्थ में रागविहीन होकर घोर तपस्या की थी।[6] आलोचित हरिवंश में पुष्कर तीर्थ में विष्णु द्वारा घोर तपस्या करने का उल्लेख है।[7]

1- सत्यवादी जित क्रोधोह्यहिंसायां व्यवस्थित: ।
धर्मानुसारी तत्वज्ञो गो ब्राह्मण हिते रत: । मत्स्य पु0, 104/16

2- स्नात्वाप्रभासे सन्तर्प्य देवर्षि पितृमानवान् । भागवत पु0, 10/78/18

3- अनुश्रोतेन सरयूं प्रयाग मुपगम्यस: ।
स्नात्वा सन्तर्प्य देवादीन जगाम पुलहाश्रमम् ।। वही, 10/79/10

4- श्राद्धवानन्त्य मेतेषु जाप्यं होमतपांसि च । वायु0पु0, 77/53; ब्रह्माण्ड पु0, 3/13/1

5- तप: सुदुश्चरं तेपे भगवान् गिरा: पुरा । वायु0 पु0, 77/5

6- गोकर्ण तीर्थे वैराग्यात्फल पत्रानिलाशन: । मत्स्य पु0, 11/18

7- आत्मन्यात्मानामाधाय तपसा ब्रह्म सम्भव: ।
हरि0, 3/28/3

श्राद्ध - वायु पुराण[1] में वर्णित है कि गया में श्राद्ध करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। एक दूसरे स्थल पर कहा गया है कि प्रेत पर्वत पर एकाग्र मन होकर सपिण्डों के लिये श्राद्ध करना चाहिये।[2] ब्रह्मेश्वर नामक तीर्थ के विषय में मत्स्य पुराण का कथन है कि यहाँ पूर्णिमा तथा अमावस्या को विधिपूर्वक श्राद्ध सम्पन्न करना चाहिये।[3] आलोचित विष्णु पुराण में एक स्थल पर कहा गया है कि पितृगण अपने वंश में उत्पन्न लोगों से गया में पिण्डदान की आशा लगाये रहते हैं।[4] आलोचित हरिवंश में सात ब्राह्मणों को अधर्म में परायण होने पर भी कुरुक्षेत्र में श्राद्ध करने का वर्णन मिलता है।[5] पुराणों के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों में भी श्राद्धीय उपयोगिता से सम्बन्धित स्थल प्राप्त होते हैं विष्णु धर्मसूत्र का कथन है कि पितृगण इस के लिये आशा लगाये रहते हैं कि उनके पुत्र गया में श्राद्ध

1- ब्रह्म ज्ञानं गया श्राद्धं गोगृहे मरणं तथा ।
वासः पुंसा कुरुक्षेत्रे मुक्तिरेषा चतुर्विधा ।।
ब्रम ज्ञानेन किंकार्यंगोगृह मरणेन किं ।
वसेन किं कुरुक्षेत्रे यदि पुत्रो गयां व्रजेत । वायु पु0, 105/14-15

2- कुर्याच्छ्राद्धं सपिण्डानां प्रयतः प्रेतपर्वते । वही, 110/9

3- ततो गच्छेतु राजेन्द्र ब्रह्मतीर्थ मनुत्तमम ।
अमोहकमिति ख्यातं पितृश्चैव तर्पयेत ।
पौर्णमास्या मयां तु श्राद्धं कुर्याद्यथा विधि । मत्स्य पु0, 104/105

4- अपिनस्ते भविष्यन्ति कुले सन्मार्ग शीलिनः ।
गयामुपेत्य ये पिण्डान्दास्यन्त्यस्माकमादरात् ।। विष्णु पु0 3/16/18

5- ततोऽहं तानधर्मिष्ठान कुरुक्षेत्रे पितृव्रतान् ।
सनत्कुमार निर्दिष्टानपश्यं सप्तवै द्विजान् ।।
दिव्येन चक्षुषा तेन यानुवाच पुरा विभुः ।। हरि0, 1/214 $\frac{1}{2}$

सम्पन्न करें।[1] विष्णु स्मृति में आया है कि पुष्कर में किये गये श्राद्ध का नाश कभी नहीं होता है।[2]

दान-- वायु पुराण में वर्णित है कि गया में वैतरणी में स्नान कर गोदान करने वाला व्यक्ति अपने इक्कीस कुलों का उद्धार करता है।[3] गया में पुत्रों के द्वारा पितरों के लिये किया गया अन्नदान महत्वपूर्ण माना गया है।[4] विष्णु पुराण का कथन है कि गया में नील वृषभ का दान करना अत्यन्त कल्याणकारी है।[5] मत्स्य पुराण के अनुसार गंगा-यमुना के संगम पर गव्य, सुवर्ण, मणि तथा मुक्ता का दान करने से तीर्थवास सफल हो जाता है।[6] भागवत पुराण में एक स्थल पर बलराम जी द्वारा सेतु बन्ध में दस हजार गौयें दान करने का उल्लेख है।[7] पुराणों के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों में श्राद्ध के समान दान विषयक स्थल भी प्राप्त होते हैं। प्रयाग के विषय में महाभारत में वर्णन आया है कि यहां का अल्प दान भी महान् होता है।[8] पपितृगण को कामना रहती है कि उनके पुत्र गया में

1- अपि जायेत सोऽस्माकं कुले कश्चिन्नरोत्तमः ।
गया शीर्षे ....श्राद्धं योन: कुर्यात् । विष्णुधर्म सूत्र, 85/66

2- अथपुष्करेस्व क्षयं श्राद्धम् । विष्णु स्मृति, 85/1

3- स्नातो गोदो वैतरण्यां त्रिः सप्तकुल मुद्धरेत । वायु पु0, 112/26

4- गयां यास्यति यः पुत्रः सनस्त्राता भविष्यति ।
गयां गत्वान्नदाता यः पुत्र स्तेन पुत्रिणः ।। वायु पु0, 105/9-10

5- नीलं वा वृषभमुत्सृजेत । विष्णु पु0, 3/16/20

6- मत्स्य पु0, 105/13/14

7- यत्रा युत मदाद् धेनू ब्रीह्मणेभ्यो हलायुधः । भागवत पु0, 10/79/16

8- तत्र दत्तं स्वल्पमपि महद् भवति भारत । वनपर्व, 85/82

नील वर्णा वृषभ का दान करें, ऐसा उल्लेख विष्णु स्मृति में मिलता है।[1]

यज्ञ- वायु पुराण में गया में वर्तमान् भस्मकूट तीर्थ में वशिष्ट द्वारा अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न करने का उल्लेख है।[2] वायु और ब्रह्माण्ड पुराणों में वर्णित है कि कश्यप का अश्वमेध यज्ञ पुष्कर में सम्पन्न हुआ था।[3] विष्णु पुराण के अनुसार गया में दक्षिणा सहित विधिवत अश्वमेध यज्ञ करने से पितरों को प्रसन्नता होती है।[4] भागवत पुराण में एक स्थल पर कहा गया है कि बलराम जी ने नैमिषारण्य में यज्ञ सम्पन्न किया था।[5] विष्णुस्मृति में पुत्रों द्वारा गया में अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न करना पितरों की कामना मानी गई है।[6]

यात्राविधि- वायु पुराण में कहा गया है कि गया यात्रा के अवसर पर कर्पटी का वेश धारण कर पहले अपने ग्राम की प्रदक्षिणा करनी चाहिए। उसके बाद दूसरे ग्राम में पहुँच कर श्राद्ध से बचे हुये अन्न का भोजन करना चाहिये। इस के पश्चात् दान न लेते प्रतिदिन यात्रा करनी चाहिये।[7] पद्म पुराण में वर्णित

1- नीलं वा वृषभुत्सृजेत् । विष्णु स्मृति, 85/67

2- भस्मकूटे······ इष्टिं चक्रेऽश्वमेधाख्यं वसिष्ठो मुनिः सप्तमः ।
वायु पु०, 112/65-66

3- कश्यपस्याश्वमेधोऽभूत् पुण्यो वै पुष्करे पुरा । वायु पु०, 67/53

4- यजेत वाश्वमेधेन विधिवद्दक्षिणा वता । विष्णु पु०, 3/16/20

5- तं पुनर्नैमिषं प्राप्त मृषयोऽजाजयनमुदा । भागवत पु०, 10/79/30

6- यजेत वाश्वमेधेन ·····। विष्णु स्मृति, 85/67

7- गया यात्रां प्रवक्ष्यामि शृणु नारद मुक्ति दाम् ।
विधाय, कर्पटीवेषं कृत्वा ग्रामं प्रदक्षिणम् ।
ततो ग्रामान्तरं गत्वा श्राद्धशेषस्य भोजनम् ।
ततः प्रतिदिनं गच्छेत्प्रतिग्रह विवर्जितः ।। वायु पु०, 110/1-3

है कि मनुष्य को चाहिये कि सर्वप्रथम स्त्री, पुत्र तथा कुटुम्ब में विराग, उदासीनता उत्पन्न करे। सदा पैरों से ही चल कर तीर्थ यात्रा करे। किसी सवारी से तीर्थ-यात्रा करने पर समान फल की प्राप्ति नहीं होती है। जूता पहन कर जाने से तीर्थ यात्रा का चौथाई अंश फल प्राप्त होता है, परन्तु बैलगाड़ी पर चढ़कर जाने से गोहत्या का पाप लगता है।[1] मत्स्यपुराण में प्रयाग तीर्थयात्रा में वृषभ वाहन का निषेध किया गया है।[2] तीर्थयात्री के वेष भूषा के सम्बन्ध में पद्म पुराण में वर्णित है कि उसे मृगचर्म पहिनना तथा दण्ड और कमण्डलु धारण करना चाहिये।[3] विष्णु धर्मोत्तर के अनुसार पैदल तीर्थ यात्रा करने से सर्वोच्च तप का फल मिलता है। यदि यान पर यात्रा की जाती है तो केवल स्नान का फल मिलता है।[4] भागवत पुराण में बलराम जी के द्वारा प्रयाग, सेतबन्धु तथा गोकर्ण आदि तीर्थों की पैदल तीर्थ यात्रा करने का उल्लेख है।[5]

विशिष्ट तीर्थ विवरण-- प्रयाग - मत्स्य पुराण के अनुसार पृथ्वी पर तीर्थों की संख्या साठ करोड़ दस सहस्त्र बतलाई गयी है। उन सब का सान्निध्य प्रयाग तीर्थ में है।[6] पद्म पुराण का कथन है कि सात जन्मों में अर्जित ब्रह्महत्यादि

1- पदाचारी गतिं कुर्यात् तीर्थे प्रतिमहोदयम् ।
यानेन गच्छन् पुरूषः समभागफलं लभेत ।
उपानद्भ्यां चतुर्थांशं गोयानो गोबधादिकम् । पद्म पु0, पाताल खण्ड, 19/26-27

2- प्रयाग तीर्थयात्रार्थी यः प्रयातिनरः क्वचित् ।
बलीवर्दसमारूढ़ः.....नरके वसते घोरे । मत्स्य पु0, 106/4-5

3- पद्म पु0, 19/22

4- तीर्थानुसरणं पद्भ्यां तपः परमिहाच्यते ।
तदेव कृत्वा यानेन स्नान मात्रफलं लभेत । विष्णुधर्मोत्तर पु0, 3/73/11

5- भागवत पु0, 10/69

6- दशतीर्थसहस्त्राणि षष्टिकोट्यस्तथापराः ।
तेषां सान्निध्यमत्रैव ततस्तु कुरूनन्दन ।।
मत्स्य पु0, 106/23

पाप इस तीर्थ के दर्शन के मात्र से नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य प्रयाग में देह त्याग करते हैं वे निश्चय ही विष्णु लोक को प्राप्त करते हैं।[1] संगम की महिमा के विषय में वर्णित है कि जो मनुष्य यहाँ पर स्नान करता है उसे राजसूय और अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है। योग युक्त विद्वान को जो गति होती है उसी गति को गंगा और यमुना के संगम में अपने प्राणों का परित्याग करने वाला मनुष्य प्राप्त करता है।[2] महाभारत में कहा गया है कि माघ के महीने में प्रयाग तीन करोड़ दस सहस्त्र तीर्थों का संगम बनता है। इस पर्व पर प्रयाग में स्नान करने से मनुष्य पाप से छुटकारा प्राप्त कर स्वर्ग में निवास करता है।[3] कालिदास विरचित रघुवंश में ऐसा उल्लेख मिलता है कि गंगा यमुना के संगम पर अभिषेक करने से मनुष्य पवित्र होकर तत्व ज्ञान के बिना भी शरीर बन्धन से छूट जाते हैं।[4]

प्रयाग के उपतीर्थ- प्रयाग के अन्तर्गत बहुत से उपतीर्थ आते हैं, जिनमें वट (अक्षयवट) विशेषतया उल्लेखनीय है। अग्नि पुराण में वर्णित है कि जो व्यक्ति वट के मूल में या संगम में मृत्यु को प्राप्त होता है वह विष्णु के नगर में पहुँचता है।[5]

1- ब्रह्महत्यादि पापानि सप्त जन्मार्जितान्यपि ।
दर्शनादस्य तीर्थस्य विनाशं यान्तु तत्क्षणात् ।। पद्म पु०, उत्तर खण्ड, 93/19

2- तत्राभिषेकं यः कुर्यात् संगमे संशित व्रतः ।
तुल्यं फल मवाप्नोति राजसूयाऽश्वमेधयोः ।। वही, आदि खण्ड, 43/24

3- दशतीर्थ सहस्त्राणि तिस्रः कोट्यस्तथापराः ।
समागच्छन्ति माघ्यां तु प्रयागे भरतर्षभ ।।
माघ मासं प्रयागे तु नियतः संशितव्रतः ।
स्नात्वा तु भरतश्रेष्ठ निर्मलः स्वर्गमाप्नुयात् ।। अनुशासन पर्व, 25/36-38

4- समुद्रपत्न्योर्जलसन्निपाते पूतात्मनामत्र किलाभिषेकात् ।
तत्वाव बोधेन बिनापिभूयस्तनुत्यजां नास्ति शरीर बन्धः ।। रघुवंश, 13/17

5- अग्नि पु०, 111/13

इसके उपतीर्थों का वर्णन मत्स्य पुराण[1] में प्राप्त होता है, जिस की सूची निम्नांकित है- §1§ अग्नि तीर्थ, §मत्स्य पु0, 108/27; कूर्म पु0, 1/39/4; पद्म पु0, आदिखण्ड, 45/27§, §2§ उर्वशीपुलिन, §मत्स्य पु0, 106/34-42; पद्मपु0, आदिखण्ड, 43/34-43; अग्नि पु0, 111/14, §3§ कंबलाश्वतर-आवास, §वनपर्व, 85/77, मत्स्य पु0, 106/27, पद्म पु0 आदिखण्ड, 39/69; अग्नि पु0 111/5§ §4§ कोटि तीर्थ, §मत्स्य पु0, 106/44, अग्नि पु0, 111/14, पद्म पु0 आदिखण्ड, 43/44§ §5§ दशाश्वमेधिक §वनपर्व, 85/77, मत्स्य पु0, 106/46, पद्म पु0, 39/80§ §6§ निरंजन, §मत्स्य पु0, 108/29-30§ §7§ पंचकुण्ड, §मत्स्य पु0, 104/16§ §8§ प्रतिष्ठान §वनपर्व, 85/114, मत्स्य पु0, 106/30§ §9§ भोगवती, §वनपर्व, 85/77, मत्स्य पु0, 106/46, पद्म पु0, आदिखण्ड, 39/79§ §10§ वासुकि ह्रद, §मत्स्य पु0, 104/5§ §11§ वेणीमाधव §मत्स्य पु0, 111/1§ §12§ सन्ध्यावट, §मत्स्य पु0, 106/43, अग्नि पु0, 111/13§ §13§ हंसप्रपतन §मत्स्य पु0 106/32, पद्म पु0 आदिखण्ड, 39/80, अग्नि पु0, 111/10 § ।

वाराणसी- मत्स्य पुराण का कथन है कि इस तीर्थ में दान, यज्ञ एवं जलाभिषेक करने से शिव का दर्शन होता है।[2] मत्स्य पुराण में एक दूसरे स्थल पर

1- द्रष्टव्य, सिद्धेश्वरी नारायण राय, पौराणिक धर्म एवं समाज, पृ0, 136

2- सर्वदानानि यो दद्यात्सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ।
सर्वतीर्थाभिषिक्तश्च सम्प्रपद्यते माहिम ।। मत्स्य पु0, 183/18

कहा गया है कि वाराणसी प्रयाग की अपेक्षा श्रेष्ठ है।[1] इसी प्रसंग में वर्णित है कि नमिष, कुरुक्षेत्र, गंगाद्वार एवं पुष्कर तीर्थों के सेवन करने से मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती, परन्तु यह तीर्थ मोक्ष दायक है।[2] काशी के महात्म्य के संबंध में स्कन्द पुराण में वर्णित है कि जो पृथ्वी पर होने पर भी पृथ्वी से सम्बद्ध नहीं है, अधः स्थित (नीचे होने पर भी) स्वर्गादि लोकों से भी अधिक प्रतिष्ठित एवं उच्चतर है, सांसारिक सीमाओं से आबद्ध होने पर भी सभी का बन्धन काटने वाली मोक्ष दायिनी है, सदा त्रिलोक पावनी भगवती भागीरथी के तट पर सुशोभित तथा देवताओं से सुसेवित है, वह त्रिपुरारि भगवान् विश्वनाथ की राज नगरी सम्पूर्ण जगत को नष्ट होने से बचाये।[3] पद्मपुराण में काशी की महिमा का वर्णन निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया गया है- सांख्य योग के पढ़ने तथा व्रत करने से वह गति नहीं प्राप्त होती जो काशी में निवास करने से मिलती है।

1- प्रयागादपि तीर्थाग्र्यादि दमेव महत्स्मृतम् । वही, 180/57

2- नैमिषेऽथ कुरुक्षेत्रे गंगा द्वारे च पुष्करे ।
स्नानात्संसेविताऽपि न मोक्षः प्राप्यतेयतः ।। वही, 180/55

3- भूमिष्ठापि नयात्र भूस्त्रिदिवतोऽप्युच्चैरधः स्थापिया ।
या बद्धाभुवि मुक्तिया स्युरमृतं यस्यामृता जन्वतः ।
या नित्यं त्रिजगत्पवित्र तटिनी तीरे सुरैः सेव्यते ।
सा काशी त्रिपुरारि राजनगरी पायायपायाज्जगत् ।।
स्कन्द पु0, काशी खण्ड, 1/1

जो लोग काशी में निवास करने वाले हैं उन्हें, काम, क्रोध, मद, लोभ आदि छू तक नहीं सकते[1]। वाराणसी महातीर्थ में स्नान करने से मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। सात जन्म के किये हुये पाप काशी के दर्शन मात्र से ही लुप्त हो जाते हैं। वाराणसी में जिस का निधन हो जाता है वह निःसन्देह मोक्ष प्राप्त करता है[2]। काशी को प्रयाग से सौगुना पुण्यदायक कहा गया है[3]। महाभारत में काशी की महत्ता का प्रतिपादन करते हुये कहा गया है कि इस क्षेत्र के दर्शन मात्र से ब्रह्म हत्या से छुटकारा मिल जाता है।[4]

वाराणसी के अन्य नाम-- वाराणसी के अतिरिक्त इस तीर्थ को काशी अविमुक्त तथा श्मशान नाम से अभिहित किया गया है। अविमुक्त के विषय में कहा गया है कि यह नाम इस लिये दिया गया है क्योंकि यहाँ शिव सर्वदा विराजमान रहते हैं[5]। वाराणसी की व्युत्पत्ति के विषय में वर्णित है कि यह वरुणा और असी नामक दो धाराओं के बीच में है, जिन के द्वारा क्रम से इसकी उत्तरी

1- पद्म पु0, उत्तरखण्ड, 235/38-44

2- वारणस्यां महातीर्थे नरः स्नातो विमुच्यते ।
सप्त जन्म कृतात् पापात् दर्शनादेव मुच्यते ।
ये तत्र पंचतांयान्ति मोक्षं यान्ति न संशयः ।
वही, सृष्टि खण्ड, 14/198-199, 208

3- वही, उत्तर0 203/49

4- अविमुक्तं समासाद्य तीर्थ सेवी कुरुद्वह ।
दर्शनाद्देवदेवस्य मुच्यते ब्रह्महत्यया। वनपर्व, 84/79

5- तत्क्षेत्रं न मया मुक्तं विमुक्तं ततः स्मृतम् । मत्स्य पु0, 181/15

एवं दक्षिणी सीमाओं का निर्माण होता है।[1] शिव का यह निवास स्थान श्मशान के नाम से भी प्रसिद्ध है।[2] इसे श्मशान नाम इसलिये दिया गया है क्यों कि यह स्थान परम गुह्य है[3] तथा इस के चारों ओर भूत प्रेत, पिशाच एवं मातृकाओं का निवास रहता है।[4]

उपतीर्थ- वाराणसी के निम्नलिखित उप तीर्थ है- दशाश्वमेध, लोलार्क, केशव, विन्दु माधव तथा मणिकर्णिका। मत्स्य पुराण का कथन है कि इन्ही तीर्थों के साथ अविमुक्त का वर्णन किया जाता है।[5] पद्म पुराण[6] में काशी क्षेत्र के अनेक उपतीर्थों का वर्णन मिलता है जिनमें निम्नलिखित विशेषतया उल्लेखनीय हैं- ओंकारेश्वर लिंग, कृत्ति वासेश्वर लिंग, विश्वेश्वर-लिंग, त्रिलोचन महादेव, लोलार्क कुण्ड, लोलार्क शिव, शुक्रेश्वर लिंग, भूतेश्वर लिंग कपर्दीश्वर लिंग, केदारनाथ, संकट मोचन, पिशाच मोचन, कपाल मोचन, मध्येश्वर महादेव, विन्दुमाधव। इन उपतीर्थों के अतिरिक्त पंचगंगा, मणिकर्णिका, दशाश्वमेध तथा केदारघाट भी प्रसिद्ध तथा पावन स्थान माने जाते हैं।

1- वरणाऽसी नदी यावत्तावच्छुष्कनदी तु वै । वही, 183/19

2- श्मशानमिति विख्यातम विमुक्तं शिवालयम् । वही, 184/8

3- परं गुह्यं समाख्यातं श्मशानमिति संज्ञितम् । वही, 184/5

4- भूतप्रेत पिशाचाश्च गणाः मातृगणास्तथा ।
श्मशानिक परीवाराः प्रियास्तस्य महात्मनः ।। वही, 184/12

5- वही, 185/65-68

6- पद्मपुराण आदि० अध्याय, 33-36

गया- वायु पुराण में कहा गया है कि गया सभी देशों में सभी तीर्थों की अपेक्षा प्रधान है।[1] मत्स्य पुराण में वर्णित है कि गया पितरों का तीर्थ है। यह शुभ क्षेत्र सभी तीर्थों की अपेक्षा श्रेष्ठ है।[2] पद्मपुराण में गया में पिण्डदान का बड़ा महत्त्व बतलाया गया है। यहाँ फल्गुन नदी में स्नान करने से अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है।[3] बहुत से पुत्रों की मनुष्य को इसलिए कामना करनी चाहिए कि उनमें से कोई एक गया हो आये अथवा पिता को सद्गति के लिये नीले रंग का साँड़ छोड़ दे।[4] गया तीर्थ की महत्ता का प्रतिपादन करते हुये महाभारत में कहा गया है कि गया जाकर ब्रह्मचर्य पालन पूर्वक एकाग्र चित्त हो मनुष्य अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है, वहाँ अक्षयवट है जो तीनों लोकों में विख्यात है। उसके समीप पितरों के लिए दिया हुआ सब कुछ अक्षय हो जाता है। वहाँ महानदी में स्नान करके जो देवताओं और पितरों का तर्पण करता है, वह अक्षय लोकों को प्राप्त होता है तथा अपने कुल का उद्धार कर देता है।[5]

1- गया तीर्थं सर्वदेशे तीर्थेभ्योप्यधिकं शृणु । वायु पु0, 104/4

2- पितृ तीर्थं गयानाम सर्व तीर्थ वरं शुभम्। मत्स्य पु0, 22/24

3- पद्म पु0, आदिखण्ड, 38/18

4- एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत ।
यजेत वाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत ।। पद्म पु0, 38/17

5- ततो गयां समासाद्य ब्रह्मचारी समाहितः ।
अश्वमेधमवाप्नोति/गमनादेव कुलं चैव भारत ।।
यत्राक्षय्यवटो नाम त्रिषुलोकेषु विश्रुतः ।
पितृणां तत्र वै दत्तं मक्षयं भवति प्रभो ।।
महानद्यामुपस्पृश्य तर्पयेत पितृदेवताः ।
अक्षयानाप्नुयाल्लोकान कुलं चैव समुद्धरेत ।। महाभारत, वन पर्व, 84/82-84

गया के उपतीर्थ- वायु पुराण में गया में निम्नांकित उप तीर्थों का वर्णन मिलता है- विष्णु पद, गयाशिर, विरजगिरि, नाभिकूप मुण्डपृष्ठाद्रि, प्रभासगिरि, शिलांगु, प्रतशिला, रामतीर्थ, बटेश्वर, रुक्मिणी कुण्ड, शूलक्षेत्र आदि।[1] पद्म पुराण[2] में गया के सैकड़ों उपतीर्थों का उल्लेख किया गया है जिनमें निम्नलिखित विशेषतया उल्लेखनीय हैं- ब्रह्मसर, धेनुक, फल्गुन, मणिनाग, अहल्याह्रद, विनशन, मंङ्की, कर्मदा, विशाला, महेश्वरी, पुष्करिणी, वटेश्वरपुर, गोविन्द तीर्थ आदि ।

मथुरा- आलोचित विष्णु पुराण का कथन है कि मधुरा (मथुरा) की ख्याति पहले मधुवन के नाम से थी । इस का कारण यह है यहाँ मधु नामक दैत्य रहता था यहीं पर शत्रुघ्न ने लवण नामक दैत्य का बध कर मधुरा (मथुरा) नामक पुरी बसाई थी।[3] इसी से मिलता जुलता वर्णन वायु पुराण में भी मिलता है।[4] इसकी धार्मिक प्रसिद्धि का वर्णन करते हुये विष्णु पुराण में कहा गया है कि यहाँ विष्णु का सानिध्य सदैव रहता है। पाप की शांति के लिए ध्रुव ने इसी तीर्थ में तपस्या की थी।[5] अन्यत्र वर्णन मिलता है कि ज्येष्ठ शुक्ल द्वादशी को मथुरा के

1- विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य, सिद्धेश्वरी नारायण राय पौराणिक धर्म एवं समाज, पृ0 142

2- पद्म पु0, आदि, खण्ड, अध्याय 38

3-पुनश्च मधुर्नाम्नेन दैत्येनाधिष्ठितंयतः ।
ततो मधुवनं नाम्ना ख्यातमत्र महीतले ।
हत्वा च लवणं रक्षो मधुपुत्रं महाबलम् ।
शत्रुघ्नो मधुरां नामपुरीं यत्रचकार वै । विष्णु पु0, 1/12/3-4

4- माधवं लवणं हत्वा गत्वा मधुवनं च तत् ।
शत्रुघ्नेन पुरी तस्य मथुरा तत्र सन्निवेशिता । वायु पु0, 88/185

5- यत्र वै देव देवस्य सानिध्यं हरिमेधसः ।
सर्वपापहरे तस्मिंस्तपस्तीर्थे चकार सः । विष्णु पु0, 1/12/5

यमुना जल में स्नान कर हरि दर्शन से महान् फल मिलता है।[1] वराह पुराण में भगवान् ने स्वयं कहा है-पृथ्वी, पाताल, अन्तरिक्ष तथा भूलोक में मुझे मथुरा के समान कोई प्रिय (तीर्थ) नहीं है। यह अत्यन्त रम्य, प्रशस्त मेरी जन्मभूमि है।[2] हजार वर्ष काशी में वास करने पर जो फल प्राप्त होता है, वह मथुरा में एक क्षण वास करने से मिलता है।[3] उपर्युक्त पुराणों के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों में भी मथुरा की महानता को व्यक्त करने वाले स्थल प्राप्त होते हैं। रामायण का कथन है कि शत्रुघ्न को मथुरा को सम्पन्न बनाने में बारह वर्ष लगे थे।[4] पद्मपुराण में कहा गया है कि मथुरा में यमुना मोक्ष दायिनी है।[5]

कुरुक्षेत्र- विष्णु पुराण में कहा गया है कि नृप संवरण के पुत्र कुरु ने धर्म क्षेत्रीय कुरु क्षेत्र की स्थापना की थी।[6] एक दूसरे स्थल पर यह वर्णन मिलता है कि जो कुरु क्षेत्र में उपवास करते हैं उन्हें फल की प्राप्ति होती है।[7] मत्स्य पुराण

1- यज्जेष्ठ शुक्ल द्वादश्यां स्नात्वावैयमुना जले ।
मथुरायां हरिं दृष्ट्वा प्राप्नोति पुरुषः फलम् । वही, 6/8/3।

2- नविद्यते च पाताले नान्तरिक्षे न मानुषे ।
समानं मथुराया हि प्रियं मम वसुन्धरे ।
सारम्या च सुशस्ता च जन्मभूमिस्तथा मम । वराह पु0, 152/8-9

3- पूर्ण वर्ष सहस्त्रं तु वाराणस्यां हि यत् फलम् ।
तत् फलं लभते देवि मथुरायां क्षणेन हि ।। वही, 152 /15

4- रामायण, उत्तरकाण्ड, 70/6-9

5- पद्म पु0, आदिखण्ड, 29/46-47

6- संवरणात्कुरुः य इदं धर्मक्षेत्रं चकार। विष्णु पु0, 4/19/76-77

7- प्रयागे पुष्करे चैव कुरु क्षेत्रे ····· कृतोपवासः । वही, 6/8/29

का कथन है कि कुरुक्षेत्र तीनों लोकों में सर्वोत्कृष्ट तीर्थ है।[1] वामन पुराण में वर्णित है कि कुरुक्षेत्र की पवित्र भूमि में दर्शन से द्विज श्रेष्ठ। सर्व पाप नष्ट हो जाते हैं और परमपद प्राप्त होता है।[2] जिस ने कहीं और पाप किये हैं और पंच-पापों से दूषित हैं, इस तीर्थ में स्नान कर के वह मुक्त हो जाता है और उसे परम गति मिलती है।[3] समय बीत जाने पर ग्रह, नक्षत्र, तारों का भी पतन हो जाता है परन्तु कुरुक्षेत्र में मरने वाले मनुष्य का पतन नहीं होता।[4] महाभारत में इसके धार्मिक गौरव की महत्ता के निम्न लिखित शब्दों में व्यक्त किया गया है- मैं कुरुक्षेत्र जाऊँगा, मैं कुरुक्षेत्र में निवास करूँगा, जो इस प्रकार कहता रहता है, वह सारे पापों से मुक्त हो जाता है।[5]

1- त्रयाणामपि लोकानां कुरु क्षेत्रं विशिष्यते । मत्स्य पु०,
109/3; 22/18

2- कुरुक्षेत्रे पुण्यतमे कुरुक्षेत्रं द्विजोत्तमा: ।
तं दृष्ट्वा मुक्तपापस्तु परं पदमवाप्नुयात । वामन पु० 41/20

3- अन्यत्र कृतपापाये पंचपातक दूषिता:।
अस्मिंतीर्थे नरा: स्नाताकृता यान्तु परांगतिम् ।। वही, 41/19

4- ग्रह नक्षत्र ताराणां कालेन पतनाद्भयम् ।
कुरुक्षेत्रमृतानां च पतनं नैव विद्यते । वही, 34/16

5- ततो गच्छेत् राजेन्द्र कुरुक्षेत्रमभिष्टुतम् ।
पापेभ्यो विप्रमुच्यन्ते तद्गता: सर्वजन्तव: ।।

वनपर्व, 83x1-2

पुष्कर- विष्णु पुराण पुष्कर क्षेत्र में वास करने वाले के धार्मिक कृत्यों में उपवास का ओर संकेत करता है।[1] वायु पुराण का कथन है कि पुष्कर में किया गया श्राद्ध और तपस्या महान् फल देने वाले होते हैं।[2] पद्म पुराण में कहा गया है कि जब तक संसार में पर्वत विद्यमान हैं, समुद्र की स्थिति है, तब तक पुष्कर क्षेत्र में मरने वाले व्यक्ति ब्रह्मलोक में निवास करते हैं।[3] दस हजार करोड़ तीर्थों का जो फल होता है वह फल पुष्कर के केवल दर्शन मात्र से ही होता है।[4] पुष्कर को तीर्थ में आदि प्रधान तीर्थ कहा गया है।[5] महाभारत में वर्णित है कि प्राचीन काल में ऋषियों के साथ देवताओं ने सिद्ध प्राप्त की थी मनीषियों का कथन है कि पितर और देवताओं की पूजा में तल्लीन होकर जो मनुष्य यहाँ स्नान करता है, उसे अश्वमेध का दशगुना फल मिलता है।[6]

1- प्रयागे पुष्करे चैव कुरुक्षेत्रे तथार्णवे ।
कृतोपवासः प्राप्नोति ....। विष्णु पु0, 6/2/29

2- पुष्करेष्व क्षयं श्राद्धं तपश्चैव महाफलम् । वायु पु0, 77/40

3- यावत् तिष्ठन्ति गिरयो यावत तिष्ठन्ति सागराः ।
यावत् पुष्कर मृत्यूनां ब्रह्मलोकेन संशयः ।।
पद्म पु0, सृष्टि खण्ड, 29/236-37

4- दशकोटि सहस्त्राणि तीर्थानां वै महीतले।
पुष्करा लोकना देवनरः प्राप्नोति तत्फलम् ।। वही, 29/235

5- पद्म पु0, वही, 19/42

6- पुष्करेषु महाभागदेवाः सर्षिगणाः पुरासिद्धिसमभिसंप्राप्ताः
पुण्येन महतान्विताः। तत्राभिषेकं यः कुर्यात्पितृदेवार्चनेरतः ।
अश्वमेधाद्दशगुणं फलं प्राहुर्मनीषिणः। वनपर्व॰83/26-27

द्वारका- विष्णु पुराण के अनुसार श्रीकृष्ण ने समुद्र से बारह योजन भूमि माग कर द्वारिका पुरी का निर्माण किया था।[1] द्वारका की महत्ता का प्रतिपादन करते हुये इस पुराण में एक दूसरे स्थल पर कहा गया है कि मेरे छोड़ देने पर सम्पूर्ण द्वारका को समुद्र जल में डुबो देगा, मुझ से भयभीत होने के कारण मेरे राज प्रसाद को जिस में मै भक्तों की हित कामना से सदा निवास करता हूँ।[2] मत्स्यपुराण में द्वारका कृष्ण तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध है।[3] महाभारत तथा अन्य पुराणों में भी द्वारका विषयक वर्णन प्राप्त होते हैं। मौसलपर्व में कहा गया है कि श्रीकृष्ण के देहावसान के पश्चात् समुद्र ने द्वारका को डुबो दिया था।[4] स्कन्द पुराण के अनुसार द्वारका के प्रभाव से कीट पतंग, पशु पक्षी तथा सर्प आदि योनियों में पड़े हुये समस्त पापी भी मुक्त हो जाते है, फिर प्रतिदिन जो द्वारका में रहते हैं

1- इति संचित्य गोविन्दो योजनानां महोदधिम् ।
   ययाचे द्वादश पुरीं द्वारकां तत्र निर्ममे ।

विष्णु पु0, 5/23/13

2- द्वारकां च मया त्यक्तां समुद्रः प्लावयिष्यति
   मद्वेश्म चैकं मुक्त्वा तु भयान्मत्तो जलाशये । वही, 5/37-36

3- द्वारका कृष्ण तीर्थं च तथार्बुदसरस्वती ।

मत्स्य पु0, 22/38

4- मौसल पर्व, 6/23-24

और जितेन्द्रिय होकर भगवान श्रीकृष्ण की सेवा में उत्साह पूर्वक लगे रहते हैं, उनके विषय में तो कहना ही क्या है। द्वारका में रहने वाले समस्त प्राणियों को जो गति प्राप्त होती है, वह उर्ध्वरेता मुनियों को भी दुर्लभ है। द्वारकावासी का दर्शन और स्पर्श करके भी मनुष्य बड़े-बड़े पापों से मुक्त हो स्वर्ग लोक में निवास करते हैं। वायु द्वारा उड़ाई हुई द्वारका की धूलि पापियों को मुक्ति देने वाली कही गई है।

1- अपि कीट पतंगाद्या: पशवोऽथसरीसृपा: ।
विमुक्ता: पापिन: सर्वे द्वारका: प्रभावत: ।।
किंपुन मनिवानित्यं द्वारकायां वसन्ति ये ।
या गति: सर्वजन्तूनां द्वारकापुरवासिनाम् ।
सागतिर्दुर्लभानूनं मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् ।।
स्कन्द पु0, प्रभास खण्ड,37/7-9,25,26

2- द्वारका वासिनं द्रष्टवा चैव विशेषत: ।
महापाप विनिर्मुक्ता: स्वर्ग लोके वसन्तिते ।।
पांसवो द्वारकाया वै वायुना समुदीरित: ।
पापिनां मुक्तया: प्रोक्ता: किं पुनर्द्वारिकाभुवि ।।
वही, 35/7-8,25,26

अन्य तीर्थों की तुलनात्मक तालिका

तीर्थनाम	आलोचित पुराण	अन्य ग्रन्थ
अश्वतीर्थ	विष्णु पुराण, 4/7/15	वनपर्व, 95/3, मत्स्य पु0, 194/3 पद्म
अलकनन्दा	विष्णु पुराण, 2/2/36	वायु पुराण, 41/18
नैमिष या नैमिषारण्य	विष्णु पुराण, 3/14/18	वनपर्व, 84/59-64, मत्स्य पु0, 109/3
प्रभास	विष्णु पुराण 5/21/25	वनपर्व, 28/58, वायु पु0, 77/40
पिण्डारक	विष्णु पुराण, 5/37/6	वनर्प, 82/65-67, मत्स्य पुराण, 13/48
प्रतिष्ठान	विष्णु पुराण, 4/7/16	वनपर्व, 85/76, मत्स्य पु0, 12/18
बदर्याश्रम (बदरिकाश्रम)	विष्णु पुराण, 5/37/34	मत्स्यपुराण, 201/24
मधुवन	विष्णु पुराण, 1/12/2	वनपर्व, 1/12
शालग्राम	विष्णु पुराण, 2/1/24	वनपर्व, 84/123-128

तीर्थ नाम	आलोचित पुराण	अन्य ग्रन्थ
अघमर्षण	भागवत पुराण, 6/4/20	
अयोध्या	भागवत पुराण, 7/14/32	वनपर्व, 60/24/25, वायु पुराण, 88/20
अग्नि	भागवत पुराण, 3/1/22	मत्स्य पुराण, 108/28, पद्म पु0, 1/45/47
असित	भागवत पुराण, 3/1/22	वनपर्व, 89/11-12
अनन्त शयन	भागवत पुराण, 10/79/14	पद्मपुराण, 6/110/8
अलकनन्दा	भागवत पुराण, 4/6/24	
उशना	भागवत पुराण, 3/1/22	
कलापग्राम	भागवत पुराण, 10/87/7	वायु पुराण, 99/431, ब्राह्माण्ड पुराण, 3/74/250
गोकर्ण	भागवत पुराण, 10/82/1-2	वनपर्व, 85/24, मत्स्य पुराण, 22/38, वायु पुराण 77/19
गौ	भागवत पुराण, 3/1/22	
गुह	भागवत पुराण, 3/1/22	

तीर्थ का नाम	आलोचित पुराण	अन्य ग्रन्थ
गंगासागर	भागवत पुराण, 10/79/11	मत्स्य पुराण, 22/11, विष्णु धर्मसूत्र, 85/28
चित्रकूट	भागवत पुराण, 7/14/32	रामायण, 2/55/9, मत्स्य पुराण, 13/39
चक्र	भागवत पुराण, 10/78/19	ब्रह्म पुराण, 68/1
नैमिषारण्य	भागवत पुराण, 10/78/30	-
नारायणसर	भागवत पुराण, 6/5/3-25	-
नरनारायण आश्रम	भागवत पुराण, 7/14/32	वनपर्व, 145/26-34
पंचाप्सरस	भागवत पुराण, 10×79/18	-
प्रभास	भागवत पुराण, 7/14/31	-
पम्पासर	भागवत पुराण, 7/14/31	-
पिण्डारक	भागवत पुराण, 11/1/11	-
पृथूदक	भागवत पुराण, 10/78/19	-
पूर्ववाहिनी	भागवत पुराण, 10/78/19	-
प्रतिष्ठान	भागवत पुराण, 19/1/42	-
पृथु	भागवत पुराण, 3/1/22	-

तीर्थ नाम	आलोचित पुराण	अन्य ग्रन्थ
फाल्गुन	भागवत पुराण, 7/14/31	-
ब्रह्मतीर्थ	भागवत पुराण, 10/78/19	-
विन्दु सरोवर	भागवत पुराण, 7/14/31	-
बदर आश्रम (बद्रिकाश्रम)	भागवत पुराण, 7/11/6	-
बिन्दुसर	भागवत पुराण 7/78/19	-
भृगुकच्छ	भागवत पुराण 8/18/31	-
मधुवन	भागवत पुराण, 4/8/82	-
मनु	भागवत पुराण, 3/1/22	-
वायु	भागवत पुराण, 3/1/22	वनपर्व, 89/11-12
वैंकटाचल	भागवत पुराण, 10/79/14	रामायण, 6/280/18
विष्णुकाँची	भागवत पुराण, 10/79/14	पद्मपुराण, 6/204/30
विशाल	भागवत पुराण, 10/79/19	वनपर्व, 19/25, पद्मपुराण, 1/38/33
श्राद्धदेव	भागवत पुराण, 3/1/22	-

तीर्थ नाम	आलोचित पुराण	अन्य ग्रन्थ
शिवकाँची	भागवत पुराण, 10/19/14	पद्मपुराण, 6/204/57
शूर्पारिक	भागवत पुराण, 10/79/40	वनपर्व, 85/43
श्रीरंग	भागवत पुराण, 10/19/14	मत्स्य पुराण, 22/44, पद्मपुराण, 6/280/19
शालग्राम	भागवत पुराण, 7/14/30	वनपर्व, 84/123/128
शम्याप्रास	भागवत पुराण, 1/7/2	-
सीता राम आश्रम	भागवत पुराण, 7/14/32	-
सुदास	भागवत पुराण, 3/1/22	-
सिद्धपद	भागवत पुराण, 3/23/31	-
सेतुबन्ध	भागवत पुराण, 7/14/31	-
सुदर्शन	भागवत पुराण, 10·78/19	-
सरस्वती	भागवत पुराण, 10/78/19	वनपर्व, 130/1-2
त्रितकूप	भागवत पुराण, 10/78/19	-
त्रित	भागवत पुराण, 10/78/19	-

तीर्थ नाम	आलोचित पुराण	अन्य ग्रन्थ
कनखल	हरिवंश, 2/109/37	-
कनकपिंगल	हरिवंश, 2/109/38	-
कपाल मोचन	हरिवंश, 2/109/37	-
कोकामुख	हरिवंश, 2/109/40	-
गोमत	हरिवंश, 2/29/11	-
गंगोदभेद	हरिवंश, 2/109/40	-
गंगद्वार	हरिवंश, 2/109/37	-
गंगा	हरिवंश, 3/109/35	-
गंगासागर	हरिवंश, 2/109/40	-
गौतमाश्रम	हरिवंश, 2/109/36	-
चन्द्रवट	हरिवंश, 2/109/39	-
तपोद	हरिवंश, 2/109/39	-

तीर्थ नाम	आलोचित पुराण	अन्य ग्रन्थ
दशाश्वमेधिक	हरिवंश, 2/109/39	-
नारायण आश्रम	हरिवंश, 2/109/39	-
नैमिषारण्य	हरिवंश, 2/109/35	-
परसुराम कुण्ड	हरिवंश, 2/109/36	-
प्रभास	हरिवंश, 2/109/35	-
फाल्गुन	हरिवंश, 2/109/39	-
ब्रह्मतीर्थ	हरिवंश, 2/109/42	-
बदरिकाश्रम	हरिवंश, 3/76/35-36	-
मरु	हरिवंश, 3/27/27	-
मधुवन	हरिवंश, 3/27/23	-
योगमार्ग	हरिवंश, 2/109x42	-

तीर्थ का नाम	आलोचित पुराण	अन्य ग्रन्थ
रामतीर्थ	हरिवंश, 2/109/36	-
विनशन	हरिवंश, 2/109×36	-
श्रीकण्ठ	हरिवंश, 2/109/36	-
श्वेतद्वीप	हरिवंश, 2/109/42	-
शापमोचन	हरिवंश, 2/109/43	-
शूर्पारक	हरिवंश, 2/39/29-31	-
सोमोत्थान	हरिवंश, 2/109/37	-
सुवर्ण विन्दु	हरिवंश, 2/109/38	-
सूकर	हरिवंश, 2/109/42	नारदीय पुराण, 240/31, पद्मपुराण, 6/121/6-7

पूर्व पृष्ठांकित तालिका से स्पष्ट होता है कि इस में कुछ ऐसे तीर्थ हैं, जिनका वर्णन तीनों पुराणों में मिलता है और कुछ का दो ही में तथा कुछ एक ऐसे भी हैं जो एक ही पुराण में पाये गये हैं। जिन तीर्थों का वर्णन, विष्णु पुराण, भागवत पुराण और हरिवंश में मिलता है वे निम्नांकित हैं- नैमिषारण्य, प्रभास, तथा बदरिकाश्रम। नैमिषारण्य तथा प्रतिष्ठान का उल्लेख मत्स्य पुराण में और प्रभास का वायु पुराण में हुआ है। प्रभास का वर्णन विष्णु पुराण, भागवत पुराण, तथा हरिवंश में मिलता है। महाभारत के वनपर्व में इस तीर्थ का निरूपण इस की प्रसिद्धता का कारण है। जिन तीर्थों का वर्णन विष्णु और भागवत पुराण में है, वे हैं- अलकनन्दा, पिण्डारक, प्रतिष्ठान, तथा शालग्राम। पिण्डारक तथा प्रतिष्ठान का क्रमशः महाभारत तथा मत्स्य पुराण में प्रसंग मिलता है। जिन तीर्थों का वर्णन भागवत और हरिवंश में मिलता है वे इस प्रकार हैं- गंगासागर, ब्रह्मतीर्थ, फाल्गुन तथा शूर्पारक। अश्वतीर्थ का वर्णन केवल विष्णु पुराण में मिलता है। अघमर्षण, अयोध्या, अग्नि, असित, अनन्तशयन, उशना, कलापग्राम, कामाक्षी, गोकर्ण, गौ, गुह, वायु, वेंकटाचल, विष्णु कांची, विशाल, श्राद्ध देव, शिव कांची, श्रीरंग, शम्याप्रास, सीताराम आश्रम, सुदास सिद्धपद, सेतुबन्ध, सुदर्शन, सरस्वती चित्रकूट, ऋकवट, ऋक्, नारायणसर, पंचाप्सरस, पम्पासर, पृथूदक, पूर्ववाहिनी, पृथु, बिन्दुसर, विन्दुसरोवर, भृगुकच्छ, मनु, त्रित, त्रितकूप केवल भागवत पुराण में उपलब्ध हैं। कनखल, कनक पिंगल, कपालमोचन, कोकामुख, गोमंत, गंगोदभेद, गंगाद्वार, गंगा, गौतमाश्रम,

मरु योगमार्ग, रामतीर्थ, विनशन, श्रीकण्ठ, श्वेत द्वीप शापमोचन, चन्द्रवट, दशाश्वमेधिक, तपोद, परशुराम कुण्ड, सोमोत्थान, सुवर्ण बिन्दु, सूकर केवल हरिवंश में वर्णित है। गंगासागर, चित्रकूट, कलापग्राम, वेंकटाचल, तथा कामाक्षी का उल्लेख क्रमशः विष्णुधर्मसूत्र, रामायण, ब्रह्माण्ड पुराण तथा नारदीय पुराण में, अग्नि कपाल मोचन, विशाल, शिवकांची, और श्रीरंग का पद्मपुराण में, अश्व, अयोध्या, गोमंत, कनखल, कपालमोचन, कोकामुख गंगाद्वार, गोकर्ण, पिण्डारक, प्रतिष्ठान और विन्दुसार का वनपर्व में, तथा इसी प्रकार सूकर का नारदीय पुराण में उल्लेख प्राप्त होता है ।

सहायक शोध ग्रन्थ सूची

मूलभूत प्राचीन भारतीय ग्रन्थ

अग्नि पुराण - पंचानन तर्करत्न द्वारा संपादित तथा बंगवासी प्रेस कलकत्ता द्वारा प्रकाशित ।

अथर्ववेद - आर. रॉथ तथा डब्ल्यू०डी० ह्विटनी द्वारा संपादित
सायण भाष्य सहित, संपा० विश्वबन्धु आदि,
विश्वेश्वरानन्द वैदिक रिसर्च इन्स्टीट्यूट होशियारपुर
1960 ।

अमरकोष- डी० झलकीकर द्वारा संपादित बंबई, 1907 ।

अहिर्बुध्न्यसंहिता- एम० डी० रामानुजाचार्य द्वारा संपादित
अड्यार मद्रास, 1916 ।

आपस्तंब श्रौतसूत्र - धूर्तस्वामि भाष्य, संपा० पं०ए० चिन्ना स्वामी शास्त्री,
ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, 1955 ।

आश्वलायन गृह्यसूत्र- संपादक, विनायक गणेश आप्टे,
आनन्दाश्रम प्रेस, 1937 ई० ।

आश्वलायन श्रौत सूत्र - डा0 रघुवीर, शोध संस्थान, लाहौर 1935 ।

उत्तरगीता, गौडपाद-भाष्य-सहित- भवानी विलास प्रेस द्वारा संपादित श्रीरंगम्, वि0सं0, 1926 ।

उत्तररामचरित - पी0वी0 काणे द्वारा संपादित, बम्बई, 1929 ।

ऐतरेय ब्राह्मण- हरिनारायण आप्टे द्वारा संपादित एवं प्रकाशित ।

ऋग्वेद- सायण भाष्य सहित-मैक्समूलर, लंदन, आक्सफोर्ड, 1892, संपादक विश्वबन्धु, व्याख्याकार वेंकटमाधव तथा मुद्गल वृत्ति, सायण भाष्य के आधार पर, होशियारपुर, 1965।

ऋग्वेद संहिता- सातवलेकर, स्वाध्याय मंडल, पारडी, सूरत, 1957, सायण भाष्य सहित खण्ड 5, वैदिक संशोधन मंडल पूना, 1972 ।

कथासरित्सागर- दुर्गाप्रसाद द्वारा संपादित, बंबई, 1920 ।

कादम्बरी- मथुरानाथ शास्त्री द्वारा संपादित, निर्णय सागर प्रेस, बंबई, 1942 ।

कामसूत्र - दुर्गाप्रसाद द्वारा संपादित बंबई ।

काव्य प्रकाश- हरदत्तशर्मा द्वारा संपादित, बड़ौदा, 1917 ।

कूर्मपुराण- पंचानन तर्करत्न द्वारा संपादित, तथा वंगवासी प्रेस द्वारा प्रकाशित, कलकत्ता वि०सं० 1332

कठोपनिषद्- व्याख्याकार, आर०आर० शर्मा और मालती शर्मा, भारतीय विद्या प्रकाशन, 1889, व्याख्याकार स्वामी सर्वानन्द, श्री रामकृष्ण, मद्रास, 1975 ।

कौटिल्य-अर्थशास्त्र- आर०शाम० शास्त्री द्वारा संपादित, मैसूर, 1924 ।

कौशातकि ब्राह्मण, उपनिषद्- राधाकृष्णन, मौर हेड लाइब्रेरी, रस्किन हाउस लंदन, 1953 ।

कृष्णोपनिषद्- निर्णय सागर प्रेस तृतीय संस्करण, 1925 ।

गौतमधर्मसूत्र- हरिनारायण आप्टे द्वारा संपादित, पूना, 1910 ।

छान्दोग्य उपनिषद्- हरिनारायण आप्टे द्वारा संपादित, आनंदाश्रम संस्कृत सिरीज, पूना, 1913 ।

जयाख्य संहिता- एंबर कृष्णामचार्य, द्वारा संपादित, गायकवाड ओरियण्टल सिरीज, भाग 14, बड़ौदा, 1931 ।

जातक- वी० फासबल, द्वारा संपादित, लंदन, 1877-97

तैत्तिरीय आरण्यक- सायण-भाष्य सहित- हरिनारायण आप्टे द्वारा प्रकाशित पूना, 1898, सायण भाष्य सहित, संपादक राजेन्द्र लाल मित्र, कलकत्ता, 1871, आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रंथावली, ग्रंथांक 36, पूना, 1927 ।

तैत्तिरीय संहिता- कलकत्ता, 1854 ।

तैत्तिरीय उपनिषद्- मणिलाल इच्छाराम देसाई, कार्टसायुन बिल्डिंग नं0 8 बंबई ।

दिव्यावदान- कावेल द्वारा संपादित ।

देवीभागवत- कमलकृष्ण स्मृतिभूषण द्वारा संपादित, बिब्लोथेका इण्डिका, कलकत्ता, 1903 ।

देव्युपनिषद्- निर्णयसागर प्रेस बंबई, तृतीय सं0, 1925 ।

नारद पंचरात्र- अनु0, हरिप्रसन्न चटर्जी, इलाहाबाद, 1921 ।

नारदभक्तिसूत्र — व्याख्याकार, स्वामी त्यागीशानन्द, श्रीरामकृष्णमठ, मद्रास, 197

नारदीय पुराण- क्षेमराज श्रीकृष्णदास द्वारा प्रकाशित वेंकटेश्वर प्रेस बंबई ।

नाट्यशास्त्र भरत का- अभिनवगुप्त के भाष्य के साथ, खण्ड 1, और 2, संपादक, मनवल्लि रामकृष्ण कवि गा0 ओ0 सि0, 36 और 68, बड़ौदा, 1926 और 1934, अनु0 मनमोहन घोष एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल, कलकत्ता, 1951 ।

नारदस्मृति- योली द्वारा संपादित, कलकत्ता, 1885 ।

निरुक्तम् - यास्क प्रणीत, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 1963 ।

पद्मपुराण- हरिनारायण आप्टे द्वारा प्रकाशित पूना, 1893 ।

पराशर स्मृति- माधवाचार्य भाष्य सहित- बाम्बे संस्कृत सीरीज, बंबई, 1893-1911 ।

पाणिनिकृत अष्टाध्यायी- सम्पादक एवं अनुवादक, एस० चन्द्र बसु, इलाहाबाद, 1981-97। सूत्रपाठ एवं परिशिष्ठ अनुक्रमणिका के साथ, एस०पाठक एवं एस० चितराओ, पूना, 1935 ।

बृहदारण्यक उपनिषद्- शंकर भाष्य सहित, वाणीविलास संस्कृत पुस्तकालय, काशी , वि०सं०, 2011 ।

बृहन्नारदीय पुराण,-पंचानन तर्करत्न द्वारा संपादित तथा बंगवासी प्रेस द्वारा प्रकाशित ,कलकत्ता वि०सं०, 1316 ।

बृहस्पति स्मृति- बड़ौदा, 1941 ।

ब्रह्म पुराण- क्षेमराज श्रीकृष्णदास द्वारा प्रकाशित, बंबई, 1906

ब्रह्मवैवर्तपुराण- क्षेमराज श्रीकृष्णदास द्वारा प्रकाशित, बंबई, 1906

ब्रह्मसूत्र- भास्कराचार्य-भाष्य सहित-विन्ध्येश्वरी प्रसाद द्विवेदी द्वारा संपादित।

ब्रह्माण्ड पुराण- क्षेमराज श्रीकृष्णदास द्वारा प्रकाशित, बंबई, 1906 ।

बौधायन धर्मसूत्र- श्री निवासाचार्य- द्वारा संपादित मैसूर, 1907 ।

भक्तिसूत्राज ऑफ नारद एण्ड शाण्डिल्य सूत्रम - स्वप्नेश्वर भाष्य सहित, अनु० नन्दलाल सिन्हा, दिल्ली ।

भावद्गीता- विथ्सन सुजातीय एण्ड अनुगीता अनु0 के0एल0 तैलांग, से0 बु0 ई0 80 वि, 1908, संपा0 एवं0 अनुवादक एस0 राधाकृष्णनन, लंदन, 1949, संपा0 एवं अनु0 डब्ल्यू0 डो0 पो0 हिल, आक्सफोर्ड, युनिवर्सिटी प्रेस, 1928, शंकर भाष्य सहित गीताप्रेस गोरखपुर, वि0सं0, 1988 ।

भविष्य पुराण- क्षेमराज श्रीकृष्णदास द्वारा प्रकाशित, वेंकटेश्वर प्रेस बंबई, 1987 ।

भागवत पुराण- पंचानन तर्क रत्न द्वारा संपादित तथा वंगवासी प्रेस द्वारा प्रकाशित कलकत्ता, वि0सं0, 1315, अनु0, मुनिलाल गुप्त, गीताप्रेस गोरखपुर, सं0 2008 ।

मत्स्य पुराण- हरिनारायण आप्टे द्वारा प्रकाशित, पूना, 1907 ।

महाभारत- नीलकण्ठ -भाष्य-सहित-पंचानन तर्क रत्न द्वारा संपादित तथा वंगवासी प्रेस द्वारा प्रकाशित, शकाब्द, 1826, 1830, अनु0 रामनारायण दत्त शास्त्री, गीता प्रेस गोरखपुर, अनु0 रामचन्द्र शास्त्री, किंजवदेकर, सं0 2026, चित्रशाला प्रेस प्र0सं0, पूना शकाब्द, 1854, 1932 ।

मानव गृह्य सूत्र- अष्टावक्र की टीका के साथ, संपादक, रामकृष्णहर्ष जी शास्त्री, गा0ओ0सि0, 35, बड़ौदा, 1961 ।

मारकण्डेय पुराण- क्षेमराज श्रीकृष्णदास द्वारा प्रकाशित बंबई ।

मनुस्मृति- कुल्लूकभट्ट भाष्य सहित पंचानन तर्करत्न द्वारा संपादित तथा बंगवासी प्रेस द्वारा प्रकाशित, वि0 सं0 1320, मेधातिथि भाष्य सहित-गंगानाथ झा द्वारा संपादित, एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल द्वारा प्रकाशित, कलकत्ता, 1932 ।

मुण्डक उपनिषद्- डा0 राधाकृष्णन, प्रिन्सिपल्स उपनिषद्स म्योर हेड लाइब्रेरी, रस्किन हाउस, लंदन, 1953 ।

याज्ञवल्क्य स्मृति- वासुदेव लक्ष्मण शास्त्री द्वारा प्रकाशित, बंबई ।

रघुवंश- शंकर पण्डित द्वारा संपादित, गवर्नमेण्ट सेण्ट्रल बुक डिपो द्वारा प्रकाशित, 1897 ।

रामायण- वाल्मीकिकृत, संपादक, ए0 अनु0 जानकीदास शर्मा खण्ड 2, गीता प्रेस गोरखपुर, सं0 2017 ।

रावणवह- प्रवरसेनकृत महाकाव्यम्-संपादक, आर0 जी0 बसाक, संस्कृत कालेज, कलकत्ता, 1959, अनु0 (हिन्दी) रघुवंशी , सेतुबन्ध राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।

लिंगपुराण- जीवानन्द विद्यासागर द्वारा संपादित, कलकत्ता, 1885 ।

वराह पुराण- कलकत्ता, 1893 ।

वाजसनेयिसंहिता- भाग 1, 2, 3, 4, जयकृष्णदास, विद्या विलास प्रेस बनारस, 1929 ई0।

वामन पुराण- पंचानन तर्करत्न द्वारा संपादित, तथा बंगवासी प्रेस द्वारा

वायु पुराण- हरिनारायण आप्टे द्वारा प्रकाशित, पूना 1905

विष्णु धर्मसूत्र सूत्र- पंचाननतर्क रत्न द्वारा संपादित वंगवासी प्रेस द्वारा प्रकाशित, कलकत्ता, वि०सं०, 1316 ।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण- क्षेमराज श्रीकृष्णदास द्वारा प्रकाशित, वेंकटेश्वर, बंबई ।

विष्णु पुराण- पंचानन तर्करत्न द्वारा संपादित तथा वंगवासी प्रेस द्वारा प्रकाशित, कलकत्ता, वि०सं०, 1331, संपादक एवं अनु० मुनिलाल गुप्त, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं० 2014, अनु० एच० एच० विल्सन, कलकत्ता, 1961 ।

शतपथ ब्राह्मण- ए० वेबर द्वारा संपादित, 1924, सायण भाष्य सहित, भाग 1 से 5, वेंकटेश्वर प्रेस संस्करण, एस० बी० ई० भाग 1-5, आक्सफोर्ड, 1885-1894 ।

शांखायन ब्राह्मण- आनंदाश्रम, शकाब्द, 1898 ।

शिशुपाल वध- निर्णय सागर प्रेस बंबई ।

शुक्रनीतिसार- प्रयाग, 1914 ।

शुक्लयजुर्वेद संहिता- संपादक, पंडित जगदीशलाल शास्त्री, दिल्ली 1971 ।

श्वेताश्वतर उपनिषद्- राधाकृष्णन, म्योर हेड लाइब्रेरी, रस्किन हाउस, लंदन, 1953, व्याख्याकार, तुलसी राम शर्मा, प्रथम संस्करण, दिल्ली, 1976 ।

षड्विंश ब्राह्मण- सायण भाष्य, संपादक, बी० आर० शर्मा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, प्र० सं०, तिरुपति, 1967 ।

स्कन्दपुराण- बंगवासी प्रेस द्वारा प्रकाशित, वि०सं०, 1318

सद्धर्म पुण्डरीक- संपादक, एन०दत्त, (सेन्ट्रल एशियन मैन्युस्क्रिप्ट से एन०डी० मिरोनोव के पाठ के साथ) कलकत्ता, 1952 अनु०, एच० कर्न से० बु० ई० 21, आक्सफोर्ड, 1909 ।

सामवेद- पंडित, जयदेवशर्मा, आर्य साहित्य, मण्डल लि०, अजमेर, सं०, 2003 वि० ।

सीतोपनिषद्- निर्णयसागर प्रेस, तृतीय संस्करण 1925

हरिवंश- नीलकंठ भाष्य के साथ-पंचानन तर्करत्न द्वारा संपादित तथा बंगवासी प्रेस द्वारा प्रकाशित, कलकत्ता, वि०सं०, 1312, टीकाकार, रामनारायण दत्त शास्त्री पाण्डेय, गीताप्रेस गोरखपुर, सं० 2024 ।

हर्षचरित - फ्यूहरर द्वारा संपादित, बंबई ।

कोश एवं सन्दर्भ ग्रन्थ

आप्टे, वी०एस०-संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी, खंड, 3 पूना, 1957-59

एस० जेम्स० - एन्साइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड

दीक्षितार, वी0 आर0आर0- दि पुराण इन्डेक्स खण्ड 1,2 तथा 3,
यूनिवर्सिटी आफ मद्रास, 1951-53

मैकडोनेल एण्ड कीथ- वैदिक एण्डेक्स आफ नेक्स एण्ड सब्जेक्ट्स 1, वाराणसी
1959

मोनियर विलियम्स, एम0- ए संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी आक्सफोर्ड, 1951 ।

म्युर जे0, ओरिजनल संस्कृत टेक्स्ट्स, खण्ड, 1-5, लंदन, 1872-84 ।

पाठक एवं चितराव- वर्ड इण्डेक्स टु पतंजलि व्याकरण महाभाष्य
1927, सोरेन्सेन, एस0, ऐन इंडेक्स टु दि नेम्स इन दि
महाभारत, लंदन, 1904 ।

आधुनिक शोधग्रन्थ

अग्रवाल, वासुदेव शरण- पाणिनि कालीन भारतवर्ष, वाराणसी, 1969

अग्रवाल वासुदेव शरण- मत्स्यपुराण ए स्टडी, वाराणसी, 1963

अग्रवाल वासुदेवशरण- मारकण्डेय पुराण एक अध्ययन, इलाहाबाद, 1961

अग्रवाल, वासुदेव शरण- प्राचीन भारतीय लोक धर्म, अहमदाबाद, 1964।

अग्रवाल वासुदेव शरण- वामन पुराण ए स्टडी, बनारस, 1964 ।

आयंगर, के0वी0 आर0- एस्पेक्ट्स ऑफ ऐंशेंट इण्डियन इकोनामिक थाट, बनारस ,1934 ।

अय्यर, पी0एस0 शिवस्वामी- इवोल्यूशन ऑफ हिन्दू मारलआइडियाज, प्रथम संस्करण, 1935, रिप्रिंट, 1976, दिल्ली ।

एलियनडे नियल- हिन्दू पैलोथीज्म, लंदन, 1964 ।

एलेन0जे0- कैटेलॉज ऑफ दि क्वायन्स ऑफ एंशेण्ट इण्डिया इन दि ब्रिटिश म्यूजियम, लंदन, 1936 ।

अल्टेकर0एस0- गुप्तकालीन मुद्रायें पटना, 1954 ।

अल्टेकर0एस0- दि क्वायनेज ऑफ दि गुप्ता एम्पायर बनारस, 1957

अल्टेकर, ए0एस0- दि गुप्त गोल्ड क्वाॅयंस इन दि ~~बयान~~ बयान होर्ड न्यूमिस्मेटिक सोसाइटी ऑफ इण्डिया, 1954।

अरोरा, राजकुमार- हिस्टारिकल एण्ड कल्चरल डाटा फ्राम दि भविष्य पुराण, नई दिल्ली, 1972 ।

अवस्थी, ए0बी0एल0- स्टडीज इन स्कन्द पुराण, लखनऊ, 1965

अवस्थी, ए0बी0एल0- हिस्ट्री फ्राम दि पुराणाज, लखनऊ, 1975

बनर्जी, जे0एन0- दि डेवलपमेण्ट ऑफ हिन्दू आइक्नोग्रेफी तृतीय संस्करण, दिल्ली, 1974 ।

बरुआ एण्ड जी0सिन्हा- भरहुत इंसक्रिप्शंस कलकत्ता, 1928

बार्थ, ए0-

बोव, वेण्डेल चार्ल्स- माइथकल्ट एण्ड सिम्बल्स इन शाक्त हिन्दूइज्म, लीडेन, 1977 ।

बोस, जी0सी0- पुराण प्रवेश, कलकत्ता 1934 ।

भण्डारकर, आर0जी0- कलेक्टेड वर्क्स, संपादक, एन0बी0, उत्गीकर और बी0 जे0 करान्जिये, खण्ड 4, पूना, 1927-33

भण्डारकर, आर0जी0- वैष्णविज्म, शैविज्म एण्ड माइनर रिलिजस सिस्टम्स, स्ट्रासवर्ग, 1913 ।

भट्टाचार्य, अहिभूषण- कूर्म पुराण का अंग्रेजी अनुवाद, वाराणसी, 1972 ।

भट्टाचार्य, एच0- कल्चरल हेरिटेज ऑफ इण्डिया, भाग, 1 से 5, कलकत्ता।

भट्टाचार्य, रमाशंकर- इतिहास-पुराण का अनुशीलन, वाराणसी 1963 ।

चन्दा, आर0पी0,- इण्डोआर्यन रेसेस, दिल्ली, 1976, रिप्रिंट

चतुर्वेदी-परसुराम- वैष्णव धर्म, द्वितीय संस्करण, दिल्ली ।

चौधरी, श्रीनारायण सिं- कूर्म पुराण का हिन्दी अनुवाद, वाराणसी, 1972 ।

डे, एस0के0- अर्ली हिस्ट्री ऑफ वैष्णव फेथ एण्ड मूवमेण्ट इन बंगाल, कलकत्ता, 1961 ।

दीक्षितार, वी0आर0आर0- पुराण इण्डेक्स, भाग 1 से 3, मद्रास

दीक्षितार, वी०आर०आर- क्वालिटी इन दि मत्स्य पुराण, मद्रास, 1935 ।

दीक्षितार, वी०आर०आर०- मत्स्य पुराण ए स्टडी, प्रथम संस्करण, वाराणसी, 1963

दीक्षितार, वी०आर०आर- सम एस्पेक्ट ऑफ दि वायु पुराण, मद्रास, 1935 ।

इलिअट, सी०- हिन्दुइज्म एण्ड बुद्धिज्म, लंदन, 1921
रिप्रिंट 1954 ।

फर्क्युहर, जे०एन०- एन आउट लाइन ऑफ दि रिलीजस लिटरेचर ऑफ इण्डिया, लंदन, 1920 ।

फ्लीट, जे०एफ०- कार्पस इन्सिक्रिप्सनम इण्डिकेरम

घाटे, वी०एस०- लेक्चर्स आन ऋग्वेद, चतुर्थ संस्करण, पूना 1966 ।

गोंडा, जे०- एस्पेक्ट्स ऑफ अर्ली विष्णुइज्म, अट्रेक्ट, 1954 ।

गोपाल लल्लनजी तथा यादव, बी०एन०एस०- भारतीय संस्कृति, गोरखपुर, 1958 ।

गोस्वामी, बी०के०- दि भक्ति कल्ट इन एंशिएंट इण्डिया, वाराणसी, 1965

गोस्वामी, के०जी०- ए स्टडी ऑफ वैष्णविज्म, कलकत्ता, 1956।

गौड़, रामदास- हिन्दुत्व, काशी विद्यापीठ, वाराणसी ।

गुप्ता, एस०एन० दास- इण्डियन फिलासफी, दिल्ली, 1975 ।

हाजरा, आर०सी०- स्टडीज इन दि पुराणिक रेकर्ड्स, ढाका, 1940

हाजरा, आर०सी०- स्टडीज इन दि उपपुराणाज, भाग 1, कलकत्ता, 1960

हाजरा, आर०सी०- स्टडीज इन दि उप पुराणाज, भाग 2 कलकत्ता, 1963

हाप्किंस, ई० डब्ल्यू- दि रिलिजन्स ऑफ इण्डिया, लंदन, 1889 ।

हुल्श, ई०- कार्पस इन्स्क्रिप्शनम इण्डिकेरम, भाग 1, दिल्ली, 1969 ।

जायसवाल, सुवीरा- दि ओरिजिन एण्ड डेवेलपमेण्ट ऑफ वैष्णविज्म, दिल्ली, 1967 ।

काणे, पी०वी०- गवर्नमेन्ट ओरियंटल सिरीज क्लास बी, नं० 6 ।

- भण्डारकर ओरियंटल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना

- हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र, भाग 1, खण्ड 1, 1968 द्वितीय संस्करण ।

- हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र, भाग, 1, खण्ड 2, 1975, द्वितीय संस्करण ।

- हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र, भाग 2, खण्ड 1, 1974, द्वितीय संस्करण ।

- हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र, भाग 2, खण्ड, 2, 1974 द्वितीय संस्करण।

- हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र, भाग 3, 1973 द्वितीय संस्करण ।

- हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र, भाग 4, 1973, द्वितीय संस्करण ।

- हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र, भाग 5, खण्ड 1, 1974 द्वितीय संस्करण ।

कान्तावाला, एस0जी0- कल्चरल हिस्ट्री फ्राम दि मत्स्य पुराण, बड़ौदा, 1960 ।

काली, टी0जी0- पुराण निरीक्षण, पूना, 1931 ।

कीथ, ए0बी0- दि रिलिजन एण्ड फिलासफी ऑफ दि वेद एण्ड उपनिषद्स, हरवार्ड ओरियण्टल सिरीज, भाग 31, 32, 1925 ।

किरफेल, डब्ल्यू0- दास पुराण पंचलक्षण, बोन, 1927

कोल्हातकर, वाई0वी0- श्री मद्भागवत दर्शन, पूना 1931 ।

कुमार स्वामी, ए0के0- यक्षाज, दिल्ली, 1971 ।

मैक्रिंडल, जे0 डब्ल्यु- एंशिण्ट इण्डिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन क्लैसिकल लिटरेचर, वेस्टमिनिस्टर, 1901 ।

मैक्रिंडल, जे डब्ल्यु- एंशिण्ट इण्डिया ऐज डिस्क्राइब्ड बाई मेगस्थनीज एण्ड एरियन, कलकत्ता, 1926 ।

मैकडानल, ए0 ए0- वेदिक माइथालोजी स्ट्रासबर्ग, 1897 ।

मैकिनकाल निकाल- इण्डियन थीज्म, आक्सफोर्ड, 1915 ।

मनकद, डी0आर0- पुराणिक क्रोनोलाजी ।

मनकद, डी0आर0- युग पुराण, वारुत्ता प्रकाशन, वल्लभ विद्यानगर, 1951 ।

मार्शल, सर जॉन- मोहन जोदड़ो एण्ड इण्डस सिविलाइजेशन, लंदन, 1931 ।

मार्शल, सर जॉन- एक्सकवेशन ऐट भीटा, आर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया एन्युअल रिपोर्ट, 1909-10 ।

मुकर्जी, आर०के०- हिस्ट्री ऑफ इण्डियन सिविलाइजेशन, भाग । बंबई, 1958 ।

मिराशी, वी०वा० - स्टडीज इन इण्डोलाजी, भाग ।, नागपुर, 1960 ।

मिश्र, ज्वालाप्रसाद- अष्टादश पुराण दर्पण, बंबई, सं० 1993 ।

मिश्र, बमबहादुर- प्वालिटी इन दि अग्नि पुराण, कलकत्ता, 1965।

मोनियर विलियम्स, एम०- रिलिजस थाट एण्ड लाइफ इन इण्डिया, लंदन, 1883 ।

ओ फ्लेहर्टी, डब्ल्यू०डो०- एसेस्टेसिज्म एण्ड इराटिसिज्म इन माइथालोजी ऑफ शिव, दिल्ली, 1975

ओमप्रकाश- प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास, भाग । प्राक् मौर्यकाल, इलाहाबाद, 1972 ।

ओमप्रकाश- पोलिटिकल आइडियाज इन दि पुराणाज, इलाहाबाद, 1977 ।

पाण्डे, जी०सी०- स्टडीज इन दि ओरिजिन्स ऑफ बुद्धिज्म, इलाहाबाद।, 1957 ।

पाण्डे, वीणापाणि- हरिवंश पुराण का सांस्कृतिक विवेचन, बनारस, 1960

पार्जीटर, एफ० ई०- एंशिएट इण्डियन हिस्टारिकल ट्रेडिशन, आक्सफोर्ड, 1922 ।

पार्जीटर, एफ० ई०- दि डाइनेस्टीज ऑफ दि कलि एज (दि पुराण टेक्सट) आक्सफोर्ड, 1913 ।

पाठक, सर्वानन्द- विष्णु पुराण का भारत, वाराणसी, 1967 ।

पुसाल्कर, ए०डी०- स्टडीज इन दि एपिक्स एण्ड पुराणाज, बंबई, 1955 ।

पुसाल्कर, ए०डी०- वेदिक एज, भारतीय विद्याभवन, बंबई, 1971 ।

प्रधान, एस०एन०- क्रोनोलाजी ऑफ एंशिएंट इण्डिया, कलकत्ता, 1927 ।

राय, गोविन्दचन्द्र- प्राचीन भारत में लक्ष्मी प्रतिमा, वाराणसी ।

राय, सिद्धेश्वरीनारायण- पौराणिक धर्म एवं समाज, इलाहाबाद, 1968 ।

राय, सिद्धेश्वरी नारायण- हिस्टोरिकल एण्ड कल्चरल स्टडीज इन दि पुराणाज, इलाहाबाद, 1978 ।

राय, उदयनारायण- गुप्त सम्राट् और उनका काल, इलाहाबाद, 1976 ।

राव, टी०ए० गोपीनाथ- एलीमेण्ट्स ऑफ हिन्दू आइक्नोग्रेफी, भाग 1, खण्ड 1 दिल्ली, 1961 ।

राव, टी०ए० गोपीनाथ- एलीमेण्ट्स ऑफ हिन्दू आइक्नोग्रेफी, भाग 1, खण्ड 2 दिल्ली, 1968 ।

राव, टी०ए० गोपीनाथ- एलीमेण्ट्स ऑफ हिन्दू आइक्नोग्रेफी भाग 2, खण्ड 1, दिल्ली, 1968 ।

राव, टी०ए० गोपीनाथ- एलीमेण्ट्स ऑफ हिन्दू आइक्नोग्रेफी, भाग 2 खण्ड 2, दिल्ली, 1968 ।

राय चौधरी, एच०सी०- मेटीरियल्स फार दि स्टडी ऑफ दि अर्ली हिस्ट्री ऑफ दि वैष्णव सेक्ट, कलकत्ता, 1936 ।

राय चौधरी, एच०सी०- पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एंशिएंट इण्डिया, छठवाँ संस्करण 1953, रिप्रिंट, 1972 ।

रास, ई0- शैविज्म इन दि पुराणाज, बोन, 1941 ।

रैप्सन, ई0 जे0- दि कैम्ब्रिज, हिस्ट्री आफ इण्डिया, कैम्ब्रिज, 1922

साचो, ई0सी0- अलबरूनीज इण्डिया, भाग 1,2, लंदन, 1888 ।

शाह, के0टी0 - एंशिण्ट फाउन्डेशन्स आफ इकोनामिक्स इन इण्डिया, बंबई, 1954 ।

शर्मा, जी0आर0- एक्सकवेशन्स ऐट कौशाम्बी, इलाहाबाद, 1960

शर्मा, जी0आर0- हिस्ट्री टु प्रोहिस्ट्री, आक्योलाजी आफ दि गंगा वैली टु विन्ध्याज, इलाहाबाद, 1980 ।

शर्मा, हरदत्त- पद्मपुराण और कालिदास, कलकत्ता, 1925 ।

शर्मा मुंशीराम- भक्ति का विकास, वाराणसी, 1958 ।

शर्मा, विश्वनाथ- व्रतराज, बंबई, 2010 ।

शर्मा, श्रवणलाल- व्रतोत्सव चन्द्रिका, बनारस, संवत, 1980

शास्त्री दुर्गाशंकर- पुराण-विवेचन, अहमदाबाद, 1931 ।

शास्त्री, एन0के0- (संपा0) कम्प्रीहेन्सिव हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग2, 1957

श्रीवास्तव, वी0सी0- सनवर्शिप इन एंशिएट इण्डिया, इलाहाबाद, 1972 ।

शुक्ल, बदरीनाथ- मारकण्डेय पुराण एक अध्ययन, चौखम्बा, काशी, 1960

सरकार, डी0सी0- सेलेक्ट इन्सक्रिप्शंस, कलकत्ता, 1942 ।

सरकार, डी0सी0- स्टडीज इन दि ज्याग्राफी ऑफ एंशिएट एण्ड मेडीवल इण्डिया, दिल्ली, 1960

सरकार, डी0सी0- दि एज ऑफ इम्पीरियल यूनिटी, चतुर्थ संस्करण, भारतीय विद्याभवन, बंबई, 1968 ।

सरकार, डी0सी0- क्लैसिकल एज, तृतीय संस्करण, भारतीय विद्याभवन, बंबई, 1970 ।

सरकार, डी0सी0- दि शक्ति कल्ट एण्ड तारा, कलकत्ता, 1967

टण्डन, यशपाल- पुराण विषयानुक्रमणिका, होशियारपुर, 1952 ।

त्रिपाठी, किशोरी शरण- कल्चरल स्टडी ऑफ दि श्रीमद्भागवत, बनारस, 1969 ।

त्रिपाठी, महेशदत्त- व्रतार्क सटीक, लखनऊ, 1952 ।

उपाध्याय, बलदेव- आर्य संस्कृति के मूलाधार, काशी, 1963 ।

उपाध्याय, बलदेव- पुराण विमर्श, वाराणसी, 1965

वर्मा, राधाकान्त,- भारतीय प्रागैतिहासिक संस्कृतियाँ, इलाहाबाद, 1977 ।

वैद्य, सी0वी0- हिस्ट्री ऑफ मेडीवल हिन्दू इण्डिया, भाग । पूना, 1921 ।

वेदममनी- पुराणिक इन्साइक्लोपीडिया, दिल्ली, 1975 ।

विन्टरनित्स, एम0- हिस्ट्री आॅफ इण्डियन लिटरेचर, भाग, I, ट्रान्सलेटेड इन्टू इंग्लिश फ्राम दि ओरिजनल जर्मन, बाई केतकर, कलकत्ता, 1927 ।

ह्वीलर, मारटिमर- रोमबियाण्ड दि इम्पीरियल फ्रान्टियर्स, लंदन, 1954

अनुसंधान-पत्रिकायें एवं अभिनन्दन तथा संस्मरण ग्रन्थ

एंशिएण्ट इण्डिया ।

एनाल्स ऑफ भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट ।

एनाल्स ऑफ ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, युनिवर्सिटी ऑफ मद्रास ।

एनुअल रिपोर्ट ऑव इण्डियन इपिग्रेफी ।

आक्योलाजिकल सर्वे रिपोर्टस ।

भाग्वानलाल इन्द्र जी कमेमोरेशन वाल्यूम ।

भारतीय विद्या ।

इण्डियन कल्चर ।

इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली ।

जर्नल आॅफ इलाहाबाद युनिवर्सिटी स्टडीज ।

जर्नल आॅफ दि आन्ध्र हिस्टारिकल रिसर्च सोसाइटी ।

जर्नल आॅफ आसाम रिसर्च सोसाइटी ।

जर्नल आॅफ बाम्बे ब्रांच आॅफ दि राॅयल एशियाटिक सोसाइटी ।

जर्नल आॅफ दि बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी ।

जर्नल आॅफ दि बिहार रिसर्च सोसाइटी ।

जर्नल आॅफ इण्डियन हिस्ट्री ।

जर्नल आॅफ दि ओरियण्टल रिसर्च ।

जर्नल आॅफ दि ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा।

जर्नल आॅफ दि रॉयल एशियाटिक सोसाइटी आॅफ ग्रेट ब्रिटेन एण्ड आ

जर्नल आॅफ युनिवर्सिटी आॅफ बाम्बे ।

जर्नल आॅफ यू०पी० हिस्टारिकल सोसाइटी ।

जर्नल आॅफ वेंकटेश्वर इन्स्टीट्यूट, तिरूपति ।

कल्याण ।

करमारकर कमेमोरेशन वाल्यूम ।

क्वार्टर्ली रिव्यू आॅफ हिस्टारिकल स्टडी ।

ला वाल्यूम ।

न्यू इण्डियन एण्टीक्वैरी ।

आवर हेरिटेज ।

पुराणम् ।